आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

के

उपन्यासों में मानव मूल्य

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

की

पी० एच० डी० उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशक —

डा० एन. डी. समाधिया

एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट०

प्राचार्य

गांधी महाविद्यालय

उरई (जालौन) उ० प्र०

शोधकर्ता —

कु० जनकिशोरी

एम० ए० हिन्दी, संस्कृत

समाजशास्त्र, बी० एड०

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ० प्र०)

1996

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

64-112

, प्रेमोत्सर्ग

आदि

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव- मूल्य

अनुक्रमणिका

रूपरेखा	पृष्ठ संख्या

अध्याय - तीन

अध्याय - चार

अध्याय - पाँच

उपसंहार

परिशिष्ट

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में मानव मूल्य प्राक्कथन

=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

समर्थ उपन्यासकार औचित्य की स्थापना के लिए अपने कथानक में मानव मूल्यों की संश्लिष्टि को विशेष प्रश्रय प्रदान करता है । उसके पास अपना वैचारिक दृष्टिकोण होता है, जिसके द्वारा सम्वेदनात्मक और अनुमूल्यात्मक पक्ष का नियमन और नियन्त्रण अवश्य बना रहता है । वस्तुत: सर्वोच्च मानव मूल्यों के लिये लिखना तभी सम्भव है जब रचना में प्रेरणामयी मानवता वादी दृष्टि हो । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मानवतावादी दृष्टि के दो रूप दिये हैं -

1- ऐतिहासिक विकास की दृष्टि - सब कुछ क्रमश: विकसित होता रहता है और सृष्टि प्रक्रिया में सबसे उत्तम, सबसे अधिक आदरास्पद और महत्वपूर्ण स्थान मनुष्य का है ।

2- इहलोक परायण विश्वास - पारलौकिक सुखों के स्थान पर इस लोक में इसी मृत्यु लोक में मनुष्य के सुख-विधान का लक्ष्य ।

इस प्रकार मानव जीवन मूल्यों से मनुष्य की स्वतन्त्र संकल्प शक्ति का अपरिहार्य सम्बन्ध है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मानवतावादी विचारधारा के विभिन्न आयाम अपने उपन्यासों में विश्लेषित किये हैं ।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का क्रमश: संक्षिप्त परिचय अध्याय के पूर्वार्द्ध पक्ष में दिया गया है । अध्याय के उत्तरार्द्ध पक्ष में जीवन मूल्यों के विविध आयाम निरूपित किये गये हैं, जिनमें वैयक्तिक मूल्यों को वर्णित करते हुये सत्य, आचार, तपस्या, अहिंसा, प्रेमोत्सर्ग, भक्ति, योगसाधना, सेवा, विनम्रता आदि को जीवन मूल्यों के रूप में संदर्भित किया गया है ।

इसी श्रृंखला में पारिवारिक दायित्व का मूल्यों के साथ निर्वहन होने की दशा का प्रतिपादन है । इसी अध्याय में उत्तरोत्तर सामाजिक, धार्मिक दार्शनिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, और आर्थिक दृष्टिकोण को व्याख्यायित किया गया है । मूल्यों के बहु आयामी स्तरों पर सोच और सम्वेदनात्मक

दृष्टि से प्रकाश डाला गया है । शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय भी इन्हीं मूल्यों का स्वरूप अभिव्यंजित करता है ।

प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में क्रमशः सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक मानव-मूल्यों पर चर्चा की गयी है । आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों में अन्तर्निहित विश्लेषणात्मक अनुशीलन इस अध्याय में मूलभूत है । वस्तुतः समाज, धर्म, दर्शन व संस्कृति परस्पर एक गुण से दूसरे गुण तक मानवीय अर्थों में एक ही हैं, जो अविभाज्य हैं । प्रयास किया गया है कि शोध परक दृष्टि से उन मूल्यों की अर्थवत्ता विविध परिदृश्योंमें दृष्टि गोचर हो ।

चौथा अध्याय राजनीतिक और आर्थिक मूल्यों पर आधृत है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यास मध्यकालीन ऐतिहासिक दृष्टि को लिये हुये है इसलिए उनमें सामन्तवाद और राजा प्रजा की दरबारी तथा आश्रमवादी पद्धतियाँ जुड़ी है । कथाकार तत्कालीन राजदरबारी और प्रजाजनीय दृष्टिकोण को विविध परिदृश्यों में विविध पात्रों के द्वारा रेखांकित करता है, जिसका शोध परक विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत है ।

प्रबन्ध के पाचवें अध्याय में आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मूल्यों के स्रोत और उनकी प्रभाव सृष्टि का समाकलन किया गया है । यह कहना सार्थक होगा कि आचार्य द्विवेदी के कथाकार की मेधा शक्ति ने इन उपन्यासों के कथ्य में कथानक के अतिरिक्त अवान्तर विषयों की प्रस्तुति करके उपन्यास-विधा को लोक मंगलकारी भी बनाया ।

अन्त में शोध-निष्कर्षों पर औपन्यासिक तथ्य एवं मानवीय जीवन दर्शन की उपलब्धि और महत्व का विवेचन किया गया है ।

आभार

जीवन में कुछ सम्बन्ध अनायास ही अत्यन्त सहज भाव से जुड़ जाते है और फिर अद्योपान्त जीवित रहते हैं । इनमें नैरन्तर्य की सामर्थ्य होती है । ऐसा ही संयोग मेरा डा0 श्याम बाबू मिश्र (परियोजना अधिकारी) से हुआ उन्होंने मुझे अपने ही गुरुवर के निर्देशन में शोध कार्य करने की प्रेरणा दी इसलिये सर्व प्रथम मैं डा0 मिश्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । बहुत ही विषम परिस्थितियों में मेरा शोध कार्य पूर्ण हो सका, क्योंकि "जे बिनु काज दाहिने बायें," वाले लोगों ने अकारण ही मेरी साहित्यिक यात्रा में विपरीत परिस्थितियाँ पैदा कर दी, परन्तु फिर भी मेरे शोध निर्देशक डा0 समाधिया जी ने मेरा उत्साह वर्धन किया, इसके लिये मैं उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । शोध की परिपूर्णता तक पहुँचाने में जिन समीक्षकों-विद्वानों ने हमारी सहायता की, मैं उनके प्रति आभारी हूँ । श्री लाल बहादुर मिश्र का मेरे शोध कार्य में अत्यधिक सहयोग रहा मैं उनकी भी आभारी हूँ तथा अपने निर्देशक डा0 समाधिया जी (प्राचार्य) का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ ।

अन्त में मैं अपने माता-पिता, अग्रज एवं अनुजों के प्रति तथा अपने परिवार के प्रति आभार या धन्यवाद शब्द को व्यक्त करके औपचारिक नहीं होना चाहती, क्योंकि वे सहयोग न करते तो शोध परक जीवन का प्रथम पुष्प कभी का मुरझा गया होता । मैं इस स्थान पर भूले बिसरे उन सभी शुभ चिन्तकों के प्रति श्रद्धानत हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर मानवीय मूल्यों की गवेषणा में सहायता प्रदान की ।

दिनांक- 4-11-96

स्थान -

अनुसंधित्सु

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

अध्याय – एक

अध्याय - एक

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तावना - आचार्य द्विवेदी द्वारा लिखे गये चार उपन्यास निम्नलिखित हैं-

1- बाणभट्ट की आत्मकथा ।

2- चारुचन्द्र लेख ।

3- पुनर्नवा ।

4- अनामदास का पोथा ।

इन उपन्यासों का प्रणयन एवं प्रकाशन क्रमशः सन् 1947, 1963, 1973 एवं 1976 में हुआ है । बाण भट्ट की आत्मकथा, बाणभट्ट भट्टिनी तथा निपुणिका के प्रेम त्रिकोण पर आधारित कथा है । सिद्ध सामन्तकालीन समाज को आधार बनाकर लिखा गया चारुचन्द्र लेख ज्ञान, इच्छा, क्रिया के रूप में त्रिधा विभक्त आद्यशक्ति की प्रतीक कथा है । चतुर्थ शताब्दी की घटनाओं पर आधारित पुनर्नवा आर्यक एवं चन्द्रा के चरित्रों के माध्यम से समय के अनुरूप विधि व्यवस्थाओं के परिमार्जन की अनिवार्यता का सन्देश देती है और अनामदास पोथा एक ऐसे तापस कुमार की कहानी है जो संसार के दुःख दैन्य से द्रवित होकर निवृत्ति मार्ग को त्यागकर प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता है ।

1- बाण भट्ट की आत्म कथा - बीस उच्छवासों में उपन्यस्त बाणभट्ट की आत्मकथा की मुख्य कथा आरम्भ करने से पूर्व द्विवेदी ने कथा मुख लिखकर पाठकों के हृदय में यह संभ्रम उत्पन्न करने का प्रयास किया है कि आत्म कथा मौलिक रूप से उनकी लिखी हुई नहीं है । अपितु आस्ट्रियावासिनी दीदी (मिस कैथाराईन) को अपनी राजगृह यात्रा के समय मूलरूप से संस्कृत भाषा में लिखी हुई बाणभट्ट की आत्मकथा पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त हुई । जिसका हिन्दी अनुवाद स्वयं दीदी ने ही किया और द्विवेदी जी ने दीदी की आज्ञा से उसे प्रकाशित कराया । स्पष्ट है कि उपन्यास की कथा के समान यह भी एक मनोरंजक कल्पना है ।

द्विवेदी जी ने यह सम्पूर्ण कथा वाणभट्ट के मुख से ही कहलवायी है । उपन्यास के आरम्भ में वाणभट्ट ने अपने पूर्वजों का स्मरण किया है उनकी विद्वता और धर्म परायणता का परिचय देते हुये, प्रख्यात वात्स्यायन वंश में उत्पन्न पित्र-पितामहों के गृहों को यज्ञ-धूम से धूमायित, निरन्तर वेदाध्ययन करने वाले एवं जिनके विद्यार्थियों की भूलों को शुक-सारिकादि भी सुधार दिया करते थे, इस प्रकार वैदिक ऋषियों की सम्पूर्ण विशेषताओं से युक्त प्रतिपादित किया है । उनके पिता का नाम चित्रभानुभट्ट था जो सूर्योदय के दो मुहूर्त तक निरन्तर हवनादि किया करते थे । वाण भट्ट ऐसे ही विद्वान पिता के पुत्र थे जो जन्म से आबरा, घुमक्कड़, अस्थिर एवं गप्पी थे । घर छोड़कर भाग खड़े हुये तथा अपने साथ में अपने ही जैसे कुछ साथियों को ले गये । यद्यपि वे साथीगण अन्तिम तक उनका साथ नहीं दे पाये लेकिन वह गाँव में वदनाम हो गये थे । लोग उन्हें वण्ड कहने लगे । "वण्ड" पूँछ कटे बैल को कहते हैं । बाद में "वण्ड" शब्द का संस्कृत परक संस्कार करके उन्होंने अपना नाम "वाण" बना लिया । वास्तकि नाम दक्ष भट्ट था ।

वाण के पिता के ग्यारह भाई थे । एक समवयस्क चचेरा भाई जिसका नाम उडुपति था वाण को बहुत स्नेह करता था । वह प्रख्यात तार्किक था । वसुभूति नामक बौद्ध को उसने शास्त्रार्थ में पराजित किया था तथा महाराजाधिराज हर्ष वर्धन पर अपना प्रभाव जमा लिया था । भट्ट के जीवन-निर्माण में उनका विशेष सहयोग रहा । भट्ट माँ के स्नेह से पहले ही वंचित रहा । 4 वर्ष की आयु में पिता का संरक्षण भी उठ गया ।

ऐसी परिस्थितियों में वाण आवारा प्रकृति का हो गया । वह नगर-नगर, जनपद-जनपद की धूल फाँकते हुये घूमता रहा । उसने नट बनाना, नाट्टयमण्डली संगठित करना तथा कठ-पुतलियाँ नचाना, पुराण वाचक बनना आदि सभी कार्य कर डाले । लोग उसे भुजंग समझने लगे थे परन्तु वाण में लंपटता का चिन्ह मात्र भी न था ।

अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण बाण भट्ट स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगर पहुँच गया । स्थाण्वीश्वर में उस दिन किसी उत्सव का आयोजन किया जा रहा था, जिसमें स्त्रियाँ अधिक थीं । राजमार्ग पर जाते हुये जुलूस में राजवधुयें भी बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ़ होकर चल रहीं थीं । नर्तकियाँ व परिचारिकायें भी थीं । बाण भट्ट को ज्ञात हुआ कि वह उत्सव महारा--जाधिराज श्री हर्षदेव के भाई कुमार कृष्ण वर्धन के जन्म तथा नामकरण संस्कार के उपलक्ष्य में मनाया जा रहा है ।

बाण भट्ट ने अपने को धिक्कार कर कहा, "कहाँ वेदाध्यायियों का यशोंशु-शुक्लीकृत-सफल विष्टप वंश और कहा मैं अभागा वंड । कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका जन्मोत्सव इतनी धूम-धाम से मनाया जाता है और कुछ मुझ जैसे अभागे जो गाँव-गाँव मारे-मारे घूमते रहते हैं । वह एक चित्त होकर अपनी बदनामी को धो डालना चाह रहा था । भाग्य की नियति ही कुछ ऐसी है कि व्यक्ति जो चाहता है बिल्कुल वैसा नहीं होता कुछ और ही हो जाता है । यही इस उपन्यास की मन: स्थिति है । आखिर बाण कुमार कृष्ण वर्धन के पुत्र-जन्म पर बधाई देने के लिये तैयार हो गया लेकिन ऐसा कुछ कर न सका ।

द्वितीय उच्छ्वास में, बाण कुमार कृष्ण वर्धन के पुत्र को बधाई देने के लिये क्षिप्रतर गति से विचारों का ताना-बाना बुनते हुये जा रहे हैं । किसी ने पीछे से आवाज दी । नातिकमनीय रमणी उन्हें पुकार रही थी । रमणी पान की दूकान पर बैठी हुयी थी । बाण ने चौंक कर कहा, "निउनिया तू निउनिया उसका प्राकृत नाम था, उसका वास्तविक नाम निपुणिका था जो संस्कृत संस्कार युक्त था । निपुणिका आज कल की उन जातियों में से किसी एक जाति की सन्तान थी जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थी परन्तु गुप्त सम्राटों ने उनके पूर्वजों को अपने यहाँ नौकरी देकर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ा दी थी । निपुणिका का विवाह किसी कान्दविक वैश्य के साथ हुआ था, परन्तु एक वर्ष बाद वह विधवा हो गयी थी, घर के अत्याचारों से तंग आकर वह भाग कर उज्जैनी आ गयी थी और बाण से उसका परिचय हुआ।

बाण ने अपनी नाटक मण्डली में उसे शामिल कर लिया । इस प्रकार की स्त्रियों के प्रति बाण की उदारभावना तथा उत्कृष्ट धारणा थी जो बाण के ही शब्दों से अभिव्यंजित होती है ।

"साधारणतया: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक देवी-शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं । मैं नहीं भूलता । मैं स्त्री-शरीर को देव मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ । "

बाण का लिखा हुआ प्रकरण खेलने की तैयारी की गयी थी । निउनिया प्रमुख नायिका की भूमिका का निर्वहन करती हुयी रंग मंच पर अवतरित हुयी थी । निउनिया का अभिनय अत्यन्त सराहनीय रहा । परम भट्टारक भी नाटक देखने के लिये आये थे । समाज ने बार-बार साधुवाद दिया । परम भट्टारक ने बाण को राज सभा में बुलाया था वे उसे पुरस्कृत करना चाहते थे । लेकिन उसी रात निउनिया नाटक मण्डली छोड़कर भाग गयी । बाण के लाख प्रयत्न करने के बाद भी वह उसे खोज न सके और उन्होंने नाटक मण्डली पाँच दिन के अनन्तर तोड़ दी थी । अकस्मात ही आज उसे निउनिया मिल गयी थी जिससे वह आश्चर्य चकित था । निउनिया भी बाण को खोने के प्रायश्चित में अपने आँसू बहाती रही थी। बाण ने शंका युक्त मन से पूछा, तू क्यों चली आयी अब तक कहाँ रही मुझे लगता है कि मैं ही तेरे समस्त दु:खों की जड़ हूँ । एक बार तू अपने मुख से कह दे कि यह बात गलत है । मैं निर्दोष हूँ ।

निपुणिका ने कहा - "हां भट्ट मेरे भाग आने का कारण तुम्हीं हो । परन्तु दोष तुम्हारा नहीं, दोष मेरा ही है । उस अभिनय की रात को मुझे एक क्षण के लिये ऐसा लगा था कि मेरी जीत होने वाली है, परन्तु दूसरे ही क्षण तुमने मेरी आशा को चूर कर दिया ...... जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात कर दिया ।"

तभी से निपुणिका ने बाण के विषय में सोचा कि वह न देवता ही है और न पशु एक अछिन्न जड़ता है । निउनिया पान बेचती थी लेकिन उसकी मुस्कान उससे कहीं अधिक बिकती थी । वह भट्ट को दल-दल में नहीं घसीटना चाहती थी लेकिन भट्ट उसको इस अवस्था में नहीं छोड़ना चाहता था । इसी लिये दुकान बन्द करके उसने भट्ट को घर के अन्दर आमन्त्रित किया और स्नान करके भगवान महावराह की प्रतिमा के सामने रुद्ध कंठ से स्त्रोत पाठ करने लगी । पूजोपरान्त जब उसने देखा कि भट्ट उसकी सहायता करने का निश्चय कर ही चुका है तो उसने छोटे राजकुल में से एक लक्ष्मी का उद्धार करने के लिये प्रस्ताव रखा । और भट्ट को निपुणिका की सखी बनकर अन्तःपुर में प्रवेश करना था । भट्ट ने स्वीकार कर लिया इस कारण वह कृष्ण वर्द्धन को बधाई देने न जा सका था ।

तृतीय उच्छवास में, निपुणिका के साथ भट्ट अपनी पूर्व योजनानुसार छोटे राजकुल में पहुंचता है । छोटे राजकुल का महाराजा मौखरि-वंश से सम्बन्धित था । महाराजाधिराज हर्ष वर्द्धन के बहनोई का दूर का सम्बन्धी था । यद्यपि मौखरि-वंश का दावेदार था किन्तु उसे कोई अधिकार नहीं, केवल सम्पत्ति दी गयी थी । उसका आचरण निकृष्ट हो गया था । उसकी भोग-लिप्सा बढ़ गयी थी । महाराजा हर्ष वर्द्धन उसे पदच्युत इसलिए नहीं कर सकते थे कि वह मौखरि-वंश से सम्बन्धित था और जनता में मौखरि-वंश के प्रति सम्मान था भट्टिनी कई महीनों से इसी छोटे राजकुल में आबद्ध अपनी इच्छा के विपरीत आबद्ध थी ।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को मदन-पूजा के अवसर पर छोटा राजकुल क्रीड़ा पान में मस्त था । छोटे राजकुल के महाराज ने नयी वधू को प्रमदवन में लाने के लिए रत्नहार का पुरस्कार घोषित किया था । नई वधू यही भट्टिनी थी ।

निपुणिका के साथ भट्ट स्त्रीवेश में छोटे राजकुल में प्रवेश करते हैं जहाँ भट्टिनी महावराह भगवान की पूजा में तल्लीन है । निपुणिका चामर धारिणी से कहती है कि वह बाभ्रव्य को बता दे कि निपुणिका ने नई वधू को प्रमदवन में ले चलने के लिये तैयार कर लिया है ।

वे तीनों प्रमदवन में पहुंचकर, प्रमद वन वाटिका के समीपस्थ वादी तक जाते हैं । भट्ट पुरूष वेश में आकर वृक्षों की शाखाओं के सहारे राजमार्ग पर दोनों की प्रतीक्षा करता है ।

चतुर्थ उच्छवास में निपुणिका, भट्टिनी और बाण के चण्डी मन्दिर में पहुंचने की कथा वर्णित है । मन्दिर के अन्दर एक प्रांगण से सटा हुआ एक घर है जो गुफा सदृश दिखाई पड़ता है । भट्टिनी की सुरक्षा के लिए निपुणिका ने मन्दिर के वृद्ध पुजारी से यह स्थान किसी प्रकार हथियाया था यद्यपि भट्टिनी के योग्य स्थान नहीं है ऐसा भट्ट ने अनुभव किया । लेकिन निपुणिका जैसी स्त्री इससे उपयुक्त स्थान पाने के लिये असमर्थ थी । दिन में भट्ट का रहना वहाँ असम्भव था । अत:भट्ट बाहर निकल आया ।

इसी उच्छवास में वृद्ध पुजारी का वर्णन है जो भोगी प्रवृत्ति का एवं मूर्ख है । अवसर पाकर भट्ट ने कल्पित धनदत्त नामक सेठ के द्वारा अपनी समस्त सम्पत्ति को दान देने के लिए वृद्ध पुजारी को नियुक्त किया है ऐसा बताया । लोभ युक्त वृद्ध पुजारी उस ओर जाने लगता है और अवसरानुकूल भट्ट प्रांगण में पहुंचकर कुछ व्यवस्था करना चाहता है । वहीं समीपस्थ बौद्ध विहार में सुगत भद्र नामक बौद्ध भिक्षु रहते थे । भट्टिनी उनको जानती है और उसी के अनुरोध पर बाण सुगत भद्र के पास जाते हैं ।

सुगत भद्र बाण के पिता जयन्त भट्ट को उनके गुरू भाई होने के नाते जानते थे । महाराजाधिराज ने नालन्दा से बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये उन्हें भेजा था । जब भट्ट ने उन्हें भट्टिनी से सम्बन्धित कथा सुनायी तो भट्ट को ज्ञात हुआ कि सुगत भद्र देवपुत्र तुवरमिलिन्द की एकलौती कन्या चन्द्रदीधिति को अच्छी प्रकार पहचानते हैं । वे बाण को आश्वासन देते हुये उन्हें मगध भेजने का कार्यक्रम बनाते हैं और उसके लिये अपने एक शिष्य को कुमार कृष्ण वर्धन को लाने के लिये भेजते हैं ।

पंचम उच्छवास में, बाण के द्वारा विहार से मन्दिर लौटना और भट्टिनी को आश्वस्त करने से लेकर कुमार कृष्ण वर्धन कुछ वार्तालाप करने के बाद मगध पहुंचाने के लिये कुमार कृष्ण वर्धन द्वारा आश्वस्त करने की कथा वर्णित है ।

जब सामनेर बाण को बुलाते वहाँ पहुँचता है तो बाण विहार, सुगतभद्र से मिलने जाता है । भट्टिनी के शब्द उसे अच्छी प्रकार स्मरण हैं कि वह स्थाण्वीश्वर के राजवंश से घृणा करती है इस कारण वह उससे सम्बद्ध किसी भी व्यक्ति का आश्रय ग्रहण नहीं करेगी । जब उक्त तथ्य को बाण कुमार कृष्ण वर्द्धन के समक्ष अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हैं तो कुमार कृष्ण वर्द्धन के अन्दर क्रोध का संचार भी होता है वे उफन पड़ते हैं लेकिन सुगत-भद्र द्वारा स्पष्टीकरण करा लेने पर वातावरण शान्त हो जाता है और कुमार भट्टिनी को मगध जाने के लिये आयोजन का विश्वास दिलाते हैं ।

षष्टम उच्छ्वास में बाण जब पुन: मन्दिर लौटकर आता है भट्टिनी और निपुणिका दोनों ही तैयार होकर उपस्थित शिबिकाओं में बैठकर गंगा किनारे पहुचती है । बाण वहीं मन्दिर का निरीक्षण करता रहता है । उसी समय कौलमार्गीय सन्त वहाँ आ जाते हैं । बाबा सिद्ध अवधूत, महामाया और दो साधु भी उनके साथ हैं । अवधूत बाबा बाण से कुछ प्रश्न पूछते हैं और उसके ललाट को छू देते हैं तभी बाण को निपुणिका और भट्टिनी का गंगा नदी में कूदते हुये, भयंकर दृश्य दिखाई देता है और वह उद्वेलित हो उठता है पुनश्च बाबा द्वारा ललाट दवाने के बाद वह दृश्य शान्ति में बदल जाता है ।

रात्रि में पूजा-पाठ के बाद भट्टिनी बाण को प्रसाद देती है । एक बार जब वह वाराणसी के गंगा-किनारे कथा कह रहा है तभी एक बृद्धा अपने बेटे के लौट आने की विधि उससे पूछती है और बाण उसको विधि बताता है । बाबा के पास दूसरे दिन विरतिवज्र आता है । महामाया से उसके विषय में जानकर बाण उन्हीं को बृद्धा के पुत्र होने का सन्देह करता हुआ गंगा-तट की ओर चल पड़ता है ।

सप्तम उच्छ्वास में बाण के रात्रि पर्यन्त गायब रहने के कारण निपुणिका द्वारा भट्टिनी की ओर से दु:ख प्रकट करना तथा भट्टिनी के द्वारा यह बताया जाना कि आचार्यपाद आये थे और बाण को कुमार ने

बुलाया है तथा कुमार द्वारा प्रदत्त भगवान बुद्ध की मूर्ति जो वे सश्रद्धा भेंट करना चाहते थे और महावराह की मूर्ति जिसको वे भट्टिनी को अपनी ओर से देना चाहते थे, दोनों भेंटों को दो आदमियों द्वारा गंगा-तट तक लाने और भट्ट को सौंपकर चले जाने की कथा वर्णित है । इसी बीच भट्ट और कुमार के वार्तालाप के अन्तर्गत कुमार द्वारा भट्ट को यह भी बताया जाना कि "मौके पर झूठ बोलना पड़े तो हिचकना नहीं चाहिये । राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है, असिधारा से भी अधिक दुर्गम है, विद्युत शिखा से भी अधिक चंचल है । उन्होंने यह भी बताया कि भट्ट अब भट्टिनी का अभिभावक है । चारुस्मिता के मयूर नृत्य जो कुमार द्वारा नागरिकों को देखने का अवसर दिया गया था उसकी कथा वर्णित है । बाण स्वयं चाहते हुये भी नहीं देख पाता ।

अष्टम उच्छ्वास में भट्टिनी निपुणिका तथा बाण द्वारा नौका-यात्रा का वर्णन है । नौका-चालन के समय भट्ट द्वाराभट्टिनी को चिन्ता-रहित होने के लिये आश्वासन देना तथा निपुणिका द्वारा अपनी आप बीती कथा सुनाने का भी वर्णन है । निपुणिका बताती है कि जब वह नाटक मण्डली को छोड़कर भाग आयी थी तब वह नगर की विख्यात गणिका मदनश्री के आश्रम में रही । एक दिन वह बाण का चित्र फलक चुराकर भाग आयी । शार्विलक की दुकान पर पुरुषवेश में चरस भरने का कार्य कियाऔर जब भट्ट निपुणिका को खोजते हुए शार्विलक की दुकान पर पहुँचा तो वह पुरुष वेशीय निपुणिका को न पहिचान सका था । वह यह भी भट्ट को बताती है कि वह एक ज्योतिषी से भी मिली और उसने निपुणिका से कहा कि जिस व्यक्ति के विषय में वह पूछ रही है वह व्यक्ति प्रसिद्ध कवि होगा लेकिन यदि किसी जीवित व्यक्ति पर वह कविता करेगा तो उसकी अल्पायु हो जायेगी । जब भट्ट ने निपुणिका से उक्त कहानी सुनाने का प्रयोजन पूछा तो निपुणिका ने बताया कि आपने अभी भट्टिनी पर काव्य लिखने की बात कही थी इसलिए मुझे यह कहानी सुनानी पड़ी । अन्ततोगत्वा भट्ट निपुणिका को ऐसा न करने के लिए आश्वस्त कर देता है ।

पुनश्च वह आप बीती सुनाती है कि नगर हार के मार्ग में प्रत्यन्त दस्युओं ने आक्रमण किया । दो सौ वीर खेत रहे । आदित्य सेना का विश्वास पात्र सेवक वीर सेनापति ने अकेले ही दस्युओं का सामना किया लेकिन मारा गया । नगरहार से पुरुषपुर जालन्धर और न जाने दस्युओं के साथ उसे कहाँ-कहाँ घूमना पड़ा तब कहीं स्थाण्वीश्वर आकर छोटे राजकुल की शरण लेनी पड़ी । कथा से भट्ट अभिभूत होकर निपुणिका को सान्त्वना देता है । भट्टिनी द्वारा महावराह की पूजा के साथ उच्छ्वास समाप्त हो जाता है ।

नवम् उच्छ्वास में बाण द्वारा भट्टिनी को गंगा प्रवाह से बचाने की कथा है । नौकायें त्रिवेणी पार करके चरणाद्रि-दुर्ग जिसको विन्ध्याटवी वेष्टित गंगा ने तीन ओर से घेर रखा था, तक पहुँचने पर एक सैनिक युवक बाण को सावधान करते हुए बताता है, दक्षिण के व्याघ्र सरोवर में आभीर सामन्त ईश्वर सेन का जोर है । वह गुप्त सम्राटों का बड़ा ही विश्वास भाजन है । कुमार ने हमें आदेश दिया है कि नौका उत्तरी-तट से ले जाई जाय और इन प्रान्तों में हमें कोई कान्यकुब्ज न समझ सके । बाण जागरूक हो गया यद्यपि वृद्ध जो मौखरि वंश में श्रद्धा रखता था उसे आश्वासन भी दिया लेकिन परिस्थिति को समझ रहा था ।

आभीर सामन्त ईश्वर सेन के सैनिकों ने उन लोगों पर सन्देह करके चारों तरफ से घेर लिया । इसी समय भट्टिनी और निपुणिका गंगा नदी में कूद गयीं भट्ट भी कर्तव्य समझकर कूद गया । निपुणिका के आग्रह पर उसने भट्टिनी को बचाने के लिये उस ओर रुख किया । भट्टिनी के साथ महावराह की मूर्ति होने के कारण वह भारी पड़ रही थी । भट्ट ने मूर्ति को गंगा-प्रवाह में बहाकर भट्टिनी को बचाकर तट पर ले गया । दोनों नौकायें युद्ध करते हुए दूर तक निकल गयी थी । भट्टिनी से बाण ने बैठने लायक स्थान पर चलने के लिए आग्रह किया वे दोनों ही बहुत थके हुए थे । फिर भी भट्टिनी चलने के लिये उठ खड़ी हुयी । निपुणिका का कोई पता न था ।

दशम् उच्छवास में बाण द्वारा निपुणिका के खोजने एवं कुछ तीर्थ देवी के पास साधना करते हुए अघोरघण्ट और चण्ड मैहना के चंगुल में फँस जाने की कथा वर्णित है । कथा इस प्रकार है, जब भट्टिनी को बाण ने शाल्मली वृक्ष के नीचे आश्रय ग्रहण कराया उस समय वह मूर्छित हो गयी । जब उसे चेतना प्राप्त हुयी तभी उसने बाण से निपुणिका को खोजने के लिए कहा । अकस्मात् वहाँ महामाया के आ जाने पर भट्ट, भट्टिनी को महामाया के संरक्षण में छोड़कर निपुणिका को खोजने के लिये निकल पड़ा । जब सन्ध्या होने तक निपुणिका न मिली तो वह लौट कर वापिस आया तथा महामाया और भट्टिनी के वार्तालाप को अप्रत्यक्ष रूप से सुनकर तथा भट्टिनी के मन में स्वयं के प्रति सम्मान की भावना पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । महामाया द्वारा प्रदत्त फल-फूल से उदर-पूर्ति कर वह निपुणिका को खोजने के लिए पूर्व की ओर चला गया । वहाँ एक कोस पहुचने पर लोरिक देव के प्रति आस्थावान नृत्य-गान करते हुए एक दल से उसकी भेंट हुयी और उन्होंने बाण से सरदार लोरिक देव से मिलने को कहा लेकिन बाण ने देवी-दर्शन का बहाना बना दिया ।

रात्रि में बाण कुतीर्थ देवी के दर्शनार्थ पहुँचता है । वहाँ घण्ट और चण्डमण्डना नामक साधक-साधिका साधना में रत रहते हैं । वे बाण को पाकर, देवी को बाण की बलि चढ़ा देना चाहते हैं लेकिन न जाने देवी उससे क्यों प्रसन्न न हो सकी थी । अत: बाण बलि चढ़ने से बच जाता है । अन्त में अवधूत बाण से देवी के व्यायाम रम्भ-वपु का वर्णन करने के लिए कहता है । बाण वर्णन करता है लेकिन अवधूत को उसका वर्णन पसन्द नहीं आता है अन्ततोगत्वा वह बाण को वहाँ से भगा देता है ।

एकादश एवं द्वादश उच्छवास में बाण भट्ट का स्वास्थ्य लाभ लोरिक देव का आश्रय तथा लौटकर स्थाण्वीश्वर जाना वर्णित है । महामाया के प्रभाव से भट्ट पुन: स्वस्थ्य हो चुका था । इसी बीच उन्हें आभीर सामन्त

लौरिक देव के घर में आश्रय प्राप्त हो गया था । लौरिक देव को भी उनके ब्राह्मण दम्पति होने की ही जानकारी थी । स्वास्थ्य लाभ के बाद भट्ट ने आर्यावर्त के निवासियों से देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या को खोजकर तुवर मिलिन्द के पास पहुँचाने का प्रयास किया था क्योंकि तुवरमिलिन्द अपनी कन्या के अपहरण के दुःख से दुःखी था ।

कुमार कृष्णवर्धन के भेजे हुए दूत ने भट्ट को कुमार का सन्देश दिया कुमार ने अनुरोध किया कि देव पुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या के संरक्षक के रूप में भट्ट महाराजाधिराज श्री हर्षदेव से वैर त्याग दें और उनसे मिलें । कुमार कृष्णदेव के संदेश के अतिरिक्त निपुणिका के स्वास्थ्य लाभ के निमित्त बाबा अघोर भैरव से मिलना आवश्यक था । जो कि महामाया के कथनानुसार इस समय स्थाण्वीश्वर में ही होना चाहिये थे । इसके अतिरिक्त निपुणिका को सती सुचरिता की खोज खबर लाने का भार भी ह भट्ट को सौंपा गया । भट्ट जब स्थाण्वीश्वर पहुँचा उस समय महाराज व कुमार कृष्ण मन्दिर गये हुये थे । वहाँ पर कुमार कृष्ण वर्धन से भट्ट का साक्षात्कार हुआ ।

त्रयोदश एवं चर्तुदश उच्छवास में बाण भट्ट के साथ ही श्री हर्षदेव का व्यवहार एवं सुचरिता की वर्णिना ही मुख्य कथांश है । राज्य सभा में प्रथम बार महाराज श्री हर्ष देव से बाण भट्ट का परिचय कराया गया तो महाराज ने उसे परम लम्पट की संज्ञा दी परन्तु कुमार कृष्ण के इंगित के कारण बाण भट्ट ने अपने क्रोधावेश को प्रगट ~~होने~~ न होने दिया, और राज्य सभा से चला गया । तदनन्तर वह सुचरिता की खोज में निकल गया । सुचरिता श्री पर्वत के वैष्णव ताण्डिक वेंकटेश भट्ट की शिष्यता स्वीकार करने के कारण भक्तिमयी माने जाने के कारण बौद्धों की आँखों का काटा बन जाने से अनजाने ही राजनीति की दलदल में फंस गयी थी । भट्ट ने सुचरिता से मिलकर उसके विषय में ज्ञातव्य बातों की जानकारी उसी के मुख से प्राप्त की ।

राज्यसभा में राज्य पण्डित के रूप में प्रथम गमन के उपरान्त बाण भट्ट को महामाया भैरवी के एक राजनीति मिश्रित भाषण से ज्ञात हुआ कि सुचरिता को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया है तथा अघोर भैरव व वेंकटेश भट्ट को देश निर्वासन का दण्ड दिया गया ।

पंचदश उच्छवास में भट्ट पुन: स्थाण्वीश्वर दुर्ग में लौटे पहले लौरिक देव से मिलकर देव पुत्र नन्दनी से मिले और उन्हें महारानी राजश्री का निमन्त्रण पत्र समर्पित किया । लौरिक देव ने अपने दस सहस्त्र मल्लों को भट्टिनी की सेवा में समर्पित करने की इच्छा व्यक्त की ।

षष्टदश व सप्तदश उच्छवास में भट्ट भट्टिनी तथा निपुणिका के भाव प्रवण प्रणय को दर्शाया गया है ।

अष्टदश उच्छवास में निपुणिका ने बाण भट्ट को सूचित किया कि भट्टिनी की यह प्रछन्न अभिलाषा है कि महाराज श्री हर्षदेव के सत्कार में उन्हीं के द्वारा रचित एक नयी नाटिका का अभिनय किया जाय ।

उन्नीसवें उच्छवास में देवपुत्र नन्दनी और छोटे राजकुल के बारे में चित्रण किया गया है ।

बीसवें यानि अन्तिम उच्छवास में उडुपति भट्ट और बौद्ध पण्डित वसुभूति के मध्य हुये शास्त्रार्थ विचार में उडुपति भट्ट की विजय के कारण बौद्ध नरपति श्री हर्षदेव ने घोषणा करा दी कि महाराजाधिराज को ब्राह्मण धर्म में पुन: आस्था हो गयी है । यह ब्राह्मण गुरु आचार्य भर्वुपाद को प्रसन्न करने का कुमार कृष्णवर्धन का सुविचारित कूटनीतिक प्रयास था जो कि सफल रहा । भर्वु शर्मा के आगमन के समय महाराजाधिराज द्वारा प्रणीत रत्नावली नाटिका का अभिनय किया गया । नाट्याभिनय के समय अन्तिम दृश्य में वासवदत्ता का अभिनय करते हुए निपुणिका का उदयन का अभिनय करने वाले

बाण भट्ट को रत्नावली का हाथ सौंपते हुये विचलित हो उठी । और नाट्याभिनय के साथ-साथ जीवन रूपी अभिनय को समाप्त करते हुये अपने हृदय के किसी गहरे कोने में बैठे हुये विश्वास को सार्थक कर गयी कि अपने को निःशेषभाव से दे देना ही वशीकरण है ।

भट्टिनी दुःख से चीत्कार कर उठी । और उसने प्रेम की दुर्दशाओं को एक सूत्र में गूंथ दिया । भट्टिनी अचेत हो गयी, जब उसे होश आया तो उसने भट्ट से कहा कि नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है । तभी भट्टिनी ने बतलाया कि आर्यावर्त का संकट टल गया है । आचार्य भर्वुपाद के कथनानुसार महामाया के असंगठित शिष्य उस समय देव पुत्र तुवर मिलिन्द द्वारा शिक्षित व संगठित किये जा रहे हैं, देवपुत्र नन्दनी ने भट्ट से आग्रह किया कि म्लेच्छों के हृदय परिवर्तन के कार्य में वह उनका हृदय परिवर्तन करें । भट्ट ने देवपुत्र नन्दनी के अनुरोध व आकर्षण के वशीभूत होकर उनके साथ चलने के लिये अपनी सहमति दे दी, परन्तु निपुणिका का श्राद्ध समाप्त होते ही आचार्य भर्वुपाद ने भट्ट को आज्ञा दी कि वे वहाँ न जाकर स्थाण्वीश्वर में ही रहें । परन्तु भट्ट अकेले ही प्रस्थान कर गया । उसके अन्तरात्मा के अतल गहवर से वह चिल्ला उठा "फिर क्या मिलना होगा"।

2- चारुचन्द्र लेख :- आचार्य द्विवेदी की चार औपन्यासिक कृतियों में चारुचन्द्र लेख का द्वितीय स्थान है । उनकी अपनी अनूठी शैली एवं सशक्त भाषा के कारण इस उपन्यास का अपना अलग स्थान है । कल्पना पूर्ण घटनाओं के ऐसे क्रम व विधि से वर्णन किया गया है कि उनके ऐतिहासिक होने का भ्रम बना रहता है । उपन्यास के नायक राजा सातवाहन का अपना असली नाम कहीं भी स्पष्ट नहीं किया गया है । परन्तु रानी चन्द्रलेखा के उसे सातवाहन कह देने मात्र से ही उसका नाम सदा के लिये सातवाहन मान लिया गया है । कथा में तान्त्रिक साधना के गूढ़ रहस्यों के स्पष्टीकरण में लेखक की वृत्ति विशेष रूप से रमी है । कथा का सार बिन्दु भी यही है कि मात्र तान्त्रिक साधना ही जीवन की सफलता एवं समाज में सुख कीर्ति प्राप्त करने का साधन नहीं है, अपितु क्रिया शक्ति ही समाज में सुख और कीर्ति-यश प्राप्ति का आधार है ।

इस प्रधान बिन्दु के आस-पास घूमती हुयी चारुचन्द्र लेख की कथा विविध दिशाओं में विस्तृत आकाश मण्डल को संजोये हुये है ।

चारुचन्द्र लेख का आरम्भ कथामुख से होता है । लेखक ने कथामुख लिखकर पाठकों को इस भ्रम में रखने का प्रयत्न किया है कि चारुचन्द्र लेख की कोई काल्पनिक कथा नहीं अपितु हिमालय पर्वत पर एक गुहा पृष्ठ पर अंकित ऐतिहासिक कथा है । और साधु अघोर नाथ ने चन्द्रदीप की यात्रा के समय इन कथा अवशेषों का संकलन करके लेखक को दिया है । कथा का आरम्भ राजा की इच्छा के साथ होता है, सीदी मौला का दर्शन किसी प्रकार हो । सीदी मौला एक फक्कड़ प्रकार के सन्त हैं । उनका एक बड़ा गुण यह भी है कि वे प्रसन्न हो जायें तो ताँबे को विशुद्ध सोने में परिणित कर दें । दुनिया का हाल चाल ज्ञान करने के लिये राजा उनका दर्शन करना चाहता है । अतः राजा ने उसी दिशा में अपना घोड़ा दौड़ा दिया । मार्ग में एक अन्य सन्त ने उन्हें बतलाया कि दक्षिण की ओर अपना घोड़ा दौड़ाओ । सीदी मौला तो नहीं मिलेगा परन्तु सीदी देवी अवश्य मिल जायेगी । राजा ने साधु के कथनानुसार दक्षिण को अपना घोड़ा दौड़ाया और एक मृग शावक को पकड़ने की इच्छा से राजा ने घोड़ा को उसके पीछे डाल दिया । मृग शावक भय के कारण तरुण तापस की खोज में निकली चन्द्र लेखा की गोद में छिप गया तथा वहीं प्रथम बार राजा को चन्द्रलेखा का दर्शन हुआ । बत्तीस स्त्री गुणों से युक्त पद्मिनी नारी चन्द्र लेखा को राजा ने विस्मय पूर्वक देखा और थोड़े से नाटकीय उत्तर प्रति उत्तर के पश्चात् उसे अपनी रानी स्वीकार कर लिया । रानी की इच्छानुसार उसे अपने घोड़े पर बिठाकर राजा तरुण तापस की खोज में निकल पड़ा, परन्तु उस दिन तरुण तापस के न मिलने पर राजा रानी को बिठाये हुये अपनी राजधानी लौट आया । राजधानी में धीर शर्मा तथा विद्याधर जैसे महान पुरुषों ने भी प्रथम दर्शन में ही रानी के गुणों को पहिचानते हुए राजा को सौभाग्यशाली माना ।

रानी ने राजा को बतलाया कि वह वस्तुतः कृषक कन्या नहीं है ; अपितु बालकपन में वह किसी कारण से उसकी माता द्वारा परित्यक्ता होने के कारण कृषक दम्पति की झोली में आ पड़ी थी । रानी ने बतलाया कि काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी विद्याधर शर्मा ने उसे भाग्यशालिनी कन्या बतलाया था और कहा था कि वह भविष्य में रानी बनेगी । और उसका पति उसे स्वयं वरेगा । कुछ दिन पश्चात स्वयं मन्त्री विद्याधर शर्मा ने राजा के सम्मुख रानी की बातों की पुष्टि की । और रहस्य से पर्दा उठाते हुए बतलाया कि रानी चन्द्र लेखा महाप्रतापी राजा परमार्दिदेव परिमाल की दौहित्री तथा काशी कन्नौज के राजा की पुत्री है । इसके बाद मन्त्री विद्याधर शर्मा ने इच्छा प्रकट की कि राजा सातवाहन चक्रवर्ती राजा की पदवी प्राप्त करने के निमित्त प्रयत्न में जुट जायें और रानी चन्द्र लेखा इस कार्य में उन्हें सहयोग प्रदान करें । मन्त्री ने बतलाया कि निकट भविष्य में आर्यावर्त पर यवनों का आक्रमण होने वाला है । उसकी विभीषिका को दूर करने के लिये राजा और रानी कमर कसकर तैयार हो जायें ।

इसी बीच राजा को एक दिन सीदी मौला के दर्शन हो गये । सीदी मौला ने राजा को मंगोलों के विषय में जानकारी दी, तथा मंगोलों द्वारा किये गये अत्याचार की कहानी राजा को सुनायी जिसे उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था । रानी चन्द्र लेखा ने तरुण तापस नागनाथ को खोज लिया, उन्होंने रानी के हाथ का भोजन स्नेह पूर्वक ग्रहण किया और स्वयं को धन्य समझते हुए राजा को चक्रवर्ती बनने का आशीर्वाद देते हुए चले गये । उसी दिन मन्त्री विद्याधर शर्मा ने रानी चन्द्र लेखा के जन्म के विषय में पूर्व वर्णित वृतान्त को सुनाया । तथा रानी और राजा से वचन लिया कि वे प्रजा के लिये कल्याणकारी बनें । तत्पश्चात युद्ध का नगाड़ा बज उठा । राजा महल से निकल कर उस स्थल पर पहुँचे जहाँ भट्ट जगन्नायक उच्च स्वर में कविता पाठ करके सैनिकों के हृदयों में शक्ति संचार कर रहे थे ।

रानी ने भी राजा का अनुमोदन किया । धीर शर्मा ने श्लोकों की झड़ी लगाकर रानी को पार्वती व चण्डिका की संज्ञा देकर उनका यशोगान किया । राजा व रानी दोनों प्रजाओं में शक्ति संचार करने में जुट गये उन्हें गाँव की यात्रा करनी पड़ी और पैदल भी चलना पड़ा । तान्त्रिक प्रभाव के कारण रानी स्वयं को प्रथम पुरुष के रूप में अभिग्रहीत करने लगी । रानी ने राजधानी पहुँचकर राजा को अपने अनुभव सुनाये इस प्रकार राजा और रानी मिलकर केवल सैनिकों का प्रतिरोध करने में सक्षम हुये । वहीं विद्याधर शर्मा ने अपने युद्ध अनुभव राजा को सुनाते हुए कहा कि साधारण प्रजा ने युद्ध में उनकी बहुत सहायता की । इस विषय में नर जाति में पैदा हुये एक किशोर वय बालक में नरसिंह की वीरता का उन्होंने बहुत बखान किया । आज उसी मनसिंह ने राजा को रानी चन्द्र लेखा द्वारा लिखे गये कुछ पत्रों का पुलिन्दा दिया । राजा ने रानी के हस्ताक्षरों को पहचान कर उन्हें पढ़ने के लिये दीपक की व्यवस्था करने का आदेश दिया। पत्रावली में रानी ने वह सब वृतान्त लिखा था जिस प्रकार रानी चन्द्रिका के दोनों पुत्रों ने नागनाथ का वध किया था । रानी चन्द्रलेखा अपने भतीजों को पुत्रवत ही मानती थी । चन्द्रलेखा सिद्ध रस के स्पर्श मात्र से शक्ति प्राप्त करके नागनाथ के मृत शरीर को लेकर आकाश मार्ग से उड़ चली, जिससे अघट घटना घटने पर गोरखनाथ की सहायता प्राप्त की जा सके । रानी के लेखानुसार सिद्ध रस के साथ पार्श्वनाथ की रत्नमूर्ति भी धरती में उठारह हाथ नीचे चली गयी । चन्द्रलेखा नागनाथ के शव को साथ लेकर आकाशमार्ग से उड़ती हुयी मार्ग में मिले एक साधक के मार्ग निर्देशन के सहारे अमोघवज्र के पास पहुँच गयी । अमोघवज्र से मिलने के पहले रानी चन्द्रलेखा ने एक ऐसी तपस्विनी से मिलने का वृतान्त लिखा था जिसने सिद्धियों के चक्कर में पड़कर अपने पति की इच्छाओं को ध्यान में न रखकर साधना का मार्ग ही अपनाये रखा तथा अपने पति को भी उसी मार्ग पर चलने को कहा ।

उसकी आँखें तब खुली जब वह स्वयं तो सिद्धि तक न पहुँच सकी अपितु अपने व्यवहार से अपने पति को भी खो बैठी । उसका पति विक्षिप्तता की अवस्था तक पहुँच चुका था । चन्द्र लेखा को अपनी कहानी सुनाते समय वह दुःख कातर अवस्था में फूट-फूटकर रो उठी । चन्द्र लेखा के मन में तब तक वितर्क जाग उठा । उसने भी सोचा कि सिद्धियों के चक्कर में पड़कर वह भी अपने पति की सेवा कभी नहीं कर पायी । वह अपने को अपराधिनी सी महसूस करने लगी । पत्रावली में चन्द्र लेखा ने यह भी लिखा था कि गोरखनाथ ने अमोघवज्र को उपदेश दिया था कि वह सिद्धियों के चक्कर में न पड़ें क्योंकि इससे समूचे आर्यावर्त का कल्याण नहीं होगा ।

राजा सातवाहन इस पत्र के पढ़े जाते समय बीच में ही संज्ञा शून्य हो गये थे । परन्तु मन्त्री विद्याधर ने अपने शिष्य गोधा से रानी द्वारा लिखी सम्पूर्ण पत्रावली पढ़वाकर सुनी । राजा की संज्ञा लौट आने पर मैनसिंह ने राजा को बतलाया कि रानी चन्द्र लेखा उसकी माँ के पास उसके घर में विद्यमान है । राजा के कहने पर वह उन्हें पैदल ही दूर तक अपने घर ले आया । वहाँ पर राजा को ज्ञात हुआ कि मैनसिंह वस्तुतः नाटी माता की पुत्री मैना थी । नाटी माता के निवास पर सैनिकों ने आक्रमण कर राजा को बन्दी बनाना चाहा परन्तु राजा की वीरता एवं मैना के द्वारा एकत्रित ग्रामीणों के रण कौशल के आगे उनकी एक न चली । धुण्डकेश्वर के सैनिकों ने दूसरा आक्रमण राजा के ऊपर तब किया जब राजा और रानी चन्द्रलेखा दोनों ही भगवती विष्णुप्रिया के आश्रम में थे उस आक्रमण के फलस्वरूप विष्णुप्रिया मृत्यु का ग्रास बन गयी और राजा सात-वाहन संज्ञा शून्य हो गये । इस द्वितीय आक्रमण से ही धुण्डकेश्वर ने धीर शर्मा को बन्दी बना लिया । इधर मैना ने मैनसिंह के रूप में धुण्डक सेना में पहुँचकर हलचल मचा दी । यद्यपि धीर शर्मा तो मुक्त हो गये परन्तु मैना पर धुण्डकेश्वर ने परशु से आक्रमण करके उसे घायल कर दिया ।

इस काण्ड के बाद मैना भगवती विष्णु प्रिया के आश्रम में पहुँची । तब बौधा प्रधान व मैना की एकान्तिक बातों को सुनकर राजा सातवाहन को ज्ञात हुआ कि मैना नाटीमाता की सन्तान नहीं है । अपितु जगन्नाथपुरी मन्दिर के द्वार पर देवदासी बनाने के निमित्त छोड़ी गयी किसी की दुध मुही बच्ची है । भगवती विष्णु प्रिया के आश्रम में राजा के संज्ञा शून्य हो जाने पर मन्त्री विद्याधर द्वारा कूटनीति के फलस्वरूप चन्द्रलेखा को छिपाकर रखा गया, तथा जन साधारण में यह प्रचारित करा दिया गया कि रानी चन्द्रलेखा साक्षात महिषमर्दिनी हैं, और वे आकाशमार्ग से यात्रा करके प्रजा में शक्ति का संचार कर रही है । पुनः संज्ञा प्राप्त करके पहले तो राजा सातवाहन को यह सन्देह हुआ कि आश्रम पर हुये आक्रमण के समय रानी चन्द्रलेखा की भी मृत्यु हो गयी है और यह रहस्य उससे छिपाया जा रहा है । परन्तु अन्त में राजा जान गये कि रानी जीवित तो है परन्तु किसी कूटनीतिज्ञ सफलता के निमित्त उन्हें छिपाकर रखा गया है । अमोघवज्र की मन्त्रणा के अनुसार विद्याधर भट्ट ने राजा से प्रार्थना की, कि वे सपादलक्ष्य के राजा अशोकचल्ल से सहायता का वचन लेकर दिल्ली के यवन राजा पर आक्रमण करने की तैयारी करें । उनकी इच्छानुसार राजा सातवाहन सपादलक्ष प्रदेश गये । अशोकचल्ल ने राजा सातवाहन की सहायता करने या न करने का निर्णय करने के लिये शिवावली अनुष्ठान किया, परन्तु यह अ अनुष्ठान असफल रहा । इधर भैरव ने कुछ तांत्रिक क्रियाओं के पश्चात अशोक चल्ल तथा बोधा प्रधान को अभिभूत कर लिया । उन्होंने बोधा प्रधान से यह प्रतिज्ञा करा ली कि अशोक चल्ल ने जो वचन उसको दिये थे उन्हें राजा सातवाहन पूरा करेंगे, और बदले में राजा अशोकचल्ल उसकी सहायता करेगा ।

बोधा प्रधान ने दो पत्र राजा सातवाहन को दिखायें जिनमें अशोकचल्ल द्वारा पूरे न किये गये वचनों का उल्लेख था । अन्य बातों के साथ-साथ बोधा प्रधान ने राजा को चन्द्रवाली भैरवी तथा तुर्क सेनापति के विषय में बतलाया ।

इधर सीदी मौला ने राजा सातवाहन को समाचार दिया कि मैनसिंह की अपूर्व वीरता के कारण शाह को दिल्ली के यवन राजा के चंगुल से छुड़ाया जा सका है। वह अद्भुत वीर बालक है। शाह ने आपको सहायता का वचन दिया है। उन्होंने बतलाया है कि दिल्ली के दरबार में शाह ही तो एक मात्र देवता थे। अभागे सुल्तान ने उन्हें भी अपना शत्रु बना दिया।

राजा सातवाहन और बोधा प्रधान मन्त्रणा में लगे थे कि धीर शर्मा के साथ कुण्डीर तथा मैनसिंह उपस्थित हुये। कुण्डीर ने विद्याधर भट्ट का लिखा हुआ पत्र राजा को समर्पित किया। पत्र में भट्ट ने राजा को सलाह दी, कि शाह के साथ वह मैत्री स्थापित करें। यदि शाह और अशोकचल्ल की सेना दिल्ली पर आक्रमणकर सके तो बहुत अच्छा हो। पत्र में लिखा था कि रानी चन्द्रलेखा भी आपके पास पहुंचने वाली है। मैनसिंह ने समाचार दिया कि भद्रकाली के अपहरणकर्ता का कुछ-कुछ संज्ञान मिल गया है। उस समय मैनसिंह ने प्रतिज्ञा की कि भद्रकाली के अपहर्ता तुर्क सैनिक का सिर विच्छेदन करने का वह संकल्प पूरा करेगा। उसने राजा से आज्ञा चाही कि भैरव को साथ लेकर तुर्क सेनापति को पहिचानकर उसका सिर विच्छेदन कर दूं। राजा ने उसे सहर्ष आज्ञा दे दी। परन्तु बोधा प्रधान के मन में कुछ आशंका थी उन्होंने मैनसिंह को रोकना भी चाहा परन्तु वह रुका नहीं।

कुण्डीर तथा धीरशर्मा के चले जाने पर राजा और बोधा प्रधान उस स्थान को छोड़कर जाने की जल्दी में अन्धकार के कारण मार्ग में भटक गये, और उसी भटकन में वे शाह के डेरे के निकट पहुंच गये वहां एक स्त्री को हिन्दू पूजा पद्धति के अनुसार पूजा करती हुयी देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि यह शाह का ही निवास स्थान है। क्योंकि उन्होंने सुना था कि शाह की पत्नी हिन्दू है। और वह हिन्दू पद्धति

से ही भगवान की पूजा करती है । शाह की ओर से उसे अपने धर्म के अनुसार पूजा व अन्य क्रिया कलाप करने की पूरी छूट थी । उसी समय भैरव के साथ मैनसिंह वहाँ पर आया और भैरव ने शाह को पहचान कर चिल्लाकर कहा कि यही भद्रकाली का अपहर्ता है और तभी बिजली की सी तेजी से मैनसिंह ने शाह पर भाले का वार किया और शाह का शरीर निष्प्राण होकर धरती पर लुढ़क गया । तभी भद्रकाली यह कहती हुयी शाह के निर्जीव शरीर पर गिर पड़ी कि पिताजी आपने मेरा सुहाग लूट लिया भद्रकाली का यह करुणा पूर्ण रूप देखकर भैरव का भी प्राणान्त हो गया । तभी राजा सातवाहन ने चिल्लाकर कहा कि हाय मैना, तूने यह क्या किया तेरे हाथों से मित्रघात होने वाला था । मैना ने राजा के इन शब्दों को कदाचित सुन लिया था, उसने पश्चाताप के कारण अपना भाला अपने ही शरीर में भोंक लिया था । जब राजा और बोधा बचाओ-बचाओ की करुण चीत्कार सुनकर वहाँ पहुँचे तो देखा कि रक्त से भीगी मैना रानी चन्द्रलेखा की गोद में गिरी पड़ी है । राजा का रानी से दीर्घकाल के बाद मिलन भी हुआ तो किस अवस्था में ।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास के अन्त में बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

शब्द का अनुसरण करते हुए हम दोनों पहुँचे तो मैना रक्त भीगी अपूर्व तेजस्विनी महिला की गोद में गिरी पड़ी है । केवल यही शब्द सुनाई दे रहा था बचाओ.....बचाओ....। महाराज, सातवाहन से मिलने के लिये व्याकुल रानी का यही मिलन हुआ, उन्हें होश में लाने में थोड़ा विलम्ब हुआ, फिर बोधा ने मैना के आहत शरीर को उठा लिया यह कहते हुए कि जल्दी महाराज, जल्दी भागिये । रानी व मुझे घसीटते हुए पर्वती वन स्थली में घुस गये । रानी पहले से ही थकी हुयी थी अब तो उनमें चलने की शक्ति ही नहीं थी । मैंने उन्हें पीठ पर लाद लिया एवं घने अन्धकार में विकट वन भूमि के मार्ग से हम लोग भागे । सोचने का अवसर ही नहीं मिला ।

कथा के इस मोड़ पर आचार्य द्विवेदी ने उपन्यास का अन्त कर दिया है ।

3- पुनर्नवा - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की काल क्रमानुसार यह तीसरी उपन्यास कृति है । पुनर्नवा के पूर्वार्द्ध में कथा तो पूर्णतः लेखक की कल्पना द्वारा ही प्रस्तुत है । परन्तु उत्तरार्द्ध की कथा में मृच्छकटिकम् नाटक के कथानक का पर्याप्त मात्रा में सहारा लिया गया है । कथा का आरम्भ भूतपूर्व राजकुमार देवरात की चारित्रिक विशेषताओं के प्रख्यापन से होता है । विमाता के हृदयहीन दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर वे अपना देश छोड़कर हल द्वीप में आकर बस गये थे । अनेक विद्याओं व कलाओं में निपुण देवरात को साधारण प्रजा जनों के साथ-साथ हल द्वीप के राज दरबार का भी सम्मान प्राप्त था । उनका आश्रम हल द्वीप के पश्चिमी छोर पर महा सरयू के तट पर अवस्थित था । च्यवन भूमि के चौधरी वृद्धगोप उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे । वृद्धगोप ने अपने पालित पुत्र श्याम रूप तथा औरस पुत्र आर्यक को विद्या प्राप्त करने के लिये देवरात के आश्रम में भेज रखा था । श्यामरूप वस्तुतः ब्राह्मणकुमार था । उसके माता-पिता नदी में डूबने के कारण वृद्धगोप ने उसका लालन-पालन किया था । उस समय श्याम रूप की अवस्था आठ या नौ वर्ष तथा आर्यक की चार वर्ष की थी ।

हलद्वीप के सरस्वती विहार नामक स्थान पर एक बार राजा के सभापतित्व में रूपगर्विता मंजुला का नृत्य हुआ । इस नृत्य में देवरात भी आमन्त्रित थे । मंजुला की सूरत देवरात की मृत पत्नी शर्मिष्ठा के समान होने के कारण देवरात का हृदय मंजुला की ओर आकर्षित हुआ, परन्तु यह आकर्षण शुद्ध सात्विक रूप का था । कला मर्मज्ञ होने के कारण देवरात मंजुला के नृत्य की कमियों को स्पष्ट करने में चूकते नहीं थे । इस कारण

मंजुला के हृदय में उनके प्रति प्रतिद्वन्दता की भावना जागृत हो गयी । यद्यपि देवरात के हृदय में ऐसा कोई भाव नहीं था । अन्त में मंजुला को भी यह विश्वास हो गया कि देवरात का उसके प्रति कोई जलन या प्रतिद्वन्दता का भाव नहीं था, अपितु वे मंजुला के शुभाकांक्षी ही थे ।

एक बार मंजुला ने उनके आश्रम में नंगे पैर जाकर उनसे क्षमा याचना की और अपने घर उनसे आने की प्रार्थना की । महामारी के प्रकोप के समय देवरात मंजुला के घर गये तब तक मंजुला इस संसार को छोड़कर जाने की तैयारी में थी । उसने अपनी 2-3 वर्ष की पुत्री मृणालमंजरी को देवरात को सौंपकर संसार से प्रस्थान किया । देवरात मृणालमंजरी को भी अपने आश्रम में ले आये, और उसे भी श्यामरूप व आर्यक के साथ-साथ शिक्षा देने लगे । अठारह वर्ष का होते-होते श्याम रूप पूरा मल्ल बन चुका था । श्याम रूप अट्ठारह वर्ष की अवस्था में हलद्वीप को छोड़कर नटों की एक टोली के साथ भाग गया, क्योंकि वृद्धगोप ने उसे उसकी जाति के अनुरूप वैदिक कर्म-काण्ड की शिक्षा के अनुरूप सिद्धेश्वर की पाठशाला में भेज दिया था । वहाँ मन न लगने के कारण बार-बार देवरात के आश्रम में आ जाता था । परन्तु वृद्धगोप उसे हर बार पाठशाला में भेज देते थे । अन्त में वह भाग खड़ा हुआ ।

आर्यक व मृणाल मंजरी दोनों लगभग समवयस्क थे । साथ-साथ रहने के कारण दोनों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था । उसी समय जब आर्यक लगभग चौदह वर्ष का था । श्यामरूप को खोजने के लिये आश्रम छोड़कर चला गया । वहा से लौटने के बाद उसे फिर आश्रम नहीं भेजा गया । क्योंकि वृद्धगोप को भय था कि वह श्याम रूप को खोजने के लिये भाग जायेगा । इधर मृणालमंजरी देवरात के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करती रही । तीन-चार वर्ष बाद देवरात के प्रयत्न से आर्यक व मृणालमंजरी दाम्पत्य सूत्र में बंध गये । तब तक आर्यक अद्वितीय

मल्ल बन चुका था । विवाह से पूर्व देवरात ने मृणाल मंजरी को उसकी माता मंजुला तथा अपनी पत्नी प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में सब कुछ बता दिया था । विवाह के बाद देवरात देशान्तर भ्रमण के लिये निकल गये । मंजुला द्वारा दिये गये आभूषण भी विवाह के समय उन्होंने मृणाल मंजरी को सौंप दिये थे ।

श्यामरूप ने मल्ल के रूप में अपार ख्याति प्राप्त की । नटों के मुखिया ने उसका नाम छबीला पण्डित रख दिया था । छबीला पण्डित ने प्रसिद्ध पहलवान अंकुश को भी परास्त करने में सफलता प्राप्त की । नटों की मण्डली में ही उसे मदनिका नाम की लड़की से स्नेह हो गया । परन्तु जब मल्ल की पत्नी ने उसे मथुरा की गणिका के हाथों बेच दिया, यह पता लगने पर छबीला पण्डित भी नट मण्डली को छोड़कर मथुरा के लिये भाग गया । मथुरा के लहुरावीर मन्दिर के वृद्ध पुजारी की सहानुभूति प्राप्त करके, पुजारी की ही कृपा से श्यामरूप को राजा के पितृव्य चन्द्रसेन का आश्रय प्राप्त हो गया । वृद्ध पुजारी ने छबीला का नाम बदलकर कार्तिक कर दिया था । एक विशाल मल्ल प्रतियोगिता में कार्तिक ने तमाम मल्लों को पराभूत कर दिया । मथुरा के निवासियों के हृदय में उसने स्थान बना लिया, परन्तु वह अन्य प्रतियोगी पहलवानों की आँखों की किरकिरी बन गया । तभी उसे बताया गया कि आर्यक का विवाह मृणालमंजरी से हो चुका है और अब उन्हें एक पुत्र भी प्राप्त हो चुका होगा । आर्यक को महाराज समुद्रगुप्त ने अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया है । और आर्यक ने हलद्वीप के राजा को भी पराजित कर दिया है, परन्तु इसके साथ-साथ यह भी बताया गया कि श्रीचन्द्र की विवाहित पत्नी चन्द्रा जबरदस्ती आर्यक के गले पड़ गयी । उसके एक दिन लज्जास्पद कृत्य के कारण मैं §वीरक§ तो हलद्वीप छोड़कर यहाँ भाग आया हूँ, और पीछे खबर मिली है कि उसी के कारण आर्यक भैया को देश छोड़कर

भाग जाना पड़ा है । वीरक के यह बतलाने के पूर्व वृद्ध पण्डित ने शार्विलक को यह वृतान्त सुना दिया कि दूसरे की पत्नी से प्रेम करने के कारण महाराज समुद्रगुप्त रुष्ट हो गये थे, अतः आर्यक देश छोड़कर भाग गया । वीरक ने यह भी बतलाया कि उसने सुना है कि आर्यक अब मथुरा पर चढ़ाई करने वाला है वीरक ने शार्विलक को सूचना दी कि मदनिका को कपोतक नाम का एक व्यक्ति विक्रय के लिये उज्जयिनी की ओर ले गया है । वीरक को यह जानकारी एक कुआड़ी से हुयी थी जो कि कपोतक से मदनिका को खरीदना चाहता था । मथुरा में भय व्याप्त था कि राजा समुद्रगुप्त का सेनापति मथुरा पर आक्रमण करने वाला है अतः शार्विलक के आश्रयदाता चन्द्रसेन ने उसे उज्जैनी की ओर जाने की आज्ञा दी । जब उसे ज्ञात हुआ कि मदनिका उज्जैनी में ही मिल सकती है तो वह हर्ष पूर्वक उज्जैनी जाने को उद्यत हुआ । उसने वीरक को भी अपने साथ ले जाने की व्यवस्था करा दी ।

चण्डसेन का परिवार छिपकर उज्जैनी पहुँचा, क्योंकि चन्द्रसेन उज्जैनी के राजा पालक के भी पितृव्य थे । परन्तु वे पालक से किसी बात पर अप्रसन्न थे, इसलिए मथुरा जाकर रहने लगे थे । इस रहस्य को उज्जैनी में केवल एक व्यक्ति आचार्य श्रुतिधर ही जानते थे, जो कि जीर्णोधाम में स्थित पाठशाला के आचार्य थे । शार्विलक के गहरे मित्र थे । शार्विलक यहाँ गुप्त रूप से चन्द्रसेन के परिवार की सुरक्षा व सेवा में व्यस्त था । आचार्य श्रुतिधर शार्विलक को छोटे भाई जैसा स्नेह करते थे । उन्होंने शार्विलक के पूर्व जीवन का सारा वृतान्त जान लिया था ।

एक दिन चन्द्रसेन की पत्नी ने कुछ दान सामग्री बौद्ध विहार तक पहुँचाने के लिये शार्विलक से कहा । बौद्ध विहार से लौटते समय शार्विलक ने देखा कि राजा पालक के सैनिक चारुदत्त के घर में घुस कर एक स्त्री का अपमान करने का प्रयत्न कर रहे हैं । शार्विलक ने क्रोध में

आकर अपना नाम बतलाकर ललकारा । उसके नाम के श्रवण मात्र से ही सैनिक भाग निकले वह स्त्री जिसे सैनिक उठा ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे जब होश में आयी तो शार्विलक ने देखा कि वह मदनिका ही थी । उसने बतलाया कि कपोतक ने पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं के बदले में उसे वसन्त सेना के हाथों बेच दिया था । शार्विलक ने उसे एक सप्ताह में छुड़ाकर अपने साथ ले जाने का वायदा किया और वह दीपौंधाम की ओर चल पड़ा ।

मार्ग में उसे एक दण्डाधर ने पहिचान लिया । उसके कहने से कुछ सैनिक उसके पीछे पकड़ने हेतु दौड़े । शार्विलक उस समय निःशस्त्र था और सैनिकों की संख्या अत्यधिक थी अतः वह जान बचाने के लिये भाग पड़ा और सैनिक उसका पीछा करने लगे ।

शार्विलक को मार्ग में यक्ष भूमिका निवासी किशोर कवि चन्द्रमौलि तथा पण्डित माढ़व्य शर्मा वार्तालाप में संलग्न मिले । उसने उन्हें संकेत किया कि वे कहीं छिप जावें क्योंकि वे दण्डधर इधर ही आ रहे हैं । आगे चलकर पर्वत शिला पर सुप्तावस्था में अवस्थित आर्यक मिला, जिसे श्यामरूप पहिचान न सका और उसे भी जगाकर छिप जाने के लिये कहता हुआ त्वरित गति से आगे बढ़ गया । आर्यक को बाद में ध्यान आया कि यह आवाज तो श्यामरूप की थी । परन्तु तब तक श्यामरूप बहुत दूर जा चुका था । आर्यक जब छिपने का स्थान खोज रहा था तभी उसका साक्षात्कार माढ़व्य व चन्द्रमौलि के साथ हुआ था । यद्यपि उसने उन्हें अपना परिचय न देकर अपना नाम गोपाल बतलाया परन्तु माढ़व्य शर्मा ने उसे पहिचान लिया ।

शार्विलक भाग कर एक मन्दिर में पहुँचा जहाँ एक ब्राह्मण दम्पति निवास करते थे । जिनका पुत्र युवावस्था में ही काल कवलित हो गया था परिणाम स्वरूप वृद्ध पिता विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त हो गये थे

वहाँ ब्राह्मणों ने उसे पुत्रवत स्नेह दिया और अतीत में प्राप्त अत्यन्त उत्तम शास्त्र को उसने शार्विलक को दे दिया । जिससे शार्विलक की शास्त्र प्राप्ति की साध्य पूरी हो गयी ।

देवरात अपने हृदय की शान्ति लाभ के लिये उज्जैनी में महाकाल के दर्शन करने हेतु पहुँचा । महाकाल के मन्दिर में चन्द्रमौलि अपनी श्रद्धा विरचित स्तुति परक कविता का पाठ कर रहा था । उस कविता का देवरात के हृदय पर अकल्पनीय प्रभाव पड़ा । वे उस किशोर कवि से प्रभावित होकर उसके साथ उसके तत्कालीन निवास स्थान पर पहुँचे ।अपने परिचय में चन्द्रमौलि ने मात्र अपने जन्म स्थान पद्मभूमि का ही परिचय दिया । उसने देवरात को अपने मित्र एवं हितैषी माढ़व्य शर्मा के विषय में भी जानकारी दी और बातों ही बातों में आर्यक से भेंट होने का वृतान्त भी देवरात को सुनाया । उसने बताया कि गोपाल आर्य यहाँ से चुपचाप चले गये हैं । माढ़व्य शर्मा ने बताया कि नगर के पूर्वी छोर पर स्थित जीर्ण उद्यान में आर्यक की आकृति से मिलती जुलती आकृति वाला कोई पुरुष दिखाई पड़ा । राजा के सैनिक उसे बन्दी बनाने के प्रयत्न में हैं । सुनकर देवरात अकेले ही आर्यक की खोज में निकल पड़े ।

हलद्वीप में सहसा जब आर्यक के भाग जाने का समाचार पहुँचा तो मृणाल का हृदय अत्यन्त दुखित हो उठा । सुमेर काका उसकी खोज खबर के लिये उसके निवास स्थान पर आये हुये हैं । उसी समय चन्द्रा भी यहाँ पहुँच गयी । पहले तो सुमेर काका ने उसे बहुत खरी खोटी सुनायी और आर्यक की मृत्यु के लिये उसे उत्तरदायी ठहराया । परन्तु चन्द्रा के मुख से पूरी राम कहानी सुनकर तथा आर्यक के प्रति चन्द्रा के निश्छल प्रेम के विषय में जानकर वे चन्द्रा के प्रति नरम पड़ गये, और उसे कुलवधू की संज्ञा देकर उसके पक्षपाती बन गये । चन्द्रा के हृदय ने मृणाल के हृदय को जीत लेने में सफलता पायी ।

उज्जैनी में जब देवरात आर्यक की खोज में जीर्ण उद्यान की ओर चले मार्ग में उनका आचार्य श्रुतिधर से साक्षात्कार हो गया देवरात का परिचय पाकर आचार्य श्रुतिधर ने बतलाया कि श्यामरूप शार्विलक जीर्ण उद्यान में रहकर अपने हितैषी व संरक्षक आर्य चन्द्रसेन के परिवार के संरक्षण में लगे हुये है । देवरात भी आचार्य श्रुतिधर के साथ वहाँ पहुँच गये ।

गोपाल आर्यक माताजी के निर्देशानुसार चारुदत्त से मिलने उनके निवास स्थान पर गया । उन्होंने आर्यक को पर्दे वाली गाड़ी में बैठ जाने को कहा, और राज मार्ग पर वाहन चल पड़ा । वे माताजी के निर्देशानुसार सुरक्षा के हिसाब से अन्य स्थान की ओर जा रहे थे, क्योंकि राजा पालक चारुदत्त को अपना शत्रु मानता था, और उनके प्राणों का शत्रु था । पालक ने सैनिकों को वाहन तलाशी का आदेश दिया । तभी आर्यक नंगी तलवार लेकर कूद पड़ा और कूद कर पालक के रथ पर चढ़ गया । उसने अपनी तलवार से पालक का सिर काट दिया और अपना नाम बतलाकर सैनिकों और प्रजा से कहा कि मेरी सेना मथुरा से उज्जैनी को चल पड़ी है और कुछ ही देर में यहाँ पहुँचने वाली है । उसने सैनिकों को आदेश दिया कि वे उसकी आज्ञा का पालन करें । कुछ सैनिक आर्यक की आज्ञा मानकर उसके पक्ष में आ गये । चारुदत्त आर्यक को साथ लेकर राजमहल में गये । वहाँ प्रमुख नागरिकों की उपस्थिति में आर्यक का राज्याभिषेक कर दिया गया ।

उधर शार्विलक जब शस्त्र-प्राप्त करके उज्जैनी लौटा तो एक वृद्ध व्यक्ति से यह समाचार पाकर कि भानुदत्त ने चण्डसेन को बन्दी बना लिया है और उनके विश्वास भाजन महामल्ल शार्विलक पर आरोप लगाया है कि उसने चारुदत्त के घर चोरी की है । वृद्ध ने उसे बताया कि सुना है वसन्तसेना की हत्या कर दी गयी है और हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगाया गया है । यह सुनकर शार्विलक वसन्तसेना के आवास

की ओर बढ़ गया क्योंकि उसके मस्तिष्क में मदनिका की सुरक्षा की भी चिन्ता थी । वहाँ उसने भानुदत्त के सैनिकों को मार भगाया, और बसन्त सेना के घर के भीतर प्रवेश करके मृतप्राय बसन्तसेना व मदनिका को बन्धनों से मुक्त किया । बसन्तसेना और मदनिका को श्रुतिधर की देख-रेख में छोड़कर वह आर्यक से मिलने के लिये राजभवन की ओर चल दिया । वहाँ भी उसे युद्ध में उलझना पड़ा । वहाँ पर गुरू देवरात भी उसकी वीरता पर मुग्ध होकर शार्विलक की जय-जयकार करते व आशीर्वाद देते देखे गये । इससे पूर्व भानुदत्त के अनुचरों ने देवरात को भी चन्द्रमौलि व माढ़व्य शर्मा के साथ बन्दी बनाकर एक सुनसान गृह में डाल दिया । परन्तु देवरात के प्रयत्न से वे वहाँ से मुक्त हो गये थे । चन्द्रमौलि व माढ़व्य शर्मा को देवरात का पूर्व परिचय प्राप्त हो गया था । चन्द्रमौलि ने देवरात को बताया कि वह उनकी पत्नी शर्मिष्ठा की बहन सुनीता का पुत्र है और अब मातृ-पितृ-विहीन है । चित्त अशान्त होने के कारण महाकाल के दर्शनार्थ उज्जैनी आया है ।

शार्विलक को पता चल गया था कि भानुदत्त ने चण्डसेन को कहाँ पर बन्दी बनाकर डाल दिया है । वह कुछ विश्वास-पात्र व्यक्तियों के साथ वहाँ पहुँचा और मृतप्राय चण्डसेन को बन्धन मुक्त करके नदी तट पर लाया । उसी समय भटार्क के सेनापतित्व में समुद्रगुप्त की सेना वहाँ पहुँची वहाँ पर श्यामरूप व भटार्क का परिचय तथा मिलन हुआ । दोनों ने मिलकर चण्डसेन को उनके हाथी पर चढ़ाकर उनके आवास पहुँचाया । भटार्क ने अपने वाक्य चातुर्य से चण्डसेन को पूर्णतया आश्वस्त करके राज्यभार ग्रहण करने के लिये तैयार कर लिया । तत्पश्चात् श्यामरूप राजभवन में पहुँचकर आर्यक से मिला । आर्यक ने उसे पुन: हलद्वीप लौट चलने की प्रार्थना की । श्यामरूप ने हलद्वीप लौटकर चलना स्वीकार कर लिया और आर्यक

को अपने हलद्वीप पहुँचने से पहले वहाँ पहुँचने का आदेश दिया । बाद में वसन्तसेना का सन्देश मिलने पर शार्विलक वसन्तसेना व मदनिका से मिलने चला गया ।

देवरात जब शार्विलक का पराक्रम देखकर वहाँ से लौटे तो उनका मन आर्यक के विषय में सोचकर अशान्त हो गया था । वे मृणालमंजरी की दुःखी अवस्था के लिये आर्यक के चरित्र को दोषी मानकर क्षुब्ध हो रहे थे और उज्जैनी से निकल भागना चाह रहे थे । तभी भाव सत्तात्मक मंजुला के दिव्य शरीर के दर्शन हुये । उन्होंने सभ्रम उस दिव्य शोभा शालिनी भाव मूर्ति को देखा और पुनः पुनः देवी पुनर्नवा कहकर सम्बोधित किया । तभी देवरात की पुनर्नवा [मंजुला] ने पुनः सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम्हारे जैसा, विवेकी दृष्टा मैंने नहीं देखा, आज तुम्हें हो क्या गया है । तुम्हारे मन में कोई अनुचित चिन्ता शल्य बनकर चुभ रही है । निकाल दो उसे फैंक दो उसे । प्यार करो उसे जो प्यार का अधिकारी हो । लोगों की सुनी बातों से विचलित न हो, अपने विषय में उस भावमूर्ति ने बताया कि तुम्हारे अभिलाषा के बन्धन में बँधी हुयी हूँ । बार-बार लौटकर आती हूँ । जिन पर तुम्हारा ध्यान केन्द्रित होता है, संसार दूर से खींचता है पुनर्नवा बनना पड़ता है । मंजुला के भाव शरीर ने उनसे मथुरा निवास करने की प्रार्थना की और देवरात ने मथुरा जाना स्वीकार कर लिया ।

मृणालमंजरी व चन्द्रा दोनों सुमेर काका के साथ मथुरा के समीप वटेश्वर तीर्थ में पहुँच चुकी थी । उनसे कुछ दूरी पर ही समुद्रगुप्त भी अपनी सेना के साथ मथुरा पहुँच चुके थे । वहाँ पर उज्जैनी की विजय, आर्यक व शार्विलक की विजय का समाचार लेकर दूत उनकी सेवा में उपस्थित हुआ । तभी उन्हें समाचार मिला कि आर्यक शीघ्र ही यहाँ आने वाला है । उन्होंने सेनापति धनन्जय को आदेश दिया कि आर्यक के यहाँ आते ही मुझसे मिलने की व्यवस्था अवश्य की जाय कहीं वह मुँह छिपाकर निकल न जाय ।

आर्क व समुद्रगुप्त का मिलन हुआ । मथुरा में आते ही आर्क को चन्द्रमौलि भी वहीं मिल गया । चन्द्रमौलि को समुद्रगुप्त के पास वहीं छोड़कर आर्क अपने परिवारजनों से मिलने के लिये वटेश्वर चल दिया, क्योंकि समुद्रगुप्त ने उससे शीघ्र पहुँचने का अनुरोध किया था । वटेश्वर पहुँचने पर उसने चन्द्रा को मूर्च्छित अवस्था में मृणाल की गोदी में पड़ा देखा । मृणाल ने आर्क को संकेत से अपने पास बुलाया और चन्द्रा को उसकी गोद में डाल दिया । आर्क की आँखों से आँसू बहने लगे । मृणाल के पुत्र शोभन के द्वारा बड़ी अम्मा सम्बोधन सुनकर उसकी तन्द्रा टूटी । उसने देखा कि वह आर्क की गोद में पड़ी है वह एकदम झटके से उठी और आर्क के चरणों में गिर पड़ी । आर्क अभिभूत, मृणाल गद-गद । शायद ऊपर देवताओं ने दुंदुभी निनाद किया । और उस दुंदुभी निनाद से सारा वायुमण्डल गूँज उठा ।

अनामदास का पोथा :-

यह उपन्यास कृति आचार्य द्विवेदी के जीवन दर्शन की सापेक्ष सवाक्त अभिव्यक्ति है । सरल भाषा में दार्शनिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत कृति की विशेषता है । कथा मुख में आचार्य द्विवेदी ने लिखा है इस देश में अनेक बड़े-बड़े ऋषि मुनि हुये हैं. उनकी तपस्या, मनन, चिन्तन से हम आज भी प्रभावित हैं ऐसे ही एक ऋषि थे रैक्व । उपनिषद् में उनकी कविता आती है । जितना कुछ मालूम है उनसे यही लगता है कि वे एक रथ के नीचे बैठकर अपना शरीर खुजला रहे थे । उसी समय राजा जानश्रुति तत्व ज्ञान की शिक्षा माँगने पहुँचे थे । इस तत्व ज्ञान को प्राप्त करने के लिये जानश्रुति को बीच में क्या-क्या प्रयास करने पड़े और अन्त में उन्हें अपनी कन्या को लेकर क्यों जाना पड़ा और सारी घटना से शरीर को खुजलाने का क्या सम्बन्ध है, यह अभी तक मालूम नहीं था । ठीक-ठीक मालूम तो अब भी नहीं है परन्तु जितना कुछ मालूम हुआ है वह मनोरंजक अवश्य है आगे वह कहानी दी जा रही है ।

उपन्यासकार ने रैक्व अपवालयन महर्षि आधृत ऋतम्भरा एवं जटिल मुनि आदि के माध्यम से योगक्रियायें एवं उनसे प्राप्त होने वाली उपलब्धियों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है । साथ ही साथ उन्होंने इस विचार को प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की है कि ध्यान, समाधि आदि यौगिक क्रियाओं की अपेक्षा दीन-हीन एवं आपद्ग्रस्त जनों के दुःख निवारणार्थ किये गये कार्यों का महत्व अधिक है । चारुचन्द्र लेख की तरह द्विवेदी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में भी क्रिया शक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया है । बाणभट्ट की आत्मकथा एवं चारुचन्द्र लेख की शैली पर ही लेखक ने पाठकों के मन में यह भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है कि मानो यह उपन्यास उनका स्वयं का लिखा हुआ नहीं है अपितु किसी अनाम लेखक ने लिखकर ही द्विवेदी जी को प्रकाशन के निमित्त समर्पित किया है । अनामदासका पोथा लिखते समय आचार्य द्विवेदी ने इस उपन्यास की परिकल्पना दो खण्डों में की थी ।

पहला खण्ड :-

"अथ रैक्व आख्यान" शीर्षक से प्रकाशित हुआ ।

दूसरा खण्ड :-

यह खण्ड उन्होंने लिखना शुरू किया ही था कि काल के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छीन लिया । द्वितीय खण्ड में उन्होंने केवल पाँच छः पृष्ठ लिखे हैं । जिसकी कथा का प्रथम खण्ड की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । उन पृष्ठों में द्विवेदी जी के कल्पित लेखक अनामदास, एक विश्व विद्यालय के शोध छात्र के यह प्रश्न करने पर कि उनका जीवन दर्शन क्या है, जीवन दर्शन के अर्थ ज्ञान के निमित्त एक तथाकथित सिद्ध महात्मा के पास पहुँचते हैं । परन्तु वे सिद्ध महात्मा लेखक की कृपा की आकांक्षा करते हैं । महात्मा के मुख से अनायास ही जीवन दर्शन शब्द निकल आने पर लेखक जीवन दर्शन के विषय में जिज्ञासा प्रकट

करता है । द्विवेदी जी दूसरे खण्ड में बस इतना ही लिख पाये थे । रैक्व आख्यान का आरम्भ रिक्व ऋषि के पुत्र रैक्व के बाल्यकाल से आरम्भ होता है । बाल्यकाल में वह अपने पिता रिक्व के आश्रम में होने वाले यज्ञ, अनुष्ठान, अध्ययन, अध्यापन, तथा दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन में उत्साह से भाग लेता था और अपने पिता की बातों को बड़े ध्यान से सुनता था । उसकी वह जिज्ञासा थी कि प्रवृत्ति उसके आगे के जीवन में भी बनी रही । बालक रैक्व की माता तो उसके जन्म के साथ ही मृत्यु का ग्रास बन चुकी थी, एवं उनके पिता भी जल्दी ही स्वर्गवासी हो गये थे । बालक रैक्व अनाथ हो गया । दुर्भाग्य एवं कष्टों के मध्य पलता हुआ वह बालक जब किशोरावस्था को प्राप्त हुआ तो उसके मन की प्रवृत्ति और भी वृद्धि को प्राप्त हो चुकी थी । इसी प्रवृत्ति के कारण जिज्ञासु जनों में उसके प्रति आदर का भाव था । धीरे-धीरे लोग उसे दर्शनीय समझने लगे और उसका यश फैलने लगा ।

समाधि में उसने अनुभव किया कि समस्त जगत के चैतन्य का कारण वायु है, प्राण भी वायु है । वह प्राण तत्व के रहस्य को समझना चाहते थे । तभी वे स्नान के लिये नदी की ओर चले । स्नान करते समय ही तूफान आया, और नदी की उत्ताल तरंगों में वे स्वयं ही बह गये । कुछ दूर किनारे पर जब वह निकल सके तो समीप ही मूर्छित अवस्था में पड़ी हुयी राजा जानश्रुति की कन्या जाबाला को उन्होंने देखा । परन्तु वे उसके परिचय से अनभिज्ञ थे । पास ही एक गाड़ी (रथ) कीचड़ में फँसी पड़ी थी, और गाड़ीवान मृत्यु को प्राप्त हो चुका था । रैक्व ने आज तक किसी स्त्री को देखा तक नहीं था । अतः वह स्त्री पदार्थ के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे । वे जाबाला को कोई स्वर्गीय रानी समझ रहे रहे थे । क्योंकि उन्होंने आज तक इतना सुन्दर व्यक्ति नहीं देखा था । जाबाला के बतलाने पर उन्हें बोध हुआ कि वह स्त्री पदार्थ है । जाबाला

के दार्शनिक व तर्क पूर्ण जवाबों का रैक्व के मन पर वर्णनातीत प्रभाव पड़ा । वे उसे शुभा कहकर पुकारने लगे । उसने उन्हें बतलाया कि वह महाराज जानश्रुति की पुत्री है । परन्तु उसने अपना नाम प्रकट नहीं किया । जाबाला ने जब अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की तब रैक्व ने प्रस्ताव किया कि वह अपनी पीठ पर बैठाकर उसे उसके घर पहुँचा देगा, और अपनी पीठ उसकी ओर कर दी । जाबाला ने उसे लोक व्यवहार समझाया और बतलाया कि एक किशोरी का किशोर की पीठ पर बैठना अनुचित व लोक निन्दा का कारण है । परन्तु लोक व्यवहार से अनभिज्ञ रैक्व को जाबाला के इस उत्तर से आश्चर्य हुआ । इसी बीच राजा के अनुचर जाबाला को खोजते हुये वहाँ पर आ गये । जाबाला ने तापस कुमार से छिप जाने को कहा और स्वयं अपने अनुचरों के साथ अपने घर को चली गयी । रैक्व के हृदय पर जाबाला के रूप व विद्वता का गहरा प्रभाव पड़ा था वह प्रतिक्षण उसके ध्यान में मग्न रहने लगा क्योंकि राजकुमारी के लिये उसने पीठ प्रस्तुत की थी और राजकुमारी ने उसे लोक विरुद्ध कहकर अस्वीकार कर दिया था । तभी से उसकी पीठ में सनसनाहट व खुजली सी रहने लगी थी। उधर जाबाला भी प्रतिक्षण ऋषि कुमार के ध्यान में ही मग्न रहने लगी थी । तभी राजपुरोहित औदुम्बरायण वहाँ पधारे । वे जाबाला को योग्य वर की तलाश करने गये थे, और अश्वल गोत्र उत्पन्न ऋषि कुमार आश्वलायन को उन्होंने इस योग्य चुना था । वहीं जंगल में उन्होंने हंसों के वार्तालाप में सुना था कि सभी सम्पत्ति रैक्व के पास जाती है । जब उन्होंने तरुण आश्वलायन को हंसों की बोली का प्रकरण सुनाया तो उसने भी इसका अनुमोदन किया । और उन्हें बतलाया कि रैक्व वास्तव में ही बहुत बड़ा तत्व ज्ञानी है । उसे विश्वास था कि हंसों में उसी के गुणों का बखान हो रहा है । पुरोहित औदुम्बरायण ऋषि कुमार से मिले किन्तु उससे मिलना उनका विकट अनुभव सिद्ध हुआ । उसने उनके प्रति कोई आदर व भाव प्रकट नहीं किया । प्रतिक्षण शुभा की प्रतीक्षा अवश्य की । जब औदुम्बरायण ने राजा जानश्रुति को यह बात सुनायी, तब जाबाला भी वहाँ उपस्थित थी । वह ऋषि कुमार का वर्णन तथा उसके मुख से

अपनी प्रशंसा का वर्णन सुनकर जड़ी भूति सी हो गयी थी । उधर राजा जानश्रुति व औदुम्बरायण इस तत्व से अनभिज्ञ थे कि जावाला को ही शुभा कहता है । इस प्रकार जावाला के हृदय में रैक्व के प्रति श्रद्धा व प्रेम का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया ।

एक दिन नदी तट पर रैक्व को महर्षि औशस्ति की पत्नी ऋतम्भरा के दर्शन हुये उसने केवल यही जाना कि वह शुभा की तरह कोई स्त्री पदार्थ है । ऋतम्भरा ने उसकी आश्चर्य चकित दृष्टि को पहचान कर उसे अपने पास बुलाया और उनसे बात-चीत की । वे भी उसके भोलेपन व विद्वत्ता से प्रभावित हुयीं और उसे अपने साथ आश्रम में ले आयीं । वे उसे अपना पुत्र मानकर शिक्षा देने लगीं । महर्षि भी उसे पुत्रवत मानने लगे, और यौगिक क्रियाओं के साथ-साथ व्यवहारिक शिक्षा भी देने लगे । रैक्व ने शुभा के बारे में माँ ऋतम्भरा को सब कुछ बता दिया, इससे माता ऋतम्भरा जावाला के विषय में रैक्व के आकर्षण की भावना से परिचित हो गयीं ।

एक दिन जावाला के मृत गाड़ीवान की पत्नी ऋतुका दीन-हीन अवस्था में रैक्व को मिल गयी । वह उसे भी माता ऋतम्भरा के पास ले आया, तब से ऋतुका भी वहीं आश्रम में रहने लगी । रैक्व उसे दीदी के सम्बोधन से पुकारने लगा परन्तु उसे इस बात का क्षोभ था कि अपने मृत गाड़ीवान की दुःखिया पत्नी की शुभा ने कोई सुध क्यों नहीं ली । रैक्व क्षुब्ध जान पड़े और बोले, माँ लगता है कि वह वही रथ चालक है जो शुभा को लेकर उस दिन चला था । हाय बिचारा मर ही गया पर उसके मरने पर किसी और पर विपत्ति पड़ेगी यह तो मुझे उस समय सूझा ही नहीं, पर शुभा तो जानती होगी । उसे भी उसका कुछ ध्यान नहीं रहा । अच्छा माँ जानश्रुति तो बड़ा विद्वान माना जाता है, उसे इस दुखिया की कोई परवाह ही नहीं । तत्वज्ञान के पीछे जो व्यक्ति पागल है उसे इतना ध्यान तो रखना ही चाहिये ।

जाबाला दिन पर दिन सूखती जा रही थी, मुख मुद्रा कान्ति-हीन हो गयी थी । राज पुरोहित औदुम्बरायण जो उसे पुत्रीवत मानते थे उसके दु:ख से बहुत दु:खी थे । जाबाला के रोग शान्ति के लिये औदुम्बरायण एक महात्मा से मिले । उस महात्मा ने बतलाया कि राज कन्या को मानसिक कष्ट है । महात्मा ने जाबाला के मनोविनोद के लिये नृत्य शास्त्र की व्यवस्था करने की मन्त्रणा दी । उसी महात्मा ने पुरोहित से संक्षेप में कहा कि हमारा राजा कर्त्तव्यहीन है, क्योंकि उसने तूफान में मरे रथ चालक की कोई खोज खबर नहीं ली और उसकी पत्नी महान कष्ट में है । आचार्य औदुम्बरायण ने यह बात राजा और राजकन्या को बतलाई तो जाबाला को अत्यन्त पश्चाताप हुआ और वह ऋतुका को खोजने के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार करने लगी । संकुला नाम की एक ओझा वृद्धा ने आचार्य को बतलाया कि जाबाला पर गन्धर्व का आवेश है । अत: गन्धर्व पूजन कराया जाय । आश्रम में जब ऋतुका ने रैक्व को बतलाया कि राज्य के लोग बड़े अभाव व कष्ट में जीवन यापन कर रहे हैं । दुर्भिक्ष के कारण उनके पास खाने के लिये अन्न का नितान्त अभाव है, वे भूख से मृत्यु का ग्रास बनते जा रहे हैं । आचार्य ने भी राजा को दुर्भिक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया । "आचार्य ने कहा- राजन् । मैंने इस समस्या पर बहुत सोचा । अकाल ग्रस्त लोगों की सहायता करना बहुत आवश्यक है । बेटी जाबाला तो गाँव-गाँव में घूमकर स्वयं देखना चाहती है, और यथोचित सेवा करना चाहती है । पर उसका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक नहीं है । वह बाहर घूमने निकल पड़ेगी तो निश्चित ही उसका रहा-सहा स्वास्थ्य भी जाता रहेगा । मैंने उसे किसी प्रकार रोक लिया है पर अधिक समय तक वह नहीं रुक सकती । जब तक उसे पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि राज्य की ओर से प्रजा की सहायता का ठीक-ठीक आयोजन कर दिया गया है, तब तक उसे रोकना कठिन होगा । "

इधर रैक्व ने माता ऋतम्भरा को महर्षि औपस्ति से पौर जनपदों की सहायता व सेवा करने की आज्ञा माँगी । ऋषि ने प्रीति पूर्वक ऋतम्भरा व रैक्व को आज्ञा दे दी ।

माता ऋतम्भरा व रैक्व जानश्रुति के राज्य में पहुँचे । वहाँ की दशा देखकर वे प्रजा की सेवा के लिये चिन्तातुर हो गये । वह अभाव-ग्रस्त बालकों के बीच में व्यस्त एक व्यक्ति जिसे सभी बच्चे मामा कहते थे के सेवा कार्यों से सभी अत्यन्त प्रभावित थे, और रैक्व भी उसी की भाँति शाक-पात लाकर नगर निवासियों की सेवा करने के विषय में उद्यत हुये । उधर माता ऋतम्भरा राजप्रसाद में जाकर राजा और जाबाला से मिली । वहाँ उन्होंने राजा को प्रजा रंजन का उपदेश दिया और राजा ने इस निमित्त सब कुछ करने का वचन दिया । प्रजाजनों को कार्य देने का राजा ने पहले ही निश्चय कर लिया था । कोहलियों के नृत्य-नाट्य एवं गन्धर्व पूजन के लिये मंच का निर्माण करने में प्रजा जनों को लगा दिया जाये, जिससे वे बदले में अन्न पा सकें और भूख से मुक्ति पा सकें ।

माता ऋतम्भरा ने एकान्त में जाबाला के मन की बात पूछी । उन्हें विश्वास हो गया कि जाबाला के मन में भी रैक्व के प्रति आकर्षण का भाव है । "भगवती ने हँसते हुये कहा कि - "कि जानती है बेटी एक मातृ-पितृ हीन किशोर मुझे रास्ते में मिल गया, बड़ा ही भोला । वन में रहकर तप करता रहा, उसे पता ही नहीं था कि पुरुष व स्त्री में क्या भेद है । बिचारे ने कभी किसी स्त्री को देखा ही नहीं था । "

नाम व गुण सुनकर जाबाला को झटका लगा, कि यह तो उसी का नाम है । वह चकित सी, भ्रमित सी भगवती ऋतम्भरा का मुँह देखती रह गयी । ऋतम्भरा ने जाबाला को आश्वस्त किया कि मृत रथ चालक की पत्नी ऋजुका भी आश्रम में ही है । स्वयं रैक्व उसे आश्रम में ले आया था । इस प्रकार उसने तेरी ओर से इस भूल का प्रायश्चित कर लिया है ।

रंग मंच का कार्य पूर्ण हो चुका था । जाबाला के रोग का समाचार जानकर उसकी मौसी की पुत्री अरुन्धती भी उसी के पास आ गयी थी । अरुन्धती ने जाबाला के मन की सभी बातें जान ली थीं । कोहलियों का नृत्य-नाट्य और गन्धर्व पूजन विधि पूर्वक सम्पन्न किया गया । नृत्य नाट्य के समय भी जाबाला को तापस कुमार ही प्रतिक्षण स्मरण आता रहा ।

माता ऋतम्भरा ने शुक्रा को भी जाबाला से मिलाया । जाबाला ने उससे रैक्व के विषय में पूछने के साथ-साथ उसकी विपत्ति की कथा सुनी और उसकी सहायता करने के लिये उसे उसी टूटे हुये रथ के पास निवास करने के लिये नियुक्त किया और आज्ञा दी कि यहाँ पर आने वाले महात्माओं और अन्य अतिथियों की सेवा करना ही तुम्हारा काम होगा । इसके लिये उसे पूरी आर्थिक सहायता देकर विदा किया । आश्रम में पहुँचकर अपने साथी ऋषि कुमार आश्वलायन को रैक्व ने जाबाला के प्रति अपने आकर्षण की बात बतायी । वस्तुत: आचार्य औदुम्बरायण आश्वलायन को जाबाला वाग्दान कर चुके थे, परन्तु आश्वलायन ने रैक्व व जाबाला के परस्पर प्रेम की बात रैक्व के मुख से सुनी तो उसने आचार्य को एक पत्र लिखा कि आपके पत्र के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि अभी जाबाला विवाह के लिये तैयार नहीं है । किन्तु मुझे जाबाला के मनोनुकूल वर मिल गया है । वह भगवती ऋतम्भरा का अंगीकृत पुत्र रैक्व है । मुझे विश्वास है कि जाबाला इस विवाह से अवश्य सुखी होगी ।

रैक्व जब महर्षि औपस्ति के दर्शन करने गये तब महर्षि ने उनसे कहा कि तुम्हारे हृदय की उथल-पुथल के विषय में मैं जानता हूँ । मैं तुमसे केवल एक बात कह देना चाहता हूँ कि संसार में जहाँ कहीं प्रेम व लगाव का भाव दिखाई देता है वह उपेक्षणीय नहीं है ।

नृत्य नाट्य के लगभग एक वर्ष बाद अरुन्धती के मुख से यह जानकर कि आचार्य औदुम्बरायण द्वारा चुने गये वर आश्वलायन के बिना जाबाला सुखी नहीं रह सकती । आचार्य घर छोड़कर कहीं चले गये । अरुन्धती भी अपनी माता के पास चली गयीं । जाबाला को अत्यन्त मानसिक कष्ट हुआ । उसने पिता से आज्ञा माँगी कि वह भगवती ऋतम्भरा व महर्षि औषस्ति के दर्शनों के लिये आश्रम जाना चाहती है । उसकी इच्छा जानकर राजा जानश्रुति भी उसके साथ आश्रम में आये अनेक ऋषियों से रैक्व अनेक विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर चुका था । वहाँ पर राजा जानश्रुति को रैक्व के प्रति जाबाला के आकर्षण के विषय में ज्ञात हो गया । रैक्व ने गाड़ी प्राप्त करके पौर जनपदों की सेवा आरम्भ कर दी थी । इसी को उन्होंने परमवैश्वानर की सच्ची उपासना मान लिया था । राजा जानश्रुति ने निश्चय कर लिया था कि जाबाला का विवाह रैक्व के साथ करेंगे । आचार्य औदुम्बरायण भी लौट आये थे और अब वे परम प्रसन्न थे । अन्त में राजा जानश्रुति ने रैक्व को जाबाला के साथ विधिवत विवाह बन्धन में बाँध दिया ।

मानव-मूल्यों के विविध आयाम

"मूल्य" मानव जीवन के ~~प्रति~~ प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध एक व्यापक अर्थयुक्त शब्द है । अपनी चेतना पर्यन्त मानव, मूल्यों से जुड़ा हुआ निरन्तर मूल्यों का अन्वेषण व सृजन करता रहता है । वस्तुतः "मूल्य" शब्द ने अर्थशास्त्र के माध्यम से जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रवेश किया है । मूल्य शब्द को तात्विक अर्थ से समझने के लिये इसके अर्थशास्त्रीय प्रयोग पर विचार करना आवश्यक होगा ।

> "अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक तो उपयोगिता के अर्थ में दूसरा विनय के अर्थ में । उपयोगिता या उपयोग मूल्य से तात्पर्य किसी वस्तु की उस सामर्थ्य में है जिसके रहते वह वस्तु किसी मानवीय आवश्यकता अथवा इच्छा को सन्तुष्ट करती है । इस अर्थ में मूल्य व्यवहारिक उपयोगिता व महत्व का द्योतक है । परिणाम स्वरूप वह साधन मूल्य का संकेत है । विनिमय मूल्य का तात्पर्य वस्तु की उस मात्रा से वह है जो किसी अन्य वस्तु के बदले में प्राप्त की जा सकती है । [1]

आधुनिक शब्दावली में इसे "दाम" कहते हैं । यद्यपि अन्य क्षेत्रों में जैसे नैतिक या दार्शनिक दृष्टिकोण से मूल्य शब्द को दाम के अर्थ में व्यवहृत नहीं किया जा सकता । इस स्तर पर तो इसे अमूल्य की संज्ञा दी जा सकती है ।

मूल्य शब्द के अर्थ को संकुचित नहीं किया जा सकता जो अपने आप में मूल्यवान हो, वही मूल्य है । प्रो० नन्द किशोर देवराज

---

[1] भारतीय इतिहास का संक्षिप्तावलोकन डा० आर० डी० शर्मा पृ०-20

इसी वस्तु को ऐसे पक्ष के रूप में परिभाषित करते हैं जो उसे ध्यान आकर्षण तथा वस्तुनिष्ठ चयन के योग्य बनाता है । संकुचित अर्थ में मूल्य शब्द वाँछनीय के समान ही प्रयुक्त होता है । लेकिन व्यापक अर्थों में सद्गुणों, सौन्दर्य, सत्यत् व पवित्रता के लिये इसका प्रयोग किया जाता है । "इस प्रकार आचार एवं विचार से सम्बन्धित मानदण्डों के आधार पर व्यक्ति या समाज, कर्म-अकर्म, उचित-अनुचित, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, योग्य-अयोग्य, नैतिक-अनैतिक, संग्रह-त्याग आदि का सम्यक विचार करते हुए तदनुसार व्यवहार, करता है । [1] इस प्रकार एक तरफ तो मूल्य आचार से सम्बद्ध होते हैं तो दूसरी ओर उनका आन्तरिक पक्ष विचार से सम्बद्ध होता है ।

मूल्य की परिभाषायें विभिन्न विद्वानों ने पृथक-पृथक ढंग से प्रस्तुत की हैं ।

जानसन ने मूल्य की परिभाषा एक साँस्कृतिक या व्यक्तिगत धारणा अथवा मानदण्ड के रूप में की है । जिसके द्वारा वस्तुओं की , सापेक्ष दृष्टि से तुलना की जाती है, उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है, सापेक्ष दृष्टि से वाँछित या अवाँछित कम या अधिक उपयोगी अथवा कम या अधिक सही माना जाता है ।

राधा कमल मुकर्जी के अनुसार मूल्य मनुष्य के सामाजिक झुकाव और निर्देशन के तन्त्र हैं । वे मानव समूहों और व्यक्तियों के द्वारा प्राकृतिक और सामाजिक संसार के साथ सामंजस्य करने के उपकरण हैं ।

वास्तव में मानव-मूल्य व्यक्ति को सामाजिक-सामन्जस्य की ओर ले जाते हैं । एक श्रेष्ठ समाज के निर्माण में इनकी भूमिका साधन तुल्य होती है । समाज में व्यवहार के क्षेत्र में मानव मूल्य एक मानदण्ड

---

[1] भारत का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक इतिहास, डा0 शंकर शरण तिवारी पृष्ठ सं0 92

होते हैं जो अच्छे, बुरे, कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय में महद् भूमिका का निर्वहन करते हैं । इनके परिणाम स्वतः सिद्ध होते हैं अतः समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति इनमें आस्था रखता है । अनेकता में एकता का सिद्धान्त मूल्यों पर ही निर्भर करता है । प्रेम, सहानुभूति, अहिंसा, दया, ईमानदारी आदि मूल्यों के परिणाम स्वरूप समाज अनेकत्व से एकत्व में परिवर्तित हो जाता है । अतः यह सामूहिक प्रकृति के परिणाम होते हैं और मनुष्यों को अपने भव्य जीवन के लिये तथा समाज के उन्नयन के लिये इनकी आवश्यकता है ।

यद्यपि मूल्यों में गतिशीलता होती है।आवश्यकता व परिस्थितियों के परिवर्तित होते ही ये परिवर्तित होने लगते हैं । अतः प्रत्येक समाज अपनी परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुरूप ही इनका विकास करता है । समाज की बहु आयामी प्रकृति के अनुसार मूल्यों का विभाजन कई क्षेत्रों में किया जाता है । नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक बौद्धिक, कला या सौन्दर्यपरक मूल्य, कानून या न्यायिक मूल्य ।

समाज द्वारा जो निर्धारित नियम होते हैं उन नियमों के आधार पर चलना नैतिकता कहलाती है । नैतिक मूल्यों की जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महती आवश्यकता है यह वैयक्तिक मूल्य होते हुए भी सारे समाज का सभी क्षेत्रों में विकास करते हुए उसे व्यवस्थित करते हैं । वैदिक ऋषियों ने नैतिक-गुणों से प्राप्त सदाचार पर बल देते हुये कहा है ।

"आचाराल्लभते ह्यायुः आचाराल्लभते श्रियम् ।
आचाराल्लभते कीर्तिम्, पुरुषः प्रेत्य चेहच ।।

आध्यात्मिक व नैतिक मानव-मूल्यों में सत्य, ईमानदारी, दया, क्षमाशीलता, त्याग, कर्मनिष्ठा, विश्वसनीयता, अहिंसा आदि गुण आते हैं जिन पर सम्पूर्ण समाज का अस्तित्व टिका हुआ है ।

मानव मूल्यों का सम्बन्ध मन चिन्तन, सांस्कृतिक विरासत एवं मानवीय आवश्यकताओं के आपसी सम्बन्ध से है । साहित्य भी कुछ इसी प्रकार से सक्षम व्यक्तियों के द्वारा किये गये प्रयासों के निरूपण की एक प्रक्रिया है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साहित्य मानवीय चेतना, संवेदनशीलता तथा आस-पास की घटनाओं का साहित्यकार द्वारा किये गये प्रत्यक्षीकरणों का शाब्दिक प्रस्तुतीकरण है । इसआत्म प्रस्तुति से एक ओर तो वह अपनी घुटन उद्वेलित मन के व तनाव से मुक्ति पाता है, अर्थात आत्म विवेचन कर लेता है, तो वहीं दूसरी ओर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में भी वह सफल हो जाता है । इस प्रक्रिया में वह स्वयं के अनुभवों, अनुभूतियों एवं सामाजिक मानदण्डों का उपयोग करता है ।

मानव मूल्य हमारे समक्ष एक निश्चित आकार में आते हैं । सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश तथा यथार्थ की भूमि से जन्म लेते हैं । निश्चित आकार मिलने तक विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति की वैयक्तिक क्षमतायें सामाजिक तथा वैयक्तिक योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं । इस पृष्ठ भूमि में विकसित विभिन्न आकार अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के कारण इन मूल्यों को विभिन्न वर्गों में रख देते हैं । वैयक्तिक भिन्नता तथा वैयक्तिक चयन इनमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । यही वह स्थिति है जहाँ अलग-अलग वर्गों के मूल्यों को उनके महत्व को प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के लिये निश्चित की गयी प्राथमिकताओं को तुलनात्मक रूप से भिन्नता प्रदर्शित करने वाले घटते-बढ़ते आकारों में प्रदर्शित करता है । साहित्यकार उन्हीं आकारों को विविध आयामों में परिलक्षित करता है ।

मानव जीवन एक अमूल्य निधि है । इसे यों ही नष्ट करना एक अप्राकृतिक, अनैतिक एक अक्षम्या दुष्कृत्य है । जीवन मूल्य किसी मानवीय

नैतिकता की धरोहर हैं। मानव केवल इसलिये मानव है क्योंकि वह अपने जीवन से भी बड़े मूल्यों का सृष्टा, शोधक तथा अनुसरण करने वाला होता है। वह जीवन की रक्षा ही मूल्यों की रक्षा के लिये करता है। बल्कि यों कहें कि मूल्यों के लिये जीवन ही उसका आदर्श और लक्ष्य होता है। मानव की मानवीय समाज की गुणात्मकता जिन चीजों पर निर्भर करती है, वे हैं भौतिक परिवेश, भरण व्यवस्था, समाज सम्बन्ध, मूल्य व्यवस्था और इन सबके प्रति व्यक्ति और समाज का मनोभाव या आचरण कालजयी साहित्य हर बार अनेक जटिल विकृतियों से भरे जगत में भी मानव जीवन के समृद्धतर होने के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करता है। इसलिए साहित्य और जीवन मूल्य का अन्त: सम्बन्ध सार्थक है।

मानव मूल्य कहने से एक प्रश्न उभर कर सामने आता है, कि क्या मूल्य अमानवीय भी होते हैं यदि मूल्य होगा तो मानव मूल्य अथवा जीवन मूल्य होगा ही। मूल्यों का वर्गीकरण करते समय नैतिक कलात्मक, सामाजिक अथवा साहित्यिक मूल्य की अलग-अलग पहचान और परिभाषा दी जाती है परन्तु वस्तुत: ऐसा करने का कोई विशेष कारण नहीं दिखाई पड़ता। मूल्यों का विकास सदा ही सांस्कृतिक उत्थान की ओर अग्रसर होता है। उसमें उतने ही उदात्तमूल्यों की अवस्थितियाँ होती हैं।

आनन्द को एक साहित्यिक मूल्य माना जाता रहा है। किसी काव्य रचना को पढ़कर या सुनकर पाठक व श्रोता साधरणीकृत होकर मधुमती भूमिका में प्रवेश करके आनन्द का अनुभव करने लगता है। वह स्वयं को विस्तृत कर साहित्यिक वैशिष्ट्य में समाहित होकर अभावमुक्त हो जाता है, और इसी में उसे आनन्द की उपलब्धि होती है। किन्तु ममेतर का स्थान साहित्य में और भी अधिक ऊँचा है। सन् 1936 में प्रेमचन्द्र ने एक भाषण के दौरान कहा था "कि साहित्य आनन्द भी देता

है पर सिर्फ वही नहीं उससे अधिक भी कुछ करता है, जैसे तुलसी और बिहारी भी बहुत आनन्द देते हैं लेकिन तुलसी बड़े कवि इसलिये हैं कि आनन्द देने के साथ-साथ उनका काव्य मूल्यों का ऐसा सृजन भी करता है जो मनुष्य को ऊपर उठाता है। वह मनुष्य को बदलता है, उन्नत करता है। प्रतिगामी सामाजिक ि यथा स्थिति को बदलता भी है।

साहित्य के मूल्यों को व्यापक समाज के मूल्यों से अलग करते हुए देखना चाहेंगे तो अनेक कठिनाइयाँ पैदा होंगी। साहित्य का व्याकरण तो अलग है किन्तु मूल्य अलग नहीं है वस्तुत: मूल्य साहित्य के विराट फलक पर परिलक्षित होते हैं। वर्तमान सामाजिक तथा वैयक्तिक परिवेश जिसमें परिवर्तन धीमे-धीमे परन्तु सतत् रूप से हो रहे हैं, अब पहले से एकदम अलग परिस्थितियों के सामने समाज के सामने इसी में एक लम्बे समय से स्थिर लगने वाले प्रतिमान एकाएक ही अपनी स्थिरता खोते हुए से लगने लगे हैं।

मानवीय व्यवहार का प्रत्येक पक्ष इस परिवर्तन से प्रभावित है। जीवन मूल्यों के महत्व जो मूलत: जीवन लक्ष्यों की ओर संकेत करते हैं इस परिवर्तन से अछूते नहीं रह सकते हैं। मूल्यों के महत्व से सम्बन्धित उन्मूलन भी अस्थिर हो चला है। यही अस्थिरता शब्द शिल्पी को कुछ विशेष प्रकार के भिन्न आकार के नवीन आकृतियों के सिर्फ बनाने को प्रेरित करती है। नवीनता लिये हुये ये शाब्दिक प्रस्तुतीकरण आम आदमी के जीवन से गहरे जुड़ जाते हैं। उसे ये प्रस्तुतीकरण उसकी अपनी भावनाओं के सम्बन्धित वातावरण के शब्द चित्र प्रतीत होते हैं। साहित्य मूल्यों के इसी रूप को वरण करता है। भारतीय मनीषियों ने मनुष्य को सृष्टि का सर्वोत्तम जीव बतलाते हुये लिखा है कि "नहि मानुषात श्रेष्ठतरम् हि किंचित्।" इसी बात को पन्त जी ने यों कहा है कि, "सुन्दर विश्व, सुमन सुन्दर,

मानव तू सबसे सुन्दरम् । प्रश्न उठता है कि ये कौन से तत्व हैं जो मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ एवं सुन्दर जीव बनाते हैं । यद्यपि जीव, वैज्ञानिक दृष्टि से भी मनुष्य पर्याप्त सक्षम एवं समृद्ध जीव है किन्तु बाह्य रूप से सृष्टि के अनेक जीव ऐसे हैं जो उसे बड़ी आसानी से परखनी दे सकते हैं फिर भी वह सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है । उसका एक ही उत्तर मेरी दृष्टि में है वह है, उसके आदर्श, उसके श्रेष्ठ जीवन लक्ष्य, उसके शताब्दियों में विकसित अर्जित स्थापित जीवन मूल्य ।

अतः मनुष्य को मनुष्य जीवन मूल्य ही बनाते हैं । दया, प्रेम, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, सहृदयता, सहिष्णुता, संवेदना, वृहद्तर एवं महत्तर लोक हितों के लिये अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठने की प्रवृत्ति आदि अनेक मूल्य हैं । जो उसे अन्य जीवों से श्रेष्ठतर सिद्ध करते हैं । क्योंकि साहित्य मनुष्य की सृष्टि है इसीलिये मानवीय मूल्यों का उसमें होना स्वाभाविकता है । साहित्यकार की संवेदना सामान्य मनुष्य से कहीं अधिक तीव्र होती है । अतः उसमें मनुष्य सर्वाधिक अभिव्यक्ति पाता है और जब मनुष्य का मानुष्य अभिव्यक्त होता है तो उसका और कुछ नहीं उसका जीवन मूल्य अभिव्यक्त होता है। प्रायः कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है । यह कथन आंशिक सत्य है, और वह भी इस अर्थ में कि साहित्य में साहित्यकार और समकालीन समाज प्रति-बिम्बित होता है । अतः उस समाज की जो भी अच्छी बुरी छवि होती है, साहित्य में व्यक्त होती है । कभी-कभी तो साहित्यकार अपने युग से ऊपर उठकर जीवन मूल्यों की स्थापना करता है । तुलसी की रामचरित मानस में रामराज्य का वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

वस्तुतः साहित्य का मानव मूल्यों से सीधा एवं घनिष्ठ सरोकार है । इसी कारण साहित्यिक भाव-बोध जीवन की गहराई को उकेरता है । साहित्यकार समाज में रहकर समाज के परिवर्तित व्यवहार एवं परिमार्जित

आचार को साहित्य में समाकलित करता है । आज का साहित्य आज के समाज का चित्रण कर रहा है । इसीलिये वर्तमान समय में मूल्यों में काफी गिरावट आ गयी है । साहित्य भी बदलते परिपेक्ष्य में बदलते मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता जा रहा है । आज मूल्य नये सन्दर्भ में नये परिवेश की रचना कर रहे हैं । मूल्यों का विघटन द्रुतगामी बन गया है । साहित्य इन्हीं आधारों को लेकर आज के समाज का चित्र प्रस्तुत कर रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन मूल्य विविध आयामों में होकर हमें यथा स्थिति निरूपित कर रहे हैं ।

1- वैयक्तिक एवं दार्शनिक दृष्टि में मानव मूल्य :-

विभिन्न कालों में मूल्य में परिवर्तन होते रहे हैं । प्रत्येक युग एवं देश की परिस्थितियाँ भिन्न होती है । अब उसी के अनुरूप जीवन मूल्य भी पृथक-पृथक होते हैं । उस समय की परिस्थितियाँ और जीवन मूल्यों के अनुरूप प्रेरणाओं और प्रयोजनों में परिवर्तन होते रहते हैं । वैयक्तिक व दार्शनिक दृष्टि से कहा जाय तो कहा जा सकता है कि मानव समाज में अस्तित्व की रक्षा के लिये निरन्तर संघर्ष व प्रतिस्पर्द्धा होती आयी है । इसके परिणाम स्वरूप मानव की नैतिक चेतना का एक निश्चित प्रतिमान विकसित हुआ है । यही परिणाम वस्तुत: मूल्यों के विकास का मूल आधार है । जीवन में मूल्यों की अत्यधिक महत्ता है । व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी प्रकार के मूल्य को प्राथमिकता देता है । मूल्यों के आधार पर ही मनुष्य में सामाजिक जीवन की समायोजनात्मक शैली का निर्धारण होता है । अत: मूल्य धारणायें हैं , जिन्हें हम अपने व्यवहार में अत्यधिक महत्व देते हैं । मूल्य मानवीय इच्छाओं तथा लक्ष्य भी है, जो मान्यताओं तथा परम्पराओं से ओत-प्रोत होते हैं । मूल्य वैयक्तिक चेतना पर निर्भर होते हैं । उनका पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्ध बाद में होता है ।

मूल्यों में बोधात्मक तत्व होता है, जिसके अनुसार व्यक्ति उचित अनुचित तय करता है । मूल्यों के द्वारा ही व्यक्तियों की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । इन्हीं के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार तथा भूमिकाओं का निर्धारण होता है । मूल्यों के द्वारा ही आदर्श तथा नैतिकता का विकास होता है । व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषतायें एवं अभिवृत्तियों का मूल्यॉकन मूल्यों द्वारा ही हो सकता है । इस प्रकार मूल्य वैयक्तिक एवं पारिवारिक दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार करता है । जिसमें लोग जीवन व्यतीत करते हैं । यही मूल्य पाप-पुण्य की व्याख्या भी करता है । मूल्य वेह भावनायें व घटनायें हैं, जो प्रस्तुत आदर्श में सहायक है जिन्हें हम चाहते हैं । ये व्यक्तिगत भी हो सकते हैं और सामाजिक भी । सभी समाजों में मूल्य न तो एक समान होते हैं, और न ही उन्हें एक समान आदर प्राप्त होता है । जैसे एक समाज में वैवाहिक दृष्टिकोण और उसकी स्थिरता को अधिक मूल्यवान समझा जाता है तो दूसरे में विवाह विच्छेद एवं अन्य दृष्टिकोण अधिक मूल्यवान समझे जाते हैं ।

मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में व्यक्ति के जीवन में विभिन्न मूल्यों का उद्भव किसी न किसी आवश्यकता के फलस्वरूप होता है । यही आवश्यकता प्रेरक कहलाती है । जो क्रिया को जाग्रत किये रहती है, और उसे बनाये रहती है । यह प्रेरक आवश्यकता, समस्या, लक्ष्य, उद्देश्य अथवा दुःख के रूप में उपस्थित हो सकता है । उस समय प्राणी का सन्तुलन बिगड़ जाता है, जब वह प्रस्तुत समस्या का समाधान करने में सक्षम नहीं हो पाता है । तनाव विकसित होने लगते हैं । ऐसी स्थिति में उसके अन्दर समायोजित करने की इच्छा अथवा आवश्यकता जन्म लेती है । व्यक्ति के द्वारा स्थिति के प्रति अनेक प्रतिक्रियायें की जाती हैं, तब वह अनुभव करता है कि सार्थक और निरर्थक कौन सी क्रियायें हैं । इस सामान्यीकरण तथा विभेदीकरण प्रक्रिया पर प्राणी की वैयक्तिक भिन्नताओं का भी प्रभाव पड़ता है । जिन सफल प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त करता है, उनका क्रमिक समाकलन मूल्यों को जन्म देता है ।

वैयक्तिक पारिवारिक एवं दार्शनिक दृष्टि से मूल्यों का मानव जीवन पर पड़े प्रभाव का आकलन किया जा सकता है। जीवन मूल्यों के निर्धारण में मानव की प्रस्तुत स्थिति उसका व्यक्तित्व तथा उसकी आवश्यकताओं जैसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रभाव पड़ता है। जिससे जीवन मूल्य प्रभावित रहते हैं। आवश्यकताओं में ऊँचा बनने की इच्छा, अपने को अधिक मूल्यांकन करने की क्षमता में सम्मिलित है। व्यक्ति चाहता है कि उसके समूह के लोग आदर करें, व्यक्ति की यही सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति आत्म विश्वास तथा पर्याप्तता उत्पन्न करती है। तब कहीं जाकर भौतिक आवश्यकता तृप्ति व्यक्ति को आत्म सिद्धि की आवश्यकता की ओर धकेलती है या प्रेरित करती है। मैस्लो ने कहा था- "अगर व्यक्ति जीवन में शान्ति चाहता है तो गायक को गाना अवश्य गाना चाहिये, कवि को अवश्य कविता लिखना चाहिये।" अत: हम कह सकते हैं कि जिस कार्य को व्यक्ति कर सकता है उस कार्य को उसे अवश्य करना चाहिये। इस आवश्यकता को हम आत्म सिद्धि कह सकते हैं।

जीवन दर्शन एक विराट फलक है। समाज में यह जानने वाले सभी आदर्श श्रेष्ठ नहीं हो सकते और न ही कोई संस्कृति व्यक्ति को सुन्दर, जीवन मूल्यों को बनाने की गारन्टी देती है। व्यक्ति पारिवारिक परिवर्तन की धारणा और विवशता लाने के लिये परिवर्तन के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रियायें करता है। विभिन्न संस्कृतियों और समाजों का ऐसा सार है जिसमें जीवन मूल्य ऐतिहासिक संस्कृति तथा जीवन की मौलिकता को एक साथ तानने की शक्ति प्रदान करते हैं।

२- सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में मानव मूल्य

मानव एक विवेकशील व चिन्तनशील प्राणी है । वह अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिये जीवन के कुछ लक्ष्य निर्धारित करता है, और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये कुछ आदर्शों तथा विचारों को साधन के रूप में धारण करता है । ये धारणा लिये गये आदर्श तथा विचार कुछ मूल्य रखते हैं, जिनमें व्यक्ति विशेष की रुचि तथा विश्वास होता है । इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिये वह कुछ निर्णय तथा मत निर्धारित करता है । यही मत तथा निर्णय मानव जीवन को मूल्य आधारित बनाते हैं । आज सामाजिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति हर चीज को कसौटी पर कसकर लाभ हानि के तराजू पर तौलकर सांसारिक ज्ञान की वृद्धि कर रहा है । आज का समाज औद्योगिक मानक पर व्यक्ति को परख रहा है प्रत्येक व्यक्ति समूह समुदाय एवं समाज के कुछ मूल्य होते हैं जिनके आधार पर वे जीवन्त बने रहते हैं । मूल्यहीन व्यक्ति समूह या समाज में मृतक के समान होता है । मैक्सवेबर ने मूल्यों को विचार माना है जिसके लिये मानव संघर्ष करता है । मूल्य सामाजिक मान्यता प्राप्त इच्छाओं व उद्देश्यों से परिपूर्ण होते हैं । मूल्यों का अस्तित्व मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसन्धान से लगाया जा सकता है । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मूल्य वे होते हैं जिनके निर्णय का माप व्यक्तियों, समूहों या संस्थाओं द्वारा सामाजिक सन्दर्भ से उत्पन्न होता है । मूल्य वे होते हैं जो वस्तुओं, मानव विचारों इत्यादि पर सामूहिक सामाजिकता का दबाव रखते हैं । वैसे मूल्य सकारात्मक अथवा नकारात्मक भी हो सकता है । सामाजिक सन्दर्भों में मूल्यों की धारणा को समझने के पश्चात यह आवश्यक है कि इसकी अर्जित करने की प्रक्रिया भी स्पष्ट की जाय । मूल्यों का अर्जन एवं विकास समाजीकरण की प्रक्रिया है । मूल्यों को अर्जित करने की इस प्रवृत्ति को जन्मजात प्रवृत्ति की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है । व्यक्ति समाज में रहता है और अपना सम्पूर्ण जीवन

समाज में ही व्यतीत करता है। अतः उस समाज में जो भी प्रवृत्ति मूल्य है उनको सीखता व मानता है। समाज में ऊँच-नीच का व्यवहार एक परम्परागत सामाजिक मूल्य बन गया है। हिन्दू परिवार का बच्चा अपनी अल्पायु से ही जो मूल्य सुनता रहता है, वयस्क होने पर उसे मानना प्रारम्भ कर देता है। अन्य वर्गों के समाज में भी ऐसा ही देखा जाता है। व्यक्ति को समाज में रहना पड़ता है। तथा वह उन सभी मूल्यों को मानता है जिन्हें अन्य लोग मानते हैं। मूल्यों का अर्जन एक दिन में नहीं होता उसका विकास शनैः शनैः व्यक्तित्व में होता है। सामाजिक साँस्कृतिक वातावरण की सहायता से मूल्यों का अर्जन सम्भव होता है। सामाजिक साँस्कृतिक वातावरण का अभिप्राय है कि परिवार विद्यालय समाज मूल्यों को सिखाये। मूल्यों का प्रत्येक समाज में बहुत महत्व होता है। मूल्य ही वास्तव में मानव समाज का एक आधार बनते हैं। इनमें परिवर्तन आने पर ही समाज में परिवर्तन आता है। मूल्यों के विकास के साथ-साथ मानवता के गुणों का विकास होता है। सामाजिक सन्दर्भों में मूल्यों के महत्व को देखते हुए अब हम वर्तमान समाज पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह मानना पड़ता है कि आधुनिक समाज एक वैज्ञानिक सोच का समाज बन गया है। नयी पीढ़ी व्यक्तिगत सम्बन्ध, सामाजिक सुरक्षा और मान्यता के आधार पर मूल्यों का निर्माण करने को तत्पर है। यह सम्पूर्ण मानव एवं सार्वभौमिक मूल्यों की खोज में है। जिनमें क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय मूल्यों को भी मिला दिया जा सके और समस्त मानवों के लिये एक नैतिक तन्त्र बन सके। इसके आधार पर व्यवस्था और सामाजिक स्थायित्व का निर्माण किया जा सके। आज की शिक्षा मूल्यों एवं सामाजिक व्यवहार के विषय में बदलते जीवन परिवेश को अनुशीलित करती है।

हमारी वर्तमान सभ्यता में असहयोग एवं एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या इतनी बढ़ गयी है, कि सहयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। यही प्रवृत्ति हमारी सभ्यता को समाप्त करने के लिये काफी है। सहयोग

का मूल्य आज के युग के लिये आवश्यक है। इस शताब्दी की सबसे बड़ी आवश्यकता सहयोग का मूल्य है । हमें अपने उद्योगों के साथ-साथ सामाजिक ज्ञान का विकास करना है । यदि हम एक दूसरे के साथ मिलकर जीवन निभाने की कला सीख लें, तो हमारे बहुत सारे संकट समाप्त हो सकते हैं । जीवन के छोटे-छोटे संघर्ष ही नहीं अपितु बड़े-बड़े युद्ध एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें भी समाप्त हो सकती हैं ।

वर्तमान समाज प्रतिद्वन्द्वता पर आधारित है । जिधर देखिये उधर ही प्रतिद्वन्द्वता पायी जाती है । इसका फल यह होता है कि बच्चों में प्रेम, सहयोग, बन्धुता के मूल्य विकसित ही नहीं हो पाते हैं । बच्चों का जीवन कुण्ठित हो जाता है । बड़ा व्यक्ति एक दूसरे से ईर्ष्या करता है । कोई किसी को ऊपर उठता नहीं देख सकता । बदला लेने के लिये उचित अनुचित का ध्यान रखे बिना कुछ भी करने को तैयार रहता है । आज कल प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का शोषण करना चाहता है और स्वयं सबसे ऊपर रहना चाहता है । स्वार्थ ही सबका मूल्य हो गया है । प्रत्येक व्यक्ति अधिक धन के चक्कर में रहता है । जीवन को उस धन से कितना आनन्द मिल रहा है इसका कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि हम निरुद्देश्य, मूल्यहीन जीवन बिता रहे हैं । धन आना चाहिये वह कैसे और किन साधनों से आता है इसका कोई प्रश्न नहीं है ।

वर्तमान समाज तथा पुराने समाज दोनों में आपस में संघर्ष है । पहले परिवार श्रम करने में धर्म का उच्च स्थान था । आदर, प्रेम, ईश्वर का भय, सत्य, ईमानदारी, बन्धुत्व, राष्ट्र से प्रेम आदि अब बेकार समझे जाते हैं । अब तो चतुर्दिक लालच और आत्म प्रदर्शन ही महत्वपूर्ण है । इस लिये वर्तमान समाज के लिये नये मूल्यों का निर्माण आवश्यक है । आज हमें रचनात्मक स्वार्थहीन प्रेम के महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में अपनाना चाहिये तभी हम समाज को स्वस्थ्य रूप दे सकेंगे ।

गोस्वामी तुलसीदास मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। और उसके लिये मूल्य की स्थापना को स्वीकार किया है। जगत में अनेक प्रकार के जीवन अस्तित्ववान है लेकिन विवेक शीलता और कर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार केवल मनुष्य जीवन को ही प्राप्त है। इसी कारण मानव आचरण, धर्म, नैतिकता और मूल्यों का केन्द्र बिन्दु होता है। आचरण मानव का वह व्यवहार है जो स्वतन्त्रता पूर्वक किया जाता है। धर्म भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करता है।

मानव की जीवन यात्रा मूल्यों की यात्रा है। माँ के गर्भ में जैसे ही भ्रूण अस्तित्व में आता है वैसे ही दाम्पत्य जीवन के मूल्यों में परिवर्तन होने लगता है। जो मात्र अब तक अपने सुख का ख्याल रखते थे वे अब बच्चे के लिये जीना शुरू कर देते हैं। मानव गृहस्थ जीवन में अपने और अपने परिवार की सुख-सुविधा के लिये जीता है। वानप्रस्थ समाज के लिए सन्यास में अपनी आत्म उन्नति के लिये, मानव जीवन के सम्पूर्ण परिवर्तन मूल्यात्मक है। मानव के आचरण का केन्द्र बिन्दु ही मूल्य है। वह मूल्यों के लिये जीता है और मूल्यों के लिये मरता भी है। इस प्रकार मूल्य देशकाल और परिस्थितियों के सापेक्ष उचित अनुचित का विचार कर मानव की ज्ञानात्मक, भावनात्मक और क्रियात्मक इच्छाओं की पूर्ति करता है। धार्मिक दृष्टि से मानव मूल्य साधन और साध्य दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं। मानव जिसे प्राप्त करना चाहता है वह उसका साध्य होता है और जिसके द्वारा प्राप्त करना चाहता है वह उसका साधन होता है। भारतीय परम्परा में मोक्ष को परम साध्य के रूप में स्वीकार किया गया है, और इसके साधन के रूप में धर्म, कर्म और भक्ति को बताया गया है। जीवन के मूल्य के आत्मगत और वस्तुगत स्वरूप को लेकर मत-भेद हो सकता है परन्तु सच यह है कि मानव मूल्य वस्तुगत न होकर आत्मगत अधिक होते हैं।

मानव मूल्य के स्वरूप सम्बन्धी विवेचन में धर्म व नैतिकता का विशेष स्थान है । यदि कहा जाय कि धर्म के बिना मूल्य, मूल्य नहीं नहीं रह जाता है, तो अतिशयोक्ति न होगी । धर्म मानव के अभ्युदय निःश्रेयस की सिद्धि करता है और नैतिकता मनुष्य को कुमार्ग से सुमार्ग की ओर ले जाती है । इस प्रकार धर्म मानव जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है । धर्म धारण करने को या दूसरों की भलाई करने को कहते हैं । पुरुषार्थ के चार चरणों में धर्म का पहला स्थान है । इसके बाद अर्थ, काम, मोक्ष आता है । समाज सेवा ही मानव मूल्यों का अन्तिम पड़ाव नहीं है । जीवन मूल्य की यात्रा धर्म से शुरू होकर मोक्ष तक जाती है । नैतिक मूल्य धार्मिक मूल्य के एक साधन के रूप में प्रयोग किया गया है । नैतिक मूल्य का सम्बन्ध एक शुभ-अशुभ और उचित अनुचित से होता है । नैतिक मूल्य के समक्ष यह समस्या रहती है कि किस मापदण्ड के आधार पर मानव आचरण को शुभ-अशुभ या उचित अनुचित ठहरायें । नीतिज्ञों ने इसके लिये कई मापदण्ड बनाये हैं । जैसे-सुखवादी मापदण्ड उपयोगिता वादी मापदण्ड बुद्धिवादी मापदण्ड, और आत्म पूर्णतावादी मापदण्ड ।

वैयक्तिक नैतिकता ही धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक आयामों में निरूपित रहती है । यदि व्यक्ति अपने जीवन में नैतिक नहीं है तो वह सामाजिक धार्मिक जीवन में भी कदापि नैतिक नहीं हो सकता है । मनुष्य अधिकांशतः अपने अधिकारों की बात करता है, लेकिन नैतिक कर्तव्य के प्रति वह विमुख हो जाता है । यही कारण है कि धर्म आध्यात्म की तलाश में भौतिकता के आवरण में ही लिपट कर रह जाता है । व्यक्ति चाहे किसी धर्म, जाति, प्रान्त या देश का वासी हो परन्तु वह धर्म का नाम लेकर मिथ्याचार नहीं कर सकता । आज आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जीवन मूल्यों का परिमार्जन होना चाहिये ।

इतिहास साक्षी है कि समय-समय पर विभिन्न धर्मों के मेल ने नैतिक मूल्यों को कभी नहीं झुठलाया । नैतिक मूल्यों के उत्थान के लिये किसी नये धर्म प्रवर्तक की आवश्यकता नहीं है । आज मानव आवश्यकता के शिखर पर खड़ा है जहाँ से वह चतुर्दिक विहंगम दृष्टि डालकर अपने वर्तमान को सम्भाल सकता है । वस्तुत: हमारी सभ्यता ने इतना विकास कर लिया है कि विश्व के किसी भी क्षेत्र में होने वाली घटनाओं की जानकारी नवीन आविष्कारों की सूचना अल्प समय में ही चारों ओर प्रसारित हो जाती है । अतैव हम चारों तरफ से आने वाली परमार्जित मूल्यवत्ता को क्यों न स्वीकारें ।

हमारी सांस्कृतिक विशेषतायें यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस रूप में होना चाहिये । उस स्थिति में यह आवश्यक है कि हम संस्कृति तथा इसको प्रभावित करने वाले घटकों को समझने का प्रयत्न करें । क्योंकि हमारे जीवन मूल्य प्रारम्भिक अवस्था में ही हमारी संस्कृति से सम्बद्ध रहते हैं । संस्कृति भौतिक, अभौतिक तत्वों की वह जटिल सम्पूर्णता है, जिसे व्यक्ति समाज का एक घटक होने के नाते प्राप्त करता है । अत: जिसमें वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है इसका सीधा सम्बन्ध जीवन मूल्यों के परम्परित अनुपालन में है । आज हमारी भौतिक संस्कृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं । हम आधुनिक ढंग से खेती करते हैं । मशीनों द्वारा उत्पादन कार्य करते हैं । यहाँ तक कि चिकित्सा द्वारा मृत्यु को भी कुछ क्षणों तक रोके रहने में समर्थ हो गये हैं । लेकिन दूसरी ओर हमारे लोकाचार हमारे विश्वास आज भी सैकड़ों तथा हजारों वर्ष पुराने है । लोकाचार में सांस्कृतिक सहिष्णुता, अन्तर्निहित है । उसमें प्रेम दया यहाँ तक कि आचार व्यवहार सब कुछ समाहित है । जीवन के विभिन्न मूल्य लोकाचार में ही समाहित हो जाते हैं । हम अपने आदर्शों की प्राप्ति के पहले सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की परि--कल्पना करते हैं और मेरे विचार से प्राप्त उद्देश्य ही हमारे जीवन मूल्य

हैं जिनमें प्रेम, दया, सहानुभूति आदि जुड़े हुये हैं इसमें लोक संस्कृति में, लोक परम्पराओं में मानव जीवन से जुड़े मूल्यों से साक्षात्कार होता है। किसी क्षेत्र की लोक संस्कृति लम्बे समय से चली आ रही तत्सम्बन्धित क्षेत्र के लोक जीवन में ही देखी जा सकती है। और वह लोक जीवन विश्व बन्धुत्व की भावना को अपने अन्तर में छिपाये हुये है। प्रकृति को ही सत्यम् शिवम् सुन्दरम् मानने वाला यहाँ का लोक मानस जिस धरती से अन्न प्राप्त करता है उसे कैसे कैसे ढंग से विधि विधान से पूजता है यह तो उसका अन्त:करण ही समझ सकता है। वस्तुत: मानव जीवन लोकार्पित जीवन है। अत: जीवन मूल्य लोक जीवन सापेक्ष है। यद्यपि हमारी शिक्षा हमारी संस्कृति के विषय में कम बताती है फिर भी नैतिक मूल्य भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के अभिन्न अंग है।

3- राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में मानव मूल्य

मनुष्य इसलिये शाश्वत है कि हर काल में हर परिस्थिति में उसके समक्ष जीवन के कुछ आधार भूत मूल्य रहते हैं, जो शाश्वत निरपेक्ष तथा नैतिकता से पूर्ण होते हैं। वस्तुत: इन मूल्यों का आधार ही, सभी को सभ्यता पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर कर जीने के लिये बनाया गया है। राजनैतिक सन्दर्भ में जीवन मूल्य नैतिक मूल्यों से भिन्न नहीं है। राष्ट्रीय एकता के विविध आयामों को सुरक्षित रखते हुये जहाँ सुदृढ़ केन्द्रीय संघ की स्थापना की गयी वहीं राज्यों को स्वायत्तता बनाये रखते हुये संघात्मक प्रवृत्ति को भी अपनाया गया। इस प्रकार के राजनैतिक मूल्य राज्य और केन्द्र के मध्य जोड़ने की कड़ी का काम करते हैं। हमारी भारतीय परम्परा में सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता एवं संघीय सत्ता का विवरण मिलता है। आज प्रश्न है कि राष्ट्रीय जीवन मूल्य जीवन के प्रेरक एक मात्र घोषित तत्व है। हमारी स्थिति ऐसी है कि हम परम्परा से ही मूल्यों की बात तो बहुत करते हैं परन्तु आचार विचार में नहीं ढालते।

आज राष्ट्र के भ्रष्ट राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय मूल्यों की मुख्य धारा से हट गये हैं। ऐतिहासिक परम्परा में ऐसी बातें नहीं थी बहुधा देखा जाता था कि राजा के चरित्र में उदारता, निष्ठा, स्नेह, करुणा साकार होती थी। परन्तु आज अलगावाद, आतंकवाद, पदलोलुपता, क्षेत्रीयता, अवसरवादिता ने परम्परित मूल्यों का खण्डन कर दिया है। हमारे संविधान निर्माताओं ने जीवन के आधार स्तम्भ मूल्यों को स्थान ही नहीं दिया बल्कि संवैधानिक ढाँचा भी इन्हीं मूल्यों की भूमि पर खड़ा किया है।

मनुष्य का चरम लक्ष्य मूल्यों का सृजन करना और उसका परम मूल्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। मनुष्य देहजीवी एवं बुद्धिजीवी दोनों है। यह देह की अपेक्षा क्षेपका अनवरत श्रेष्ठतर एवं उच्चतर जीवन स्थितियों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसके लिये वह अपने अद्वितीय रचनात्मक और विवेक बुद्धि से प्रदत्तों के विश्व को अपने अनुकूल परिवर्तित कर विश्व की रचना करता है। इस प्रयास में उसे नित्य नये जीवन मूल्यों की रचना करनी पड़ती है। समय के साथ-साथ जीवन मूल्यों में अन्तर तो आता रहता है क्योंकि मानव जीवन में मूल्यों की स्थापना करता चलता है और अर्जित मूल्य को जीवन की समस्त भावनाओं से परिचित होने के लिये समझना चाहता है। अतः मूल्य एक अवस्था है। जिसमें औचित्य का दृष्टिकोण बदलता रहता है। मनुष्य जीवन सार्थक एवं मूल्यवान है उसमें एक आन्तरिक शक्ति है।आर्थिक सन्दर्भ में जीवन मूल्यों का विशिष्ट स्थान है। मानव जीवन में विज्ञान की भूमिका की अभिवृत्ति से जीवन पद्धति एवं मानवीय दृष्टिकोण में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। सम्पूर्ण संसार आज एक लघु परिधि में सिमट गया है। जहाँ एक ओर वैज्ञानिक प्रगति के फल स्वरूप मानवीय आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत वृहद स्तरीय औद्योगिक उत्पादन एवं उच्चस्तरीय जीवन निर्वाह

संसाधनों में वृद्धि हुयी है । वहीं दूसरी ओर मानवीय जीवन बहुत सुख सुविधा भोगी हो गया है । निःसन्देह मानव विधाता की अद्भुत कृति है और इसे भू-मण्डल पर बुद्धि एवं विवेक जैसी विलक्षण शक्तियाँ प्रदत्त कर प्रकृति ने अन्य प्राणियों से अलग कर ब्रह्मांड की रचना में अधिक शक्तिशाली बनाया है और यही कारण है कि हजारों वर्ष पूर्व का आदिमानव पृथ्वी पर अनेक विकासात्मक अवस्थाओं को पार कर आज प्रकृति का स्वामी बनने में प्रयासरत है । लेकिन मानव जीवन का लक्ष्य अति भौतिकवादी जीवन प्राप्य न कर ऋषियों, मनिषियों एवं दार्शनिकों द्वारा बनाये गये आदर्शों को प्राप्त करना रहा है । जिसे साधन सुविधाओं में भारी अभिवृद्धि के स्थान पर व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास एवं जीवन मूल्यों में अभिवृद्धि से प्राप्त करने का प्रयास किया गया है । महाभारत, रामायण, गीता, कुरान एवं बाइबिल आदि ग्रन्थ इसके पोषक है । लेकिन विडम्बना यह है कि नवीन अनुसंधानों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा प्रदत्त आर्थिक संसाधनों का सदुपयोग के स्थान पर दुरुपयोग किया जा रहा है ।

वर्तमान भारतीय समाज में जातिगत टकराव, राजनैतिक नेताओं की चरित्र हीनता, उच्च अधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार, छात्रों में फैली अराजकता एवं असन्तोष विभिन्न वर्गों में आपसी मतभेद आदि के पीछे आर्थिक तत्वों की पृष्ठभूमि है । एक ओर जहाँ सामान्य भारतीय मुद्रा स्फीति, बेरोजगारी, अत्यधिक जनसंख्या के दुष्प्रभाव, गरीबी एवं निम्न स्तरीय नारकीय जीवन से त्रस्त है । वहाँ दूसरी ओर स्वार्थी, लोलुप एवं बेईमान राजनेता, अधिकारी, उद्योगपति एवं व्यापारी धन संग्रह के लिये पक्षपात कर रहे हैं ।

देश में जीवन मूल्यों का ह्रास इस सीमा तक हो रहा है कि मानो आज रिश्वत बेईमानी एवं झूठ तथा आतंकवाद भारतीय समाज के आदर्श स्वीकार कर लिये गये हैं । मानव स्वभाव की यह विकृतियाँ

देश में प्रारम्भिक संस्थायें, परिवार एवं स्कूलों से लेकर प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर के प्रत्येक विभाग, निगम, कार्यालय एवं न्यायालय में प्रविष्ट कर गयी है । पिता-पुत्र, भाई-बहन, गुरू-शिष्य के सम्बन्धों में अकल्पनीय परिवर्तन आ गया है । बिना अग्रिम दक्षिणा के कार्यालय का बाबू पत्रावली को उलटने में कतरा रहा है तो दूसरी ओर रिश्वत के अभाव में निर्दोष को फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है । नौबत यहाँ तक आ पहुँची है कि कुरान, गीता की शपथ लेकर मंत्रित्व का पद स्वीकार करने वाले तथा-कथित समाजसेवी, राजनेताजी अब आर्थिक नेताजी दल-बदलू बन गये हैं ।

तात्पर्य यह नहीं कि जीवन मूल्यों में ह्रास का कारण मूलत: आर्थिक प्रभाव है । आर्थिक विकास तो मानव जीवन के सुख एवं समृद्धि में सहायक है । मुख्य समस्या तो मानवीय गुणों के विकास एवं परिमार्जन की है । और यह तभी सम्भव है जब हम भौतिक साधनों में अभिवृद्धि के साथ-साथ आत्म विकास की ओर ध्यान देकर प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करें । जीवन मूल्य और शिक्षा भी अन्त: सम्बन्ध का एक मानक है । मूल्य यदि एक भव्य इमारत है तो शिक्षा नींव की ईंट, शिक्षा का विकास मानव के नैतिक मूल्य में प्रतिबिम्बित होता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि नैतिक मूल्यों के विकास में साहित्य, धर्म, परम्परायें व मान्यतायें तथा शिक्षा की नीति आदि सहयोग ही नहीं प्रत्युत संवर्धन प्रदान करते हैं ।

डा0 नामवर सिंह के शब्दों में -

"साहित्यकार उभरते हुये मानव मूल्यों को उभरती हुयी नयी सामाजिक शक्तियों के माध्यम से संकेतित करता है । "

साहित्यकार जीवित प्रतीकों, बिम्बों, चरित्रों तथा जीवित मिथकों की सहायता से मूल्यों को आगे बढ़ाता है ।

अतः मानव मूल्यों के विकास में साहित्य का सर्वाधिक योगदान माना जा सकता है । यद्यपि समाज परिवर्तनशील है । संस्कृति अपना विकास करती रहती है । सभ्यता व आचार विचार बदलते रहते हैं और कभी-कभी तो वे इतने परिवर्तित हो जाते हैं कि उनका मूल रूप खोजना कठिन सा हो जाता है । ऐसे समय में साहित्यकार की संजीवनी अचेतनों को चेतना प्रदान करती है ।

युग बोध के प्रतीक सम्वेदनशील और ईमानदार रचना धर्मिता समकालीन प्रगतिशील साहित्य में विद्रोही आवाज के साथ उपस्थित ही इन परिस्थितियों की प्रतीति से युक्त साहित्यकार के लिये अपनी साहित्यिक सृष्टि में युग अवरोध को प्रस्तुत करने और अमानवतावाद के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाने से बड़ा और कौन युग मूल्य हो सकता है ।

साहित्य वस्तुतः लोक कल्याण और लोक हितार्थ सृजित हो, मानव मूल्यों की रक्षा करता है। जैसा कि साहित्य के सन्दर्भ में हमने पहले ही कहा है कि साहित्य का सृजन आनन्द के लिये होता है । काव्य एक रसानुभूति है । आनन्द का स्त्रोत है । उसकी निमग्नता में ही रसासिद्धि है । इस आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द से की जा सकती है । लेकिन यथार्थ को झुठलाया नहीं जा सकता । संसार में जो कुछ दृष्टव्य है उसका स्वरूप और स्थिति अनुकूल होना आवश्यक है । अतः उचित मार्ग दर्शन जीवन के लिये अत्यावश्यक सिद्ध होता है, और वह मार्ग दर्शन किसी भी शक्ल में क्यों न हो । चाहे साहित्यिक हो, धार्मिक या नैतिक हो, सामाजिक या दार्शनिक हो, यद्यपि मोक्ष साधन चतुष्टय में अन्तिम लक्ष्य है वह आनन्द स्वरूप है लेकिन धर्म अर्थ और काम के बिना उसकी सत्ता मानव जीवन के लिये कल्याणकारी नहीं होती । साहित्य में आनन्दानुभूति जितनी आवश्यक है उतनी लोक कल्याण की भावना भी ।

1936 में प्रेमचन्द्र ने एक भाषण के दौरान कहा था -
"साहित्य आनन्द भी देता है पर सिर्फ वही नहीं उससे अधिक भी कुछ करता है जैसे तुलसी और बिहारी भी बहुत आनन्द देते हैं लेकिन तुलसी बड़े कवि इसलिये हैं कि आनन्द देने के साथ-साथ उनका काव्य मूल्यों का ऐसा सृजन भी करता है जो मनुष्य को ऊपर उठाता है। वह मनुष्य को बदलता है ऊपर उठाता है, उन्नत करता है, प्रतिगामी सामाजिक यथास्थिति को बदलता भी है। "

मानव मूल्यों के कई आयामों में धर्म और दर्शन का विशेष महत्व है। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ बाईबिल, कुरान, रामचरित मानस, रामायण, महाभारत, आदि ग्रन्थों के माध्यम से हमें धर्म की शिक्षा मिलती है। और वह शिक्षा मानव मूल्यों की प्राप्ति में अन्तरंग सहयोग देती है। सर्वधर्म समभाव, एकता, अखण्डता, बन्धुत्व आदि भावनायें धर्म ग्रन्थों से प्राप्त होती है। इनका अध्ययन, अध्यापन व्यक्ति के अन्त:करण को परिवर्तित करता रहता है, और जब यही भावनायें प्रौढ़ होकर समाज के उद्धार के लिये किये गये प्रयत्नों के साथ बढ़ती है तो एक श्रेष्ठतम और उन्नत समाज की रचना अनायास ही हो जाती है कोई भी धर्म आपस में वैर भाव की शिक्षा नहीं देता।

महाभारत में-

"धर्मयोबाधते धर्मो न सोधर्म: कुधर्मत: तत् अविरोधात् यो धर्म: स धर्मो मुनिसत्तम्" जो धर्म को किसी अन्य धर्म के विरुद्ध पड़ता है वह धर्म ही नहीं है। जो धर्म अविरोधी होता है वस्तुत: वही धर्म है।

मनुष्य की मूल-भूत एकता जो उनके अन्त:करण में अवस्थित है स्वीकार करना ही एकता और अखण्डता की रक्षा है जो सबसे बड़ा मानव मूल्य है। विशाल मानवता वाली दृष्टि को अपनाना जो समग्र

1 - महाभारत:

मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से नाना प्रकार की कुशिक्षा, कुसंस्कार और अभावों के बन्धन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास कर रही है। धर्म की सबसे बड़ी साधना है। श्री मद् भागवद्गीता में समूची मानव जाति को एक रूपता का दर्शन श्री कृष्ण ने अपने विराट स्वरूप में अर्जुन को कराया है।

" मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव " ।

यह सारा संसार सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुथा हुआ है। मानव मूल्यों की अत्यन्त महत्वपूर्ण आयामों की समीक्षा करते हुये दर्शन के महानतत्व ज्ञान को स्वीकार करके ज्ञान के मूल तक पहुँचाना आवश्यक होगा। दर्शन शास्त्र में नाना युक्तियों के सहारे सत् और असत् के स्वरूप का विवेचन किया जाता है ; और धर्म शास्त्र में सत् वस्तु के आचरण की विधियाँ बतायी जाती है ; और असत वस्तु से विरत होने के उपाय बताये जाते हैं। इस प्रकार दर्शन और धर्मशास्त्र जीवन के विभिन्न विचारों और आचारों के निर्णय और पालन के निर्दिष्ट शास्त्र है।

यद्यपि भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति ने मानव को रिक्त हृदय संवेदना हीन बना दिया है। संसाधनों के उत्कर्ष में अपनों को इतना तन्मय कर दिया है कि मानवता वादी दृष्टि प्रायः बन्द सी हो गयी है। मानव-मानव के प्रति अनाकर्षक तथा सम्वेदना शून्य हो गया है। स्वार्थ परता और भौतिक सुखों ने मानव आत्मा को कैद कर लिया है। जिसकी मुक्ति असम्भव सी हो गयी है। शिक्षा

श्री मद्भागवत गीता अध्याय । 5

व्यवस्था में नैतिकता और मानव मूल्यों के प्राप्ति के साधनों का सर्वथा अभाव हो गया है । इनको शिक्षा से नहीं जोड़ा गया है । यही कारण है कि मानव वैयक्तिक सुखों की प्राप्ति में जुटकर समाज का कोई कल्याण करना अपने समय का दुरुपयोग समझने लगा है । आडम्बर, अत्याचार, विकेन्द्रीकरण, भ्रष्टाचार, सूदखोरी ने समाज में हर स्थान पर प्रभाव डाल दिया है । और इस विकृतीकरण का कारण है स्वस्थ्य शिक्षा का अभाव, जिसके बिना मानव भ्रमित होकर मूल्यों से बहुत दूर होता जा रहा है । अहंकार की प्रबलता के कारण अपनी स्थिति में लौटना उसके लिये असम्भव है । उसके लिये स्वस्थ्य चिन्तन की आवश्यकता है । ऐसा चिन्तन जो मनीषियों का चिन्तन था । आज उसी चिन्तन को नये चिन्तन से जोड़ने की आवश्यकता है तभी मानव मूल्य सुरक्षित रह सकते है ।

यह विश्वास है कि ज्ञान अनादि है और हम उसके अंश मात्र से परिचित है । भारतीय मनीषियों को एक अपूर्व संयम और निष्ठा से सम्पन्न बना देता है । नये चिन्तन को हर बार झुककर पुराने चिन्तन के साथ शिक्षा लेने से अहंकार क्षीण होता है । इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय साहित्य अपने मूल उत्स से समर्पित होने का दावा करता है । कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर यह बात इस देश के किसी काल और किसी प्रदेश के साहित्य के बारे में सत्य कही जा सकती है । अपवादों में भी एक प्रकार की निष्ठाऔर संयम के भाव मिलते हैं ।

मानव मूल्यों के सभी आयामों पर विचार करते हुए हम समीक्षात्मक विवेचना कर चुके हैं । सृष्टि की सर्वोत्तम कृति के रूप में मानव को अपने मूल्यों की प्राप्ति सर्वाधिक श्रेयस्कर । जिनके

अभाव में उसको मनुष्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है । सचमुच शिक्षा ही मानव मूल्यों की नींव है, जिसको आधार बनाकर मानवता की इमारत खड़ी हो सकती है ।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने उपन्यासों में स्थान स्थान पर मानव मूल्यों का दर्शन कराया है । साहित्य समाज का दर्पण है । सच्ची मानवता कैसे प्राप्त की जा सकती है अपने उपन्यासों में पात्रों के चरित्र के स्थापन में प्रकट किया है । जिससे पाठक को सही दिशा निर्दिष्ट हो सकती है ।

> "आचार्य द्विवेदी हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्येता होने के कारण उसकी प्रत्येक कमी को परखने की दृष्टि रखते थे । इसी कारण वे उपन्यास को मात्र मनोरंजन की वस्तु मात्र नहीं समझकर उसके द्वारा सच्चे मानवीय मूल्यों के चित्रण का उपाय मानते हैं ।....... आचार्य द्विवेदी एक सजग नागरिक, एक गहन अध्ययन शील रचनाकार हैं । अतः अपने उपन्यासों में भारत के अतीत का चित्रण करना ही उनका एक मात्र लक्ष्य नहीं था । अपने उपन्यासों में उन्होंने मानवता-वादी जीवन दृष्टि का भी परिचय देकर अपनी गहन मानसिकता का परिचय दिया है । ॥1॥

1- राष्ट्र भाषा सन्देश ॥पत्रिका॥ सम्पादक प्रभात शास्त्री, अंक 17 दिनांक 15-3-85 लेख- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व उपन्यासकार के रूप में, लेखिका- दीपिका बनर्जी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

अध्याय – दो

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में वैयक्तिक मानव - मूल्य

व्यक्ति समाज की एक इकाई है अत: समाज की संरचना और सुदृढ़ता व्यक्ति पर अवलम्बित है अत: समुन्नत, उत्कृष्ट तथा शिष्ट समाज के निर्माण में व्यक्ति की महती भूमिका है और मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करने के लिये वैयक्तिक सद्गुणों की आवश्यकता है । यही सद्गुण, श्रेष्ठतम आचरण सद्व्यवहार वैयक्तिक मानव मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं । वैयक्तिक मानव मूल्यों का विकास, व्यक्ति के द्वारा अपने में सृजित सद्गुणों के परिणाम स्वरूप होता है यही उसका अपना चरित्र होता है । सामाजिक नियमानुकूल चलने वाला व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है अन्यथा विपरीत आचरण गामी व्यक्ति समाज की दृष्टि से गिरकर निन्दा का भाजन बन जाता है । आचरण हीन व्यक्ति स्वत: ही सब कुछ खो बैठता है । कहा भी गया है -

"वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ।।

समाज के द्वारा प्राप्त अपयश से मृत्यु वरेण्य है । भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं -

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति ते व्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्ति मरणादति रिच्यते ।। (1)

अत: वैयक्तिक मूल्य के अन्तर्गत, सत्य ईमानदारी, दया, क्षमाशीलता विश्वसनीयता, अहिंसा, त्याग, कर्म के प्रति निष्ठा आदि आध्यात्मिक व वैयक्तिक मुख्य माने जाते हैं । वैयक्तिक मूल्यों का सर्वाधिक महत्व है इनके अभाव में पशु समाज व मानव समाज में कोई तुलना नहीं की जा सकती । कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ मनुष्य व पशुओं में समान होती हैं ।

---

(1) श्रीमद्भगवतगीता अध्याय-2 श्लोक सं0 34

लेकिन वैयक्तिक व आध्यात्मिक मानव मूल्य ही ऐसे हैं जो मनुष्य को पशु से अलग करते हैं ।

आहार निद्राभय मैथुनं च
सामान्यमेतद् पशुभि:नराणां ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीन: पशुभि: समाना: । [1]

मूल्यों के अभाव में समाज व्यवस्थित नहीं चल सकता । जहाँ प्रशासनिक भय, नियमितता बनाने में अक्षम हो जाता है वहाँ आध्यात्मिक मूल्य समाज को नियन्त्रित कर देते हैं । भारत वर्ष इसी कारण संसार का आध्यात्मिक गुरु रह चुका है ।

एतदेशे प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मन:
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वं मानवा: ।। §1§

जब आध्यात्मिक मूल्यों का विकास होता है पाशविक प्रवृत्तियों का स्वत: शमन हो जाता है । स्वार्थ परता असत्य, हिंसा, छल-कपट, दम्भ आदि दोषों से मानव की रक्षा होती है ।

"मनुष्य केवल मनुष्य ही नहीं है, उसमें एक ऐसे उदात्त तत्व का निवास है जिसे अभिव्यक्ति देकर वह मनुष्य के लिये अनुकरणीय, वन्दनीय, श्रद्धास्पद बन जाता है । §2§

गीता में भी कहा है-

"श्रेष्ठस्तत्तदेवोतरोजन: यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवोरोजन: ।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकास्तदनुवर्तते ।। § 3 §

- -

1- मनुस्मृति

2- भारत का सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास
डा0 शंकर शरण तिवारी पृष्ठ संख्या 106

3- श्री मद्भागवतगीता अध्याय 3 श्लोक सं0 21

मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में मानव मूल्यों की महती भूमिका है । यद्यपि समाज में रहकर मानव-मूल्यों को अपनाने के लिये वह बाध्य नहीं है परन्तु मानव उन मूल्यों को स्वीकार करते हुए दिग्भ्रान्त होने से बच जाता है जो मूल्य वैयक्तिक या आध्यात्मिक मूल्य कहे जाते हैं तथा जिनका वरण अपरिहार्य एवं अनिवार्य है ।

यद्यपि भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत मोक्ष का महत्व स्वीकारा गया, लेकिन मोक्ष प्राप्ति के लिये भी मानवीय मूल्यों की आवश्यकता मानी गयी । क्योंकि आत्म साक्षात्कार के लिये शरीर, शरीर से मन, मन से परे, बुद्धि और जो बुद्धि से परे है वह आत्मा है अत: इसी क्रम को ध्यान में रखते हुये यम, नियम, आसन को साधना का मार्ग माना गया ।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य: परं मन:
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु स: ।। §1§

परिवार समाज की इकाई है इसलिए सुदृढ समाज के लिये पारिवारिक दृष्टि से मानवीय मूल्यों की आवश्यकता है । मूल्यों का परित्याग करके परिवार का मुखिया पिता भी अपनी सन्तान को नैतिकता का उपदेश नहीं दे सकता । वह अपनी सन्तान को कुमार्ग से नहीं रोक सकता अत: पारिवारिक सन्तुलन बनाये रखने के लिये मानव मूल्यों की आवश्यकता है जिसमें सत्य, अहिंसादि गुणों का समावेश है ।

मानव की मूल प्रवृत्तियाँ भोजन, निद्रा, मैथुन, भय, उसके जैवकीय सन्दर्भों में निरन्तर ही स्वार्थ की ओर ढकेलती रही हैं । इन प्रवृत्तियों पर आश्रित प्राणी जिजीविषा से सम्प्रेरित होकर ऐन्द्रिक

---

§1§ श्री मद्भगवतगीता अध्याय 3 श्लोक सं0 42

दृष्टाओं की परितृप्ति के लिये जीवन प्रवाह में बहने लगता है । प्रवाह पथ अधोगामी ही हो सकता है सिर्फ अपने लिये अथवा अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये जिया जाने वाला जीवन भोग तथा वासनाओं की अतिशयता से श्लथ होकर समाज के लिये अनुपादेय हो जाता है । जहाँ इस स्वार्थ वृत्ति तथा भोगवादी असामाजिकता के विरुद्ध त्याग और परमार्थ पर आधारित जीवन पद्धति अपनायी जाती है वहीं से मूल्यों का ऊर्ध्वगामी पथ प्रारम्भ हो जाता है । "तेन त्यक्तेन भुन्जीथ: ईशावास्य उपनिषद का यह वाक्यांश त्याग पूर्वक भोग का उद्बोधन देता हुआ वस्तुत: मूल्यवादी समाज की ही आधार शिला रह रहा है ।

सिर्फ अपने लिये जियेंगे, सारे संसार की भोग सामग्रियाँ हमारी हो जाये, सारा विश्व हमारी इच्छानुसार ही चले, ऐसी मानसिकता के स्थान पर सभी के साथ हम भी जियेंगे । आवश्यक सामग्रियों को मिल बाँटकर उपयोग में लायेंगे । नैतिक तथा सामाजिक नियमों के अनुसार हम भी चलेंगे । ऐसी मानसिकता ही मूल्यवादी समाज की प्रस्थान विन्दु है । इसका ही विकसित रूप है कि हम चाहे न भी जियें, बल्कि हमारे जीवन को लेकर वे जियें । मूल्यों की अवधारणा करते समय व्यक्ति ने ही त्याग, तपस्या, सत्य-अहिंसा, प्रेम-ईश्वर, योग-साधना, सेवा-विनम्रता तथा पारिवारिक जीवन मूल्यों के परिपेक्ष्य में अपने को केन्द्र विन्दु माना हुआ है । बाण भट्ट की आत्मकथा में भट्ट स्वकेन्द्रित होकर अपनी वैयक्तिक जिन्दगी बताता है ।

"आवारा मैं था ही, इस नगर से उस नगर में,
इस जनपद से उस जनपद में, वर्षों मारा-मारा फिरता रहा।
इस भटकन में मैंने कौन सा कार्य नहीं किया,
कभी निर्बलता कभी पुतलियों का नाच दिखाता,
कभी नाट्य मण्डली संगठित करता, और कभी
पुराण वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा ।

सारांश, कोई कर्म नहीं छोड़ा । भगवान ने मुझे रूप अच्छा दिया था और बोलने की प्रभुता भी थोड़ी सी दी थी । बस मेरी किशोरावस्था और जवानी के दिनों में वही दो बातें मेरी सहायता करती थी । " §1§

वस्तुत: बाण ने स्वकेन्द्रित होकर जीवन के पड़ावों की चर्चा की, वह वैयक्तिक मूल्यों के परिपेक्ष्य में स्वयं भी सचेत है, कहता है कि इस कहानी को अपने दुर्भाग्य के रोने से नहीं शुरू करूँगा । इसे अपने सौभाग्य के उदय के साथ ही आरम्भ करूँगा । बीच-बीच में अगर दुर्भाग्य की कहानी आ जाये तो इस कथा के अध्येता मुझे क्षमा करेंगे । भट्ट निपुणिका के साथ सहानुभूति मय सदाचार करता था । वह उस अभागिनी के दु:ख सुख को अच्छी तरह समझे बिना आगे नहीं बढ़ना चाहता वह दृढ़ता पूर्वक वैयक्तिक संरचना को मूल्यवान समझता है । उसका कथन है -

"सारे जीवन मैंने स्त्री शरीर को किसी अज्ञात देवता का मन्दिर समझा है आज लोगों की आलोचना के डर से उस मन्दिर को कीचड़ में धँसा छोड़ जाना मेरे बस की बात नहीं है । मैंने फिर पूछा, निउनियाँ, तू क्यों चली आयी, अब तक कहाँ रही, अब क्या कर रही है, मैं तुझे दु:खी देख रहा हूँ तुझे इसी अवस्था में छोड़कर मैं टल नहीं सकता, बता किस बात पर तू भाग आयी थी । आज निरन्तर छ: वर्षों से मेरा चित्त मुझे धिक्कार रहा है, मुझे ऐसा लगता है

1- हजारी प्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली-बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-24

कि मैं ही तेरे समस्त दुःखों का मूल हूँ । एक बार
तू अपने मुख से कह दे कि यह बात गलत है,
मैं क्या निर्दोष हूँ । " |1|

"निपुणिका ने वैयक्तिक त्याग तपस्या को स्वीकार
किया है उसे अनुभव है कि नारी शरीर हाड़ माँस
का है, ईंट चूने का नहीं । वह जिस क्षण अपना
सर्वस्व लेकर बाण की ओर अग्रसर हुयी थी, उसी क्षण
उसने महसूस कर लिया था कि बाण के भीतर न ही
देवता है, न पशु है, बल्कि एक जड़ता है । " |2|

वैसे यह सच है कि जीवन और जीवन मूल्यों में से किसी एक के वर्णन का प्रश्न हो तो जीवन के ऊपर मूल्य को वरीयता देने वाले विरले ही होते हैं । अधिकांश लोग जीवन को मात्र जीवित रहने के लिये ही चुनते हैं इन्हें इन्हीं जैसे लोग अपनी भाषा में दुनियादार और समझदार कहकर सम्मान का आदर्श मात्र मानते हैं, परन्तु यथार्थ में ये अवसरवादी और भोगवादी प्रवृत्ति के लोग होते हैं । दुनिया के रंग में रंगे और साँचे में ढले ये लोग लीक-लीक चलने को ही चरित्र और व्यक्तित्व का मूल रूप मानते हैं । चारुचन्द्र लेख उपन्यास में सीदी मौला लोक कल्याण की बात करता है वह स्त्रियों, बालकों और देव मन्दिरों की रक्षा करना अपना मूल कर्तव्य समझता था । यद्यपि यह उपन्यास सिद्ध सामन्तवाद के प्रवृत्ति मूलक विचारों का पोथा है फिर भी -

---

|1| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली -बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-31।

|2| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली -बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-32

" मैं एकदम सीधा खड़ा हो गया, यह कैसी उद्‌बोधक वाणी है, यही तो वह सन्देशा है जिसके सुनने के लिये मेरा अन्तरतम व्याकुल था आज तक किसी ने ऐसी मर्म भेदनी वाणी क्यों नहीं सुनायी । आज सब साफ हो गया, अब तक मोह और क्षुब्धता की सीमाओं से भटकता रहा, आज पहली बार किसी ने हृदय के अतल गहवर में विलीन आत्म ज्ञान को ऊपर खींच लिया है । मैना ठीक कह रही है क्या इन छोटी-छोटी अहंकार और ममता द्वारा पालित मोह और लोभ द्वारा चालित क्षुद्र सीमाओं में नहीं फँस गया हूँ । कहाँ समूचे देश की स्तब्धता, अपमानना, भय, कातरता और परमुखापेक्षिता से बचाने का महान सन्देश और कहाँ इन मोह ममता के व्यक्तिगत पौखटों में छटपटाने वाली स्वार्थ साधना का प्रयत्न । " §1§

"वस्तुत: मोह त्याग और छोटी सीमाओं के घरौंदों का त्याग विरले लोग ही करते हैं । मैना ने क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुंफकार कर वीर जनोचित मन्त्रणा देकर स्पष्ट किया है कि हमारे रक्त से सनी धरती का प्रत्येक दाना भावी पीढ़ियों को साहस और निर्भीकता का सन्देश देगा। " §2§

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ -437

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ -437

साहस में सिद्धि बसती है । यदि व्यक्ति साहसी हो तो वह कुछ भी कर सकता है । मैना और सीदी मौला जीवन मूल्यों की उस पर्त तक बात कह देना चाहता है कि व्यक्ति की जीवन दृष्टि बदल जाय । विद्याधर मन्त्री और मैनसिंह भी उसकी इस जीवन दृष्टि से प्रभावित है । उपन्यासकार चन्द्रलेखा रानी के सानिध्य का वर्णन वैयक्तिक जीवन दर्शन के परिपेक्ष्य में करता है -

> "एक क्षण में मानो अमृत का लेप हुआ,
> संजीवन औषधि का सिंचन हुआ या चन्द्र किरणों का अभिषेक हुआ,
> मेरा अंग कुलषित सा, अनुग्रहीत सा,
> परितृप्त सा अनुभव हुआ । रानी के प्रवाल स्वर्ण
> अधरों पर पलकी स्मृति रेखा दिखायी पड़ी । नयन
> कोरकों में चंचल विलास लीला थिरक गयी और
> कपोल पाली पर उल्लास बन्धुर पुलक रेखा गतिशील
> होती आँखें झुकती गयीं, कदाचित किसी मंगल अनुष्ठान
> का यह समापन विधान है । मैंने मंगल ताम्बूल ग्रहण
> किया, फिर रानी के इंगित के अनुसार भगवती के
> पास गुहा में गया । " {1}

> "भगवती ने अपने सानिध्य में मंगल अभिषेक कर दिया और
> व्यक्ति व्यक्तित्व का विकास अभिचार साधना से सम्पन्न
> किया । यद्यपि भगवती ने मुँह से कुछ नहीं कहा परन्तु
> त्याग तपस्या की प्रतिमूर्ति के रूप में उनके रोम-रोम से
> आशीर्वाद की वर्षा हो रही थी । दरअसल दुनिया मन
> को ठगना चाहती है और मन दुनियाको ठगना चाहता है ।

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्र लेख पृष्ठ 470

वैयक्तिक चेतना के लुका छिपी का खेल खेले जा रहे है ।
आज बुद्धिमान का कौशल मौन रहता है और ठगी से
लिप्त मुखर हो उठता है । लेखक कहता है कि रानी
सारे संसार का दुःख दूर करना चाहती है उसके लिये
योग साधना करती है जबकि व्यक्ति पर-दुख कातर
हो जाय या एक दूसरे को परिपूर्ण भाव से आत्मसमर्पण
कर सके तभी बात बनती है । लेखक कहता है कि रानी
ने दूसरों की बात में पड़कर ग्रहस्थ धर्म की मर्यादा भुला
दी थी तथा जोग साधने के चक्कर में जा फँसी ।
प्रश्न तो यह है कि मनुष्य निर्बल बुद्धि होकर पर सेवा
परायण हो जाय तो उसे सभी सिद्धि हासिल होती है। "(1)

आचार्य द्विवेदी ने विराट ब्रह्म की विराट सत्ता का वैयक्तिक चेतना में आत्मसात करते हुए वैयक्तिक मूल्यों की स्थापना की है ।

"तुम नारायण की मूर्ति हो आर्य मैं तुमसे सत्य कहती हूँ
उस दिन मेरे हृदय में सौ-सौ युगों के कवि एक साथ
रागारूढ तान छेड़ बैठे जैसे शत-शत जन्म मुखरित होकर
कहना चाहते हों कि यही मेरे जीवन की सार्थकता है ।
कितना विराट है, विधाता का सौन्दर्य भण्डार ।
सुना था भगवान कुसुम सायक की रचना करने के बाद
उनका भण्डार निःशेष हो चुका था तो फिर इस अपूर्व
सौन्दर्य राशि को बनाने का साधन कहाँ से मिला उन्हें।
निश्चय ही वह भण्डार अपूर्व है, विराट है । " (2)

मानव जीवन अन्तः बाह्य दो पक्ष रखता है वह समस्त ज्ञान का मिलन तीर्थ होता है । शोभा का समुद्र होता है । और गुणों का आकार

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ 472-73
(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ। 84

भूमि होता है । उसी के कार्यों से कीर्ति का उद्यान और प्रेम का उद्गम होता है और उसी की नयनाग्नि से प्रेम और बैराग्य चालित होते है । व्यक्ति की तपस्या के भीतर से सौन्दर्य का प्रवाह होता है । व्यक्ति अपनी इच्छा शक्ति के बल पर पारमार्थिक भाव सत्ता को प्रतिस्थापित कर सकता है । भाक्ती रानी को समझाती हुयी कहती है-

> "देख बेटा- जैसे पान और सुपारी, चूना और कत्था मिलकर एकमेव हो जाते हैं । उसी प्रकार जब पुरुष और नारी और उनकी तेजोगरिमा एकमेव हो जाते हैं तभी अलौकिक आनन्द के हेतु बनते हैं । कैसे बनते हैं एक दूसरे को परिपूर्ण भाव से आत्मसमर्पण करके । गाँठ बाँध ले बेटा- जहाँ परिपूर्ण आत्म समर्पण है वहीं भगवान आप रूप होकर प्रकट होते हैं । जाओ बेटा तुम दोनों का मन एक हो, वृत एक हो, संकल्प एक हो। " §।§

रानी चन्द्रलेखा को विधाता ने भरपूर लक्षणों से संभालकर भेजा था, भाक्ती ने समर्पण भाव का विलक्षण पार्मार्थिक लक्षण और जोड़ दिया है यही तपस्या त्याग तथा ममेतर का सुन्दर निरूपण है । व्यक्ति जब आत्म के स्थान पर परात्म का बोध करने लगता है तभी उसमें पार्मार्थिक भाव का उदय होता है ।

पुनर्नवा उपन्यास का देवरात साधु पुरुष है उसे संसार से मोह नहीं । उनके बारे में उपन्यासकार की राय यह है-

> "लोगों का विश्वास था कि उन्हें संसार के किसी विषय में आसक्ति नहीं थी । उनका एक मात्र व्यसन था, दीन-दुखियों की सेवा, बालकों को पढ़ाना और उन्हीं के साथ खेलना । यद्यपि वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे और भावुक

भक्त भी जाने जाते थे। परन्तु ये नियम और आचरण के बन्धन में कभी नहीं पड़े। साधारण जनता में उनकी रहस्यमयी शक्तियों पर बड़ी आस्था थी परन्तु किसी ने उन्हें पूजा पाठ करते भी नहीं देखा। " §1§

"व्यक्ति जब दीन दुःखियों की सेवा में तत्पर होने लगता है तो वह पारमार्थिक भाव से दूसरों के प्रति समर्पित हो जाता है। देवरात के शील, सौजन्य कला प्रेम और विद्वता ने हलद्वीप की जनता का मन मोह लिया था। लोग कानाफूसी किया करते थे कि इनका विरोध किसी से नहीं है यदि है तो श्री मंजुलाजी से। वैयक्तिक चेतना के दो बिन्दुओं की पड़ताल जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देवरात और श्री मंजुला के चरित्र से की जा सकती है जहाँ देवरात त्यागमूर्ति होकर औदार्य रूप से धनी थे। वहाँ श्री मंजुला भी रूप गर्विता तथा आत्म गर्विता की प्रतिमूर्ति थी। उसके अभिमान और आत्म गौरव के सम्बन्ध में लोगों में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित थी। परन्तु देवरात भी विलक्षण बुद्धि प्रतिभा के धनी थे। मंजुला और देवरात के बीच भाव और महाभाव का फर्क था। उसने देवरात के भाव को विद्वेष भाव माना जबकि देवरात के मन में सहज भाव ही था। उपन्यासकार ने मंजुला के उस उपेक्षा भाव का वर्णन बखूबी किया है वह रूप गर्विता सहज प्रगल्भ मुखर न रह सकी जब देवरात ने कहा धन्य हूँ देवी जो बाग देवता को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। " §2§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ-17

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ-25

उपन्यासकार प्रेमोत्सर्ग जैसे भाव को बहुत बड़ा भाव मानता है । मूल्यों की अवधारणा करते समय मनुष्य अपने से बड़ा कुछ पहिचानता है जितना बड़ा कि जो मनुष्य के जीवन से बड़ा है और उसके बड़े होने की कसौटी ये है कि उसके लिये जान तक दी जा सकती है । इसी से ही समर्पण की भावना का जन्म होता है । देवरात और मंजुला के बीच इसी जीवन मूल्य की मूल बुनियाद है ।

"देवरात के आश्रम के बहिद्वार पर आकर वह ठिठक गयी जैसे श्रोतस्विनी के सामने अचानक शिलाखण्ड आ गया हो उसने चकित मृगशावक की भाँति भीति नयनों से चारों ओर देखा ऐसा लगा कि जैसे वह किसी ऐसे स्थान पर आ गयी हो, जहाँ उसके प्रवेश का अधिकार न हो.... अभिमानिनी नगरिका को पहली बार यहाँ अनुभव हुआ कि वह, वह नहीं है जो अब तक अपने को समझती आयी थी । मंजुला को सन्देह नहीं रहा कि बच्चों को गुरु ने ही ऐसी शिष्ट भाषा बोलना सिखाया होगा । उसके मन में वात्सल्य भाव उचित हुआ, उसने दोनों बच्चों के सिर पर हाथ फेरा और प्यार से कहा हाँ वत्स मैं गुरु जी के दर्शन के लिये ही आयी हूँ । " §1§

"देवरात जीवन मूल्यों के धनी है वह मंजुला में भी देवता का निवास देखते हैं उनका कहना सच है कि मंजुला जिस पाप जीवन की बात कह रही है वह मनुष्य की बनायी हुयी विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है । देवव्रत को विश्वास है कि उसके भीतर

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 27

बैठा देवता अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है कोई
बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नहीं कर सकती,
वह अन्तर्यामी देवता ही उद्धार कर सकता है।
देवरात इस बात को भली-भाँति समझता है कि
देवता न बड़ा होता, न छोटा, न शक्तिशाली
होता न अशक्त। वह उतना ही बड़ा होता है
जितना उपासक उसे बनाना चाहता है। मंजुला
को समझाते हुये देवरात कहते हैं कि तुम्हारा
देवता भी तुम्हारे मन की विशालता और
उज्जवलता के अनुपात में विशाल और उज्जवल
होगा।" ॥1॥

मानव आत्म सत्ता को नकारकर इधर-उधर के मूर्तस्वरूपों को आश्रय बनाना चाहता है जबकि उसके भीतर शक्तिवान साहस व चरित्र विद्यमान है। मान्यतायें व सिद्धान्त एवं गुण जो अपनी अन्तर्निहित अर्हता व क्षमता के कारण मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनाती है। मानव मूल्य है। सर्व प्रथम मूल्य व्यक्ति निष्ठ होते हैं किन्तु व्यक्ति से कुटुम्ब, कुटुम्ब से जाति, जाति से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व और विश्व के प्राणियों के हित के लिये मान्यतायें सिद्धान्त अथवा गुण क्रमशः बड़े होते जा रहे मूल्य है। अपने जीवन की रक्षा करना भी मूल्य हो सकता है किन्तु यह मूल्य व्यक्ति केन्द्रित होने के कारण अति सीमित है। जिसका होना अच्छा माना जाता उसको स्थापित करने या बनाये रखने के लिये व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान करके और इसी क्रम में कौटुम्बिक व जातिगत स्वार्थों का बलिदान करके उस अच्छे को सुप्रतिष्ठित करने की भावना से युक्त आचरणात्मक विचार एक बड़ा मूल्य हो जाता है।

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ 29

मानव के आधारभूत वाँछनीय गुणों को यम कहा गया है । जैसे सत्य, अहिंसा, बृह्मचर्य अस्तेय, अपरिग्रह, ध्यान देने पर इन गुणों की बुनियाद में व्यक्ति के स्थान पर समाज के लिये परित्याग की समाजवादी चेतना प्रतिष्ठित है । युग पर युग बीतते जायेंगे, किन्तु इन गुणों की प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होगी । योग दर्शन में ही नियम कहे जाने वाले पाँच वाँछनीय गुणों को लें- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान । ये नियम समाज की तुलना में व्यक्ति के लिये कहीं अधिक उपादेय है ।

यम और नियम में मौलिक सूक्ष्म अन्तर यह है कि व्यक्ति अपना जीवन भीतर से कैसे जिये, इससे नियम का ज्यादा सम्बन्ध है और व्यक्ति सामाजिक जीवन कैसे जिये, इससे यम का ज्यादा सम्बन्ध है । उपन्यासकार द्विवेदी ने निपुणिका और भट्टिनी के मध्य चल रहे अन्तर्द्वन्द को निबद्ध किया है । लौरिक देव के विश्राम कक्ष में वस्तु सत्य और व्यक्ति सत्य के बारे में विचार विमर्श को लेखक ने दर्शाते हुये कहा है-

> "जो मेरा सत्य है वह यदि वस्तुत: सत्य है तो वह सारे जगत का सत्य है । व्यवहार का सत्य है, परमार्थ का सत्य है, त्रिकाल का सत्य है । अघोरपाद के इस कथन का क्या तात्पर्य हो सकता है, एक बात मुझे हस्तामलक की भाँति स्पष्ट दिखायी दे रही है, मैं अपने सत्य को ही आचरण में उतार सकता हूँ । सारे जगत के कल्याण को मैं चाहूँ भी तो अपने भीतर उतार नहीं सकता । " §1§

बाणभट्ट ममेतर भाव से भट्टिनी के उद्धार का उपाय सोचता है वह भट्टिनी को राजनीति का खिलौना नहीं बनने देना चाहता । भट्ट

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 213

विचार करता है कि वह प्राणोत्सर्ग करके भी भट्टिनी का उद्धार करेगा। उसका यह सोच कि भट्टिनी उसकी सिद्धि है वह उसकी सेवा के लिये प्राण उत्सर्ग करने को तैयार है। कभी-कभी घटनाचक्र सिद्धि को साधन और साधन को सिद्धि बना देता है। कच्चे चित्त की यही कच्ची कल्पना है। वस्तुत: इसे रूप ग्रहण करने देना प्रमाद होता है। इसी के कारण व्यक्ति दिग्भ्रमित हो जाता है। निपुणिका भट्टिनी के उद्धार के लिये अनवरत बाणभट्ट को उद्देलित करती है। निपुणिका के वैयक्तिक चेतनावादी मूल्यों से भट्ट अत्यधिक प्रभावित है वह उल्लेख करता है कि निपुणिका में इतने गुण है कि वह समाज और परिवार की पूजा की पात्र हो सकती है। उसके चरित्र में उसने कोई कलुष नहीं देखा, वह निपुणिका के पारमार्थिक भाव को उसके व्यक्तिगत हँसी कृतज्ञता में समाहित मानता है।

> "मेरा चित्त कहता है कि दोष किसी और वस्तु में है जो इन सारे सद्गुणों को दुर्गुण कहकर व्याख्या करा देती है। निश्चय ही कोई बड़ा असत्य समाज में सत्ता के नाम पर घर बना बैठा है। निपुणिका में सेवाभाव इतना अधिक है कि मुझे आश्चर्य होता है उसने मेरी सेवा इतने प्रकार से और इतनी मात्रा में की है कि मैं उसका प्रतिदान जन्म जन्मान्तर में भी नहीं कर सकूँगा।" §1§

मूल्य मानव की बहुत बड़ी धरोहर है। निपुणिका जैसे सेवा परायण चारुस्मिता, लीलावती ललना के प्रति जिस पुरुष की श्रद्धा और प्रीति उच्छ्वसित न हो उठे वह जड़ पाषाण बिन्दु से अधिक मूल्य ह नहीं रखता बाण अनुभव करता है कि उसके हृदय के भीतर मूल्यों का कोई देवता बैठा है जो स्तब्धता के साथ-साथ मौन पूजा ही स्वीकार करता है मानव उन

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा- पृष्ठ 216

मूल्यों का विरासत है जिनमें भावना की अतिरिक्तता होती है और भावना प्रेमोत्सर्ग का सन्धान करती है । भट्टिनी के सृजात्मक हृदय सन्धान को उपन्यासकार ने वर्णित किया है -

"भट्टिनी की शिराओं में चैतन्य धारा प्रवाहित हुयी अ उन्होंने गोद में से सिर उठाने का प्रयत्न नहीं किया। क्षीण कण्ठ से बोली, नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। निपुणिका ने उसे स्पष्ट कर दिया है क्या कहते हो भट्ट तुम मेरी सहायता करने का वचन देते हो, मैंने अविचलित कंठ से कहा- हाँ देवी सेवक प्रत्येक आज्ञा के लिये तैयार है । " §1§

उपन्यासकार ने भट्टिनी के जीवन दर्शन को निपुणिका के माध्यम से अधिक अभिव्यंजित किया है । निपुणिका और भट्टिनी बाण भट्ट के प्रति आत्मोत्सर्ग भाव से समर्पिता है । भट्ट के प्रति यह जीवन दृष्टि इसी का प्रतिफल है ।

"निपुणिका ने कहा भट्ट, वह लौटकर आयी तो उसका चेहरा उतर गया था । उसने जीवन में पहली बार ऐसा पुरुष देखा था जो स्त्री का सम्मान तो करता है पर तलवा नहीं चाटता है । उसने सूखी हँसी के साथ कहा कि बाणभट्ट आदमी नहीं है । हला, मैंने गर्व के साथ कहा कि वह देवता है सखी, भट्ट मैंने तुम्हारा नाम कलंकित किया था पर तुमने मेरा मान रख लिया । मैं उसके सामने गर्व से सिर ऊँचा करके चलने लगी । " §2§

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 254

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 113

भट्ट और निपुणिका के मध्य रागात्मक सम्बन्ध का विकास है दोनों ही जीवन के मर्मान्तक पक्ष को जानते हैं उन्होंने यथार्थ के धरातल पर जीवन का संगीत सुना है । अतएव वे अत्यधिक राग-विराग से मुक्त होकर भाव मग्न रहना चाहते हैं । यद्यपि उनके बीच एक शून्य दृष्टि का अविर्भाव भी होता है । तो भी वह पारमार्थिक भाव से दूर नहीं हट पाते । इधर भट्टिनी भी मनसापेक्ष भाव से बाणभट्ट के प्रति प्रणय भाव लेकर सन्नद्ध है । भट्टिनी और निपुणिका के मध्य पुरुष के प्रति सात्विक भाव अभिव्यंजित होते हैं । दोनों के मन प्राण आत्मा सब कुछ मानो आनन्द श्रोत में निमज्जित हो जाते हैं । उनकी मनन शक्ति भट्ट के प्रति जड़ीभूत हो जाती है । नर नारी के शिवत्व रूप का बखान करती हुयी महामाया दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करती है ।

"महामाया ने दीर्घ नि:श्वास लिया, फिर थोड़ा सम्भल कर बोली- परम शिव से दो तत्व एक ही साथ प्रकट हुये थे शिव और शक्ति । शिव विधि रूप है और शक्ति निषेधरूप । इन्हीं दो तत्वों के नि:स्पन्द से यह संसार आभासित हो रहा है । पिण्ड में शिव का प्राधान्य पुरुष है और शक्ति का प्राधान्य नारी है । तो क्या इस माँस पिण्ड को स्त्री या पुरुष समझती है । न सरले, यह जड़ माँस पिण्ड न नारी है न पुरुष । यह निषेध रूप तत्व ही नारी है । निषेध रूप तत्व याद रख । जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की अपने आपको सजा देने की भावना प्रधान है वह नारी है जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, जहाँ कहीं दु:ख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त

करने की भावना प्रबल है । वही "नारी-तत्व" है ।
या शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो 'शक्ति-तत्व
है । हाँ रे नारी निषेध रूप है । वह आनन्द भोग
के लिये नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिये आती
है । आज के धर्म कर्म के आयोजन, सैन्य संगठन और
राज्य विस्तार विधि रूप में है । उनमें अपने आपको
दूसरों के लिये जला देने की भावना नहीं है । इसलिये
वे एक कटाक्ष पर ढह जाते हैं, एक स्मित पर बिक
जाते हैं । वे फेन बुद बुद की भाँति अनित्य है । वे
सैकतसेतु की भाँति अस्थिर है ।" (1)

वैयक्तिक मानव मूल्य स्त्री पुरुष के सीमा भेद को भी अतिक्रमित करते
जाते हैं वाण भट्ट निपुणिका और भट्टिनी के बीच रागात्मक स्त्रोत
का अप्रतिम प्रमाण है । वाणभट्ट बार-बार जीवन से अनुस्यूत भाव
धारा का अवगाहन करता है ।

"मुझे एक-एक करके सारी बातें याद आने लगी ।
आज भट्टिनी ने जो कुछ कहा है, उसका क्या
अर्थ है, वे हजार-हजार बालिकाओं की भाँति
एक बालिका है तो इससे क्या हुआ, वे हाड़
माँस की नारी है, न ही होती तो वाणभट्ट
आज इस पवित्र देव प्रतिमा के सामने अपने आपको
नि:शेष भाव से उड़ेल देने में अपनी सार्थकता क्यों
मानता, हाय संसार ने इस हाड़ माँस के देव
मन्दिर की पूजा नहीं की । वह वैराग्य और
भक्ति मद की बालू की दीवार खड़ी करता रहा।

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- वाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 137

उसे अपने परम आराध्य का पता नहीं लगा ।
लेकिन सब बातों में क्या रखा है मैं बहुत देख
चुका हूँ शोभा और क्रान्ति को विभ्रम और
विच्छिन्नि पर बिकते देखकर मैं जिस दिन प्रथम
बार विचलित हुआ था, उस दिन की बात याद
आती है तो मेरी सम्पूर्ण सत्ता विद्रोह कर उठती
है । माधुर्य और लावण्य की अपेक्षा हेला और
बिब्बोक का सम्मान दैनन्दिन घटना है मैं यह
सब जानता हूँ । परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि
इन सारे आपातत: परस्पष्ट विरोधी दिखने वाले
आचरणों में एक सामरस्य है- निरन्तर परिवर्तमान,
बाह्य आचरणों के भीतर एक परम मंगलमय देवता
स्तब्ध है । " §1§

मानव की और मानवीय समाज की गुणात्मक जिस विन्दु पर टिकती है वह विन्दु स्त्री पुरुष का अन्त: बाह्य आचरण होता है और इसी आचरण की नींव पर सारे मानव समाज का मूल्य निर्माण होता है । सुविधा जीवियों के लिये तथा कथित धर्म और रूढ़िग्रस्त समाज द्वारा स्वीकृत हर विकृति पावन और उनके द्वारा अस्वीकृत मूल्याश्रित सब कुछ उपेक्षणीय और त्याज्य होता है । हर खतरे से कतरा जाना, जोखिम की आशंका मात्र से अपने वरण किये गये को ठुकरा कर उस भीड़ के साथ हो जाना जिसका मूल्य निर्माण में कभी कोई भी हाथ नहीं होता । बस यही इनका स्वभाव और स्वधर्म होता है, पर दूसरी ओर वे लोग भी हैं जिन्होंने वरेण्य को न कभी त्यागा और न व्यक्त को कभी वरेण्य समझा । ऐसे लोगों की अटूट मानव आस्था और स्वाधीनता के समक्ष

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा - पृष्ठ 145

बोध की व्यापक सीमा में मानव और मानव समाज की आनन्द मंगलमय आस्था व व्यवस्था की समस्त उच्चतम् सम्भावनायें समाहित और समन्वित रहती है ।

मानव मूल्य जीवन के सर्वत्र भावों को संजोने संवारने में प्रवृत्त रहते है । संसार में सर्वत्र उसके किसी न किसी अंश का साम्य मिलता है । हर पेड़ पौधा कुछ न कुछ उसका आभास दे जाता है । व्यक्तियों में भी इसी प्रकार की मानसिक साम्य रेखायें होती है । वह शान्त व मुखर तरीकों से जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में साम्य तथा वैषम्य को स्वीकृति देता है । व्यक्ति समष्टि चित्त के माध्यम से व्यक्ति विशेष के चित्त में उसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है जैसे बहुत दूर से भी कोई व्यक्ति यदि किसी अन्य व्यक्ति को गाढ़ अनुभूति से याद करे । पुनर्नवा उपन्यास में मैना ऐसा सोच रही है -

> "मुझे लगता है कि वे कहीं निविड़ व्यथा से व्याकुल होकर मुझे पुकार रहे हैं । कह रहे हैं मैना मैं व्याकुल हूँ मैं रास्ता नहीं पा रहा हूँ, मैं भटक गया हूँ जल्दी आओ और मुझे प्रकाश की ज्योति दो मैं सुन रही हूँ, काका, उनके कलान्त श्रान्त मुख को प्रत्यक्ष सा देख रही हूँ । वे मुझे पुकार रहे हैं हाय काका वे कितने व्याकुल है परन्तु मैं ये नहीं सोच पा रही हूँ कि उन तक कैसे पहुँच जाऊँ । " ॥1॥

इस दृश्य में जीवन मूल्य मानवीय धरातल पर यह है कि औरों की शान्ति के लिये अशान्त होना ही सच्ची साधना है । मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ मिली है जिनके द्वारा वह दूसरों की शान्ति के लिये

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ ।।9

प्रयत्न कर सकता है । मनुष्य तो केवल भाव मात्र है सच तो यह है कि मनुष्य के दु:ख में दु:खी होना सच्चा सुख है । मनुष्य छलनामयी झूठी तपस्या को आत्मशान्ति की साधना के लिये करता रहता है जो कि सच्ची साधना नहीं है । सच्ची साधना तो मनुष्य को उत्तरोत्तर पारमार्थिक बनाती है । यही सबसे बड़ा मूल्य है । पुनर्नवा देवरात इसी जीवन मूल्य पर आधृत होकर चन्द्रमौलि से सम्वाद करता है देवरात ने कौतूहल के साथ पूछा -

> "तुम्हारा अनुभव क्या कहता है बेटा चन्द्रमौलि को थोड़ा संकोच हुआ । फिर कुछ रुक-रुक कर कहने लगा कि दो तरह की रचनायें होती हैं । एक प्रकार की रचनायें विधाता की सृष्टि है, दूसरी तरह की रचनायें मनुष्य की सृष्टि है । स्वयं मनुष्य पहली श्रेणी में आता है । मनुष्य और प्राकृतिक वस्तुओं, जीव जन्तुओं, लता पादपों की रचना एक ही कर्ता के द्वारा हुयी है । इसलिये हम इन प्राकृतिक वस्तुओं की निर्माण विधि की आलोचना नहीं करते । वह जैसी बनी हैं, वह वैसी बनेगी ही । हम उनसे सुख पा सकते हैं, दु:ख पा सकते हैं पर वे हैं, हम यह कहने के अधिकारी नहीं है कि वे क्यों वैसी बनी है। "§1§

जीवन मूल्यों के इन परिवर्तित ऊहापोहात्मक दृश्यों से चन्द्रमौलि की असहमति है । वह मानता है कि मनुष्य की व्यथा मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था की देन है । इस व्यवस्था की आलोचना करने और बदलने का अधिकार मनुष्य को मिलना चाहिये विधाता ने बहुत

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ 132

महत्वपूर्ण कार्य करने को इस धरती पर यहाँ भेजा है परन्तु मनुष्य की बनायी गयी सामाजिक व्यवस्था ने विधिव्यवस्था में हस्तक्षेप किया है, चन्द्रमौलि अनुभव करता है कि किसी न किसी रूप में विधि विधान में मानवीय समाज व्यवस्था का ही हस्तक्षेप होना चाहिये ।

> "देवरात ने चन्द्रमौलि के अर्न्तमन के इस कथन को और उसके मर्म को समझकर कहा कि तुम्हारी बात मान लूँ तो उस मूल भित्ति को गहरा जाने की आशंका है जिसे आज तक समस्त सामाजिक व्यवस्था को सामन्जस्य देने का आधार समझता रहा हूँ । तुम्हारे कथन का अर्थ तो यह होता है कि शास्त्रों में जो समाज सन्तुलन की व्यवस्था है वह मनुष्य की बनायी है । विधाता की नियति पर नहीं सारा अपौरुषेय समझा जाने वाला ज्ञान विधि विधान का अंग नहीं है । मनुष्य के बनाये घर द्वार और ईंट पत्थर के समान वह भी आलोच्य और परिवर्तनीय है । " §1§

अनामदास का पोथा कृति में कथाकार ने जीवन आदर्श व मानव मूल्यों के संकेत प्रस्तुत किये हैं । सचमुच मनुष्य साधारण जैविक प्रक्रिया से ही जुड़ा है । इसलिये वह संसार को साधारण मनुष्य के रूप में ही सोच सकता है । किसी को सिखाना इसका उद्देश्य नहीं है मनुष्य ने अतीत से वर्तमान की देहली पर कुछ सनातन मूल्यों को लेकर पैर रखा है किन्तु वह अपनी सीमाओं, त्रुटियों, खामियों को छिपाकर अपने को कुछ इस ढंग से दिखाना कि सचमुच मैं कुछ हूँ, दुरभिमान की परिधि में आता है

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ - 133

मनुष्य ने छोटी-छोटी बातों के लिये संघर्ष को बहादुरी समझा है पेट पालने के लिये छीना-झपटी को कर्म माना है, झूठी प्रशंसा पाने के लिये नाटक किये है, वह जीवन आदर्शों को सच्चे मायने में प्राप्त नहीं कर सका है। किसी बड़े लक्ष्य को समर्पित नहीं हो सका है। किसी का दुःख दूर करने के लिये अपने को उलीचकर दे नहीं सका है। सारा जीवन केवल दिखावा और केवल भौंड़ा अभिनय करने में बीत गया। आचार्य द्विवेदी उपन्यास के पृष्ठ भूमि में लिखते है-

> "मगर यह रोना भी व्यर्थ ही है, क्या लाभ है इससे,
> किस दुखिया के आँसू पोंछने की सम्भावना है इससे
> किसी का भला न होता हो तो उसका पचार पसारना
> सामाजिक अपराध ही है। फलितार्थ सिर्फ इतना ही
> है कि अनामदास जी ने एक पोथा भेज दिया है मुझे
> समर्पित है यहाँ पर समर्पण उस अर्थ में नहीं है जिस
> अर्थ में साधारण हुआ करता है। उन्होंने लिखा है
> कि इसे जैसा चाहूँ वैसा करने का अधिकार मुझे है।
> इसी अर्थ में यह समर्पित है।" §1§

फलतः इस तरह की मानवीय सामाजिक स्वीकृति निरर्थक शब्द मात्र नहीं हो सकती यद्यपि मनुष्य पीछे की ओर जब देखता है तो उसे विराट रिक्तता के दर्शन होते है यह रिक्तता कुछ ऐसी गहरी है कि उसे परिवर्तित जीवन मूल्यों के साथ परमार्जित किया जा सकता है। व्यक्तिगत सोच मानवीय मूल्यों को कहीं कहीं तो परम्परित मान्यता देता है और कहीं-कहीं परमार्जित भी करता है। दुनिया में कोई भी विश्वास एकदम गायब नहीं हुआ है रूप बदलकर वह जी रहा है। नहीं जीता होता तो अपने को प्रगति शील कहलाने वाले दूसरों के लिये मुर्दाबाद के नारे न लगाते।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 305

उपन्यासकार ने दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में रैक्व ऋषि के सहज चिन्तन का विश्लेषण करते हुए लिखा है-

"लड़का चिन्तन मनन में इतना खो गया है कि उसे संसार की किसी और बात का ध्यान ही नहीं रहा, केवल ध्यान करता था और समझने का प्रयत्न करता था कि वह मूल तत्व क्या है जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है और जिसमें सब विलीन हो जाता है। अपनी इस सोचने की आदत के कारण वह लोक-सम्पर्क में बहुत कम आता था। अनाथ तो था ही, वह पूर्ण रूप से अनिकेत भी हो गया, अर्थात उसके पास अपना कहा जाने लायक कोई घर भी नहीं था। वह एकान्त सेवी हो गया था। प्रातः काल नदी में स्नान करने के बाद वह ध्यान में बैठ जाता और सोचने लगता कि सामाजिक जीवन क्या चीज है, पुरुष और स्त्री का क्या भेद है इन सब बातों से वह एकदम अपरिचित ही बना रहा लेकिन उसके सोचने की प्रक्रिया निरन्तर बढ़ती ही जाती थी।" |1|

यह भी सत्यान्वेषी मन की दार्शनिक मूल्यवत्ता है। रैक्व के चिन्तन मनन की प्रवृत्ति को देखकर ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि यह निष्क्रिय, निष्काम, तरुण तापस समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर रहा है। सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या, अपरिग्रह आदि ऐसे ही गुण है जो बहिर्मुख कम अन्तरतम में बहुत है। रैक्व प्राणवायु और जगतवायु के

- -

|1| हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा -पृष्ठ 316

के मूल तत्व में चिन्तन मनन करता हुआ लीन रहता है । ऋषि पुत्र ने समझ लिया कि साम का आश्रय स्वर है । स्वर का आश्रय प्राण है, प्राण का आश्रय जल है और जल का आश्रय स्वर्गलोक है । यह वायु भी है जिसने जल को प्रलंयकर बना दिया था । तरुण तापस वायु के वेग को अनुभव करते हुये पद-पदार्थ की महत्ता को प्रतिपादित करते है ।

"अनुभव, जानती हो शुभे, सब कुछ वायु से उत्पन्न होता है और वायु में विलीन हो जाता है । मेरे भीतर तुम्हारे भीतर और समस्त विश्व ब्रह्मांड में वायु ही सब कुछ करा रहा है। मेरे भीतर जो प्राणवायु है वह तुम्हें देखकर बहुत चंचल हो गया है । तुम्हें दिखायी नहीं देता पर मेरे अन्दर भयंकर आँधी वह रही है । मैं नहीं जानता कि वह मुझे उड़ाकर कहाँ ले जायेगी पर वह उड़ा रही है, मैं उड़ रहा हूँ । वह मेरे अन्तर्वर्ती प्राणवायु को तुम्हारे भीतर ठेलकर घुमा देना चाहती है । मेरा प्राण चंचल हो चुका है वायु की इस अद्भुत शक्ति का परिचय मुझे पहले नहीं था, तुम्हें देखकर मुझे नया प्रकाश मिल रहा है प्रकाश का कारण वायु ही है । " §1§

"वस्तुत: वायु अथवा प्राण जीवन का आधार रूप है और जाबाला इसे प्रत्यय अ‍ तथा प्रतीत की संज्ञा देती है । प्रत्यय आत्मा का धर्म है । पद और पदार्थ को यह प्रत्यय ही जोड़ता है । सत्यान्वेषी ऋषियों ने मनुष्य की ज्योति सूर्य के ही कारण है कि मनुष्य बैठा विचारने, कार्य

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा- पृष्ठ 323

करने, और लौटने की शक्ति रखता है । इसी प्रकार कोई ऋषि चन्द्रमा को मनुष्य की ज्योति मानता है, कोई अग्नि को और कुल मिलाकर आत्मा ही एकमात्र ज्योति की संज्ञा से अर्चित की जाती है प्रकृति के पाँचों तत्व इसमें आकाश, पृथ्वी, जल भी निहित है, समस्त सृष्टि के जीवन के मूल आधार है । महाराज जनक ने जाबाला के पिता को बताया था कि जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती किन्तु जो वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करती है जिसकी कल्पना करने में मन असमर्थ है, किन्तु जो मन की कल्पना करती है जिसे देखने में सब नेत्र असमर्थ है, किन्तु जिसके द्वारा हम नेत्रों से देखते है, जिसे श्रवण सुन नहीं सकते किन्तु जो श्रवण ज्ञान की शक्ति प्रदान करती है । जिसे प्राण श्वासित अथवा उच्छवसित करने की शक्ति नहीं रखते किन्तु जो प्राणों को स्वासोच्छवास की शक्ति प्रदान करती है उसी को परम शक्ति समझो । " §1§

सत्यासत द्वन्द में परमज्ञानी ऋषि विचार विमर्श करते रहे हैं, कोई मन को सत्य मानता है, कोई प्राण को सत्य मानता है, कोई आंशिक सत्य या पूर्ण सत्य को परम सत्य मानता है । रैक्व वायु को परम सत्य मानते हुये उसी का संधान करते हैं, वह वायु को सब वस्तुओं का कारण मानता है । मनुष्य शरीर में जो प्राण वायु निबद्ध है, उसे वश में करके सब कुछ पाया जा सकता है । यह भी एक जीवन दर्शन है । वह अपने प्राणों को इस प्रकार निबद्ध कर सकता है कि हवा में उड़ सकता है । उनका ऐसा संक्रमण दूसरों में कर सकता है कि लोग रोग मुक्त हो सकते हैं । जीवन

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 328

का यह प्रयोग पक्ष है । आचार्य द्विवेदी ने दृढ़ता से इस पक्ष को उजागर किया है कि अनुभव के समक्ष श्रुतिवाक्य भी प्रमाण नहीं माने जा सकते । जाबाला रैक्व के जीवन दर्शन के प्रति सचेष्ट है । जाबाला सोचती है कि तरुण तापस वायु को जानता है वह क्रिया मार्गी है, ज्ञानमार्गी की अपेक्षा जीवन का प्रयोक्ता है ।

रैक्व की समाधि अवस्था का वैयक्तिक चेतना में लेखक का यह उल्लेख पठनीय है -

"अर्द्धरात्रि को तापस धरती पर आ गये और रथ के नीचे ही पैर फैला कर सो गये । मैंने समाधि और निद्रा का भेद स्पष्ट देखा । निद्रा की स्थिति में भी वे पीठ झुका लेते थे । परन्तु वह भी गाढ़ निद्रा । ब्रह्म मुहूर्त में वे उठे, नदी तट पर जाकर नित्य क्रिया कर फिर स्नान करके रथ के नीचे आ गये । उस समय कई लोग चुपचाप प्रणाम करके खड़े हो गये । बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्होंने उनकी ओर देखा किसी-किसी से दो एक बातें भी कर ली । उनकी प्रसन्न मुद्रा देखकर मैंने भी प्रस्तुत होने का साहस किया । मुझे भय था कि कहीं कुछ अन्यथा न बोल दें पर मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके भोले मुख पर कुछ कातरता दिखायी पड़ी बोले, क्या बुरा मान गये, आचार्य मैं अल्पज्ञ हूँ आप बहुत जानते हैं, अल्पज्ञ की बात का बुरा नहीं माना जाता । " §1§

ऋषि कुमार का शिष्टाचार, विनम्रता, परक यह स्वस्थ जीवन मूल्य है । ऋषि कुमार की फक्कड़ता, लापरवाही, जीवन जगत के रिश्तों को नहीं

----

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 335

समझती थी । इधर आचार्य औदुम्बरायण तापस कुमार के तत्व ज्ञान के मर्म को नहीं पहिचान पा रहे हैं ।

पुनर्नवा उपन्यास का देवरात अपनी जीवन गाथा को आलोच्य पाकर परिवर्तित जीवन मूल्यों की चर्चा करता है । वह धर्म-कर्म, संयम-नियम, को प्रश्नांकित ढंग से देखता है । उसके मन में सामाजिक विधान को लेकर विचार आता है कि क्या सचमुच ही मनुष्य रचित व्यवस्था का हस्तक्षेप उनके जीवन को बार-बार मोड़कर कुछ न कुछ बताने में उत्तरदायी नहीं है । चन्द्रमौलि के संवाद के साथ चर्चा आगे बढ़ती है कि -

"मुझे ऐसा लगता है कि वाक्य मात्र सीमा में बंधे हैं । उनका आदि भी होता है और अन्त भी । पर सीमा को मैं मामूली गौरव नहीं देता । सीमा को विधाता का दिया अनुपम साधन मानना चाहिये । मैं अगर एक फूल बनाऊँ चाहे वह चित्त हो लकड़ी का बना हो, पत्थर का हो, सीमा के चौखटे में बँधा हुआ होगा पर उसकी शोभा इसलिये दीर्घजीवी हो जायेगी । विधाता के बनाये फूल क्षण-क्षण परिवर्तित होंगे मुरझायेंगे, झड़ेंगे, फिर नये फल बनने में निमित्त बनेंगे, पर मेरा बनाया फूल स्थायी होगा । " (1)

"जीवन मूल्यों के अर्थ प्रवाह में देवरात औरस्थीय कल्पना में निमग्न हो जाता है । देवरात की विधाता की बनायी धर्मनिष्ठा विस्मृत होने लगती है और उसके

- -

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - पुनर्नवा पृष्ठ 133

हृदय में उसके द्वारा संजोयी हुयी कमनीय शर्मिष्ठा
स्मरण हो आती है । देवरात ने अनुभव किया कि
उसके द्वारा निर्मित हृदय मूर्ति ज्यों के त्यों बनी
हुयी है । चन्द्रमौलि विधि विधान में हस्तक्षेप कर
मूल्यों की परिवर्तित सीमा बाँध रहा है । देवरात
विचार-मन्थन करते जा रहे हैं कि सीमा की भी
अपनी महिमा है । वह सीमा ही है कि शर्मिष्ठा
उनके मानस में ज्यों की त्यों विराजमान है । नव
विकसित प्रफुल्ल वर्षे कमल के समान वे उसे देख रहे
है । दुनिया बदल रही है, देवरात बदल रहे हैं ।
पर शर्मिष्ठा स्थिर है, शाश्वत है । देवरात संकुचित
भाव से कहता है कि हाय प्रिये, तुम्हें दासी समझना
आत्म वंचना थी, विशुद्ध आत्म वंचना । तुम नित्य
प्रफुल्ल, नित्य मनोहर, नित्य नवीन होकर सदा
इस मानस मन में विद्यमान हो । " §1§

देवरात चित्त में जन्मे हुये संस्कारों को महत्व देते हैं । उनकी धारणा है कि मन में कोई भी चिन्ता उद्वेग का कारण हो सकती है । मूलवत्ता परस्पर विश्वास और प्रमोत्सर्ग में देखने को मिलती है । मदनिका तथा शार्विलक का प्रणय रूप परस्पर प्रत्यय पर ही आश्रित था । शार्विलक मदनिका के बारे में सोचता है -

"परन्तु मौंदी को छुड़ाये बिना वह रह कैसे सकता
है उसे भूल जाना अगर विवेक है तो विवेक निश्चित
रूप से घटिया चीज है । मौंदी को वह भूल नहीं
सकता । उसे छुड़ाने के लिये वह जो भी करेगा वह

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ 136

सब पुण्य कार्य होगा । पाप इसमें नहीं है । पाप किसी
और जगह है । मॉंदी को छुड़ाने का संकल्प पाप नहीं
है, उसके लिये उपाय सोचना भी पाप चिन्ता नहीं है ।
उसके अन्तर्यामी कहते हैं कि यह पाप नहीं है । सारा
सत्व गलकर मॉंदी के निकट ढ़रक जाना चाहता है।" {1}

शार्विलक दारूण उद्वेग मय होकर मॉंदी के लिये खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाना चाहता है । उसका शरीर विकल है । चेतना नहीं छूटी है । संज्ञा अभाव भी बना हुआ है । भीतर ही भीतर ज्वाला भभक रही है । लेकिन जला नहीं पा रही है, वह जल भी नहीं रहा है । सिद्ध है कि प्रणय का राग स्व से विमुक्त होकर ममेतर अधिक हो जाता है और यही वैयक्तिक चेतना का केन्द्र बन जाता है जीवन दर्शन ऐसा अपूर्व जीवन संगम है जिसमें बहुत सारे तत्व समाहित है । मॉं शिवा अलौकिक शक्ति का उल्लेख करती है -

"शिव जी तुम्हें शास्त्र मर्मज्ञ बनायेंगे । जानते हो
बेटा- शास्त्रार्थ सभा में विजयी होना मेरी दृष्टि
में पाण्डित्य की कसौटी नहीं है । जिसे सचमुच शास्त्र
ज्ञान हो जायेगा, वह भला हार जीत के लिये क्यों
भटकता फिरेगा । परन्तु इन्हें मेरी बात नहीं सुहाती
थी । मैंने अपने पड़ौसी को बुलाकर किसी तरह
लड़कों को उनसे अलग कर दिया । ये घर की चीजें
तोड़ते- फोड़ते रहे दूसरे दिन कुछ शान्त हुए ।" {2}

वृद्ध माँ का यह पारवारिक जीवन दर्शन नितान्त व्यक्तिगत ही नहीं वल्कि सारी सामाजिक संरचना और उसकी थोथी मान्यताओं को उजागर

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ ।53

{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ ।56

करता है। श्याम रूप ने वृद्ध माँ के कारुणिक हृदय को आत्मसात करके आत्मीयता का प्रतिपादन करते हुये अभिव्यंजित किया-

> "वृद्धा की आँखों में आँसू झरने लगे। श्यामरूप भी डबडबा गया। बोला माँ मैं सचमुच ही श्यामरूप हूँ। कैसा विचित्र संयोग है। मैं अनाथ बालक हलद्वीप के वृद्धगोप दम्पति का पाला हुआ हूँ। मेरा नाम श्याम रूप ही है। मैंने सुना है कि मेरे माता-पिता किसी मेले में मुझे लेकर आये और किसी दुर्घटना में डूबकर मर गये। मैं अभागा बच गया। यह तो विचित्र बात है। माता तुम कहती हो कि तुम्हारा श्याम रूप डूबकर मर गया है और यह श्याम रूप भी जानता है कि उसके माँ-बाप डूबकर मर गये। तुम अपने डूबे श्यामरूप को मुझमें देख रही हो और मैं अपने डूबे हुए माता-पिता को तुम लोगों में देख रहा हूँ यह विचित्र संयोग नहीं है माँ!" §1§

मानवीय परिकल्पना इतनी विराट होती है कि सामान्य व्यक्ति उस बोध तक पहुँच ही नहीं पाता। पारस्परिक सद्भाव, सम्भाव मैत्री, मनेतर मूल्य को आस्थावान बनाती है। बाण भट्ट, भट्टिनी के प्रति संरक्षक भाव की मृदुल कल्पना करता है वह भट्टिनी के अचानक आगमन से क्षण भर के लिये स्तब्ध हो जाता है किन्तु उसकी मृदुल मनोहर दृष्टि उसे मुग्ध भाव से देख रही है।

> "भट्टिनी वहाँ क्षण भर

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ 157

खड़ी होकर फिर अपने घर की ओर लौट गयी, केवल
आदेश के स्वर में कहती गयी जाओ, भीतर सो जाओ।
बाणभट्ट कहता है कि कौन किसका अभिभावक है भट्टिनी
का मैं या मेरी भट्टिनी । कौन किसकी सेवा में नियुक्त
है मैं उनकी या वे मेरी । लोक लोकान्तर, काल से
कालान्तर दिशा से दिशान्तर में यह सन्देश गूंजता
रहता है कि बाण भट्ट का जीवन व्यर्थ नहीं था उसने
अतल गहवर में भट्टिनी के कमनीय रूप को संजोकर
रखा है उसके अन्तर में बाण भट्ट का पथ भ्रान्त अकर्मा
नहीं है । " §1§

मानवीय जड़ता भी कभी-कभी ऐश्वर्य मद और तेजो भ्रष्टता का
वीभत्स प्रदर्शन करती है । प्रजा राजा के वैयक्तिक अविवेक को झुठला
देती है । प्रजा का कथन कि राज राजेश्वर को इस प्रकार निर्णयात्मक
दोषारोप करना क्या उचित है ।

"अपराध क्षमा हो देव । आप चक्रवर्ती राजा है आपके श्रीमुख
से निकली हुयी यह बात पक्षपात हीन तत्वज्ञ की सही
नहीं है । आप अश्रद्धावान की भाँति लोक वृतान्त से
अनभिज्ञ बात करते रहे हैं.... मैं सोम पायी वात्स्यायनों
के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ । यथाकाल अक्ष उपनिषयादि
संस्कारों से संस्कारित हूँ । सामवेद का अध्ययन करने
का सुयोग पा चुका हूँ । यथाशक्ति शास्त्रों का अभ्यास
भी करता रहा हूँ । " §2 §

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 146

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 156

बाणभट्ट राजा की तिरस्कार भरी दृष्टि से क्रोधित हो उठा, बाण का जीवन दर्शन ऐसे राजा के दम्भी ऐश्वर्य को चुनौती देता है। भट्ट पवित्र वंश का बालक है, उसका सम्मान होना चाहिये किन्तु मदान्ध और अनभिज्ञ लोग व्यक्ति के व्यक्तित्व की सार्थकता नहीं जानते। बाण की क्या यही लम्पटता थी कि उसने छोटे महाराज के अन्त:पुर में प्रवेश करके भट्टिनी को छुड़ा लिया था। जिसके कारण राजतन्त्र उसे लम्पट की संज्ञा देने लगा। बाण की शालीनता, व्यक्तित्व, शिष्टाचार मय संस्कार वर्णनीय है।

> "सुचरिता जब अपने घर के दरवाजे तक पहुँच गयी तो मैंने साहस कर पूर्वक पुकारा।शुभे, अनुचित न मानें तो मैं कुछ निवेदन करूँ। वह तुरन्त लौट पड़ी, मेरे पास आकर बोली कुछ सेवा मैं कर सकूँ तो मैं धन्य हूँ। क्या आज्ञा है। सुचरिता का सारा शरीर ही छन्दों से बना था उसके वस्त्र उसके पद विक्षेप, उसका कण्ठस्वर उसकी दृष्टि सब कुछ छन्दोमय थे।" §1§

बाणभट्ट शिष्टाचार विनम्रता की प्रतिमूर्ति सुचरिता को देखकर अवाक था। वह मन्त्र मुग्ध होकर वीणा जैसी झंकार सुचरिता से सुन रहा था उसका जिज्ञासु मन निपुणिका की तलाश अन्त:पुर जाने के लिये भटक रही थी। सुचरिता का छोटा सा घर उसे काफी सुरुचिपूर्ण लगा। सुचरिता ने स्वाभाविक सरल स्वभाव के साथ एक आसन पर बैठाते हुए विनम्रता का परिचय दिया।सुचरिता के प्रत्येक आचरण में एक सहज आभिजात्य का गौरव था। उसके बैठने में, बोलने में यहाँ तक कि नि:श्वास लेने में एक प्रकार की महनीयता थी।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी-ग्रन्थावली-बाणभट्ट की आत्मकथा-पृष्ठ 162

"आर्य, आज मेरा अहोभाग्य था जो आपके दर्शन हो गये । निपुणिका से आपके बारे में बहुत सुन चुकी हूँ । वह आपका नाम लिये बिना मामूली से मामूली बात भी नहीं चला सकती थी । बहुत दिनों से मन में साध थी कि आपके दर्शन करूँ । पर हम लोगों का ऐसा भाग्य कहाँ । आज नारायण प्रसन्न है, उन्होंने स्वयं आपको मेरे पास भेज दिया है । " §1§

जिस प्रकार सुचरिता का चरित्र है वैसा ही बल्कि उससे बढ़कर तेजस्विनी मैना का चरित्र चारुचन्द्र लेख में है और यह चरित्र ही मानवीय मूल्यों की कसौटी होता है । मैना के बारे में उपन्यासकार ने कवि कुलगुरु कालीदास की शकुन्तला की सखी अनुसूइया जैसा अवतरित किया है । जिस प्रकार अनुसूइया के परिपूर्ण भाव से आत्म समर्पण का मूल स्वर ईश्वर मय माना जाता है वैसा ही मैना के बारे में और अन्य जनता के बारे में । नाटी माता की भी विशेष स्थिति है -

"गलत समझ रही हो देवी, तुमने देश की साधारण प्रजा में जो आत्म विश्वास संचरित किया है वह भी बड़ी बात है । उसी से मैनायें बन रही है । बोधा बन रहे हैं और सैकड़ों ग्रामीणों को उसी से बनते देखा है । शस्त्र लेकर मैदान में जूझना व शक्ति देना और भी बड़ी बात है । " §2§

भगवान को आत्म समर्पण करने का अर्थ है प्रेरणा देने की स्थायी शक्ति को पाना, देवि- जो जितना देता है उतना ही पाता है । जितना भगवान को दिया जाता है उतना सोना होकर लौटता है । सचमुच मैना ने,

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी -ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्म कथा पृष्ठ 149

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी -ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख - पृष्ठ 429

बोधा ने, और न जाने कितनों ने रानी की प्रेरणा शक्ति को पाकर रानी को ही सर्वस्व देने का संकल्प किया । रानी को ही आश्रय करके मानवीय मूल्यों का विराट यज्ञ पूरा हो सकता है । सभी के प्रयत्न में तभी सिद्धि है । राजा सातवाहन, रानी के मुख मण्डल की सहजदीप्ति को देखता है और कहने लगे कि पति पत्नी के बीच का यह गौरव एक दूसरे को अनुकूल बनाता है । उपन्यासकार ने दाम्पत्य पारिवारिक, सहज विश्वास को रागात्मक सत्ता के साथ इस प्रकार मूलवत्ता प्रदान की है -

> " मैंने प्रतिवाद नहीं किया, सेवा पाना भी कभी परम सन्तोष और आत्म लाभ का हेतु बनता है । मुझे ऐसा जान पड़ा, रानी के मृदु स्पर्श से मेरा अन्तंतर परम विश्राम अनुभव कर रहा है । विचारों की झुंझ क्रमश: क्षीण होती गयीं । ऐसा जान पड़ा कि मन के निभृत पटल पर कोई सुधालेप हो रहा है । यह सेवा है या चिर पिपासित किसी अन्तर्यामी के बहुत प्रतीक्षित तृषा सामक वारिधारा है ।" §1§

पारिवारिक जीवन दृष्टि और रागात्मक विनय दृष्टि दोनों में ही आत्मोत्सर्ग की भावना रहती है । बाणभट्ट, भट्टिनी तथा निपुणिका के बीच अकथनीय रागात्मक स्वरों को उद्वेलित कर देना चाहता है जब रत्नावली नाटिका का मंचन किया जाता है तब भट्टिनी ने और निपुणिका ने पात्र सृष्टि में अपना योगदान करके विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया । कथाकार कहता है -

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारुचन्द्र लेख - पृष्ठ 430

> "आज भट्टिनी का आनन्द बाँध तोड़ देना चाहता था । सहज गम्भीर भट्टिनी आज नन्ही बालिका बनी हुयी थी । बाणभट्ट ने नाटिका का मंचन करके जन सामान्य में स्थान बनाया । भट्टिनी को इस अभिनय में अपूर्व उत्साह अनुभव हो रहा था । सचमुच समर्पित भाव जन सापेक्ष मूल्यों की बहुत बड़ी कसौटी है । " §1§

मानवीय जीवन में प्रेम और उत्सर्ग विशेष भाव की स्थापना करते हैं वस्तुत: प्रेम अविभाज्य है परन्तु यह मूल्य तब विभाजित हो जाता है । जब उसमें ईर्ष्या का भाव पैदा हो जाता है । वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका ने उन्माद बर्षा दिया । उसके हर्ष प्रेम और शोक के अभिनय में वास्तविकता थी । वास्तव में निपुणिका ने बाणभट्ट से अनन्त तेजस्वी प्रणय की याचना की थी । उपन्यासकार ने इसी मूल सत्ता को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है -

> "अन्तिम दृश्य में जब वह रत्नावली का हाथ मेरे हाथ में देने लगी तो सचमुच विचलित हो गयी । वह सिर से पैर तक सिहर गयी । उसके शरीर की एक-एक शिरा शिथिल हो गयी । भरत वाक्य समाप्त होते-होते वह धरती पर लोट गयी । नगर जन जब साधु-साधु की आनन्द ध्वनि से दिगन्तर कँपा रहे थे, उस समय यवनिका के अन्तराल में निपुणिका के प्राण निकल रहे थे । भट्टिनी ने दौड़कर उसका सिर अपनी गोद में ले लिया और कुररी की भाँति कातर चीत्कार कर चिल्ला उठी हाय भट्ट अभागिनी का अभिनय आज समाप्त हो गया, उसने प्रेम की दो

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 241

> दिशाओं को एक सूत्र कर दिया और पछाड़ खाकर निपुणिका के मृत शरीर पर लोट पड़ी । अभिनय करके जिसे पाया था, अभिनय करके ही उसे खो दिया । " (1)

इस प्रकरण में निपुणिका का समर्पित चरित्र मूल्यों का अनूठा सृष्ठा है । निपुणिका ने स्त्री जाति का गौरव बढ़ाया, वह स्त्री जाति की श्रृंगार थी । सतीत्व की मर्यादा थी और जीवन की मानवीय मूलवत्ता थी । बाणभट्ट के जीवन में इस प्रकार के अभागे दिन भी देखने को मिले । तभी उसने बीसवें उच्छ्वास के शुरू में ही निवेदन किया था कि वह अपने दुर्भाग्य का अधिक रोना नहीं रोयेगा । परन्तु मनुष्य का जीवन अदृश्य शक्तियों द्वारा गढ़ा जाता है । यदि नियति नटी का अभिनय अपने वश की बात होती तो मनुष्य की प्रतिज्ञा भी टिकती । परन्तु उसे तो प्रेम की दो परस्पर विरुद्ध दिशायें एक सूत्र में बाँधनी थी ।

मानवीय मूल्यों का उदात्त स्वरूप भट्टिनी और निपुणिका के समर्पित प्रेम में मिलता है । भट्टिनी निपुणिका के माध्यम से ही भट्ट के सान्निध्य में पहुँची थी, इसलिये उसे निपुणिका का सौहार्दपूर्ण ममेतर भाव स्मरण हो आता है ।

यद्यपि निपुणिका अपने दुःखी जीवन से स्त्री की मर्यादा कभी अतिक्रमित नहीं कर सकी, इसलिये सुचरिता भट्टिनी और भट्ट को यही सन्देश देती है कि निपुणिका के जीवन का बलिदान तभी होगा जब वह सन्धान सफल हो जाये । सुचरिता के चले जाने के पश्चात भट्ट की निःसहाय अवस्था विचारणीय है -

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा- पृष्ठ 250

"मैं अकेला भट्टिनी के पास रह गया । आज मेरा
हृदय टूक-टूक हो जाना चाहता था । निपुणिका
विहीन भट्टिनी की कल्पना मैंने कभी नहीं की
थी । भट्टिनी तब भी सोयी हुयी थी, परन्तु
उनके अंग-अंग में अक्लान्त, चैतन्य काँप रहा था ।
वस्तुत: वह निद्रा की कम और समाधि की
अवस्था में अधिक थी । " §1§

पारिवारिक एवं दाम्पत्य त्रिकोणात्मक प्रणय का अनूठा उदाहरण है । भट्ट और भट्टिनी निपुणिका की स्मृति करके रोते रहते हैं । उपन्यास लेखक ने जीवन दर्शन की उस अन्तिम वेला की ओर इंगित किया है जहाँ संसार क्रूर और कठिन लगने लगता है । निपुणिका के चले जाने के बाद भट्ट और भट्टिनी अवश भाव से नियत चक्र को देख रहे हैं । जीवनगत मूल्यों का यह विराम चिन्ह हर जीवन के साथ जुड़ा हुआ है ।

पुनर्नवा उपन्यास में देवरात की शर्मिष्ठा मृणालमंजरी के लालन पालन में कमनीयता लिये हुए है । देवरात शर्मिष्ठा के अपूर्व सौन्दर्य को मानस पटल पर उतार लेते हैं । वह बदलते हुये जीवन परिवेश में अपने भाव को अन्तर्निहित ही रखते हैं । इसी प्रकार माँ ऋतम्भरा प्रेम के वैराग्य को समझाती है ।

" प्रेम ही, स्नेह को आत्मदान करना ही होता है ।
चरणों में लोटना ही आत्मदान नहीं होता, अपने अहंकार
अहंकार को अलगाव की बुद्धि को, मान को, अभिमान
को, आपा को तो उलीचकर दे ही देना पड़ता है । "§2§

बुराईयों में अहंकार व्यक्ति को गर्त में डाल देता है । अहंकार अपने आपको सबसे अलग विशिष्ट समझने की बुद्धि है । व्यक्ति जब अहंकार वादी होता है-

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा- पृष्ठ 253
§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 275

तो उसके द्वारा मूल्यों की रक्षा नहीं हो सकती । चन्द्रा उद्विग्न विचार से इस मनो विकार को समझ लेना चाहती है । चन्द्रा समझाती है कि वह आर्यक व मृणाल को सुखी बनाने में कैसा और क्यों स्वस्थ्य मापदण्ड उद्भाषित हो । अभिमान को तो विवेक शील मन, उखाड़ कर फेंक देता है । आचार्य द्विवेदी ने मानव मूल्यों की सत्ता के लिए इस विचारणा को उद्भाषित किया है -

> "अभिमान को कैसे किसी को दिया जा सकता है। बाबा कहते हैं कि सारे मनोभव विकारों को महाप्रेमिक के चरणों में उड़ेल दे । कैसे उड़ेल दें भला, बाबा पहेली बुझाते हैं कैसे दिया जा सकता है । इच्छा शक्ति के साथ क्रिया शक्ति भी होनी चाहिये । देने की इच्छा और न देने की क्रिया, क्या मतलब हुआ हाय मूर्खे अपने आपको बचा लेने की इच्छा और तदनुकूल क्रिया इसी का नाम तो अभिमान है । उसे देना तो अपने आप को भी दे देना है । रंचमात्र भी बचा रखने की लालसा और प्रयास के बिना परिपूर्ण आत्मदान। " §1§

चन्द्रा बाबा का भावार्थ समझ रही थी और ममेतर आत्मदान का मतलब भी परन्तु वह असहमति प्रकट करते हुये अपने को सब बतलाती हुयी विभिन्न भाव, धाराओं में बहने उतरने की परिकल्पना करती है, चेष्टा करती है और सहज नहीं रह पाती । उपन्यासकार का कथन है -

> "अनेक जन्मों की विकट साधना से जब जगत-जननी सन्तुष्ट होती है तो नारी विग्रह देती है । वे स्वयं निष्ठय व्यापार रूपा है । अपने आपको मिटा देने की भावना का मूर्त विग्रह । वे नारी काया को भी अपना प्रतिरूप बनाती है

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ 274

अहंकार के रूप में वे नारी को एकांतिक चलने को प्रोत्साहित करती हैं। सेवा के वास्तविक धर्म से वंचित रहने को उत्साहित करती है। उद्दाम भावना को उकसाती है पर निखिल जगत की माता त्रिपुर सुन्दरी सदा रक्षा करती रहती है। तू बिना सेवा के किसी प्रकार के प्रेम की कल्पना कर सकती है।" {1}

आचार्य द्विवेदी ने वैयक्तिक और पारिवारिक दायित्व के प्रति सचेष्ट संरचना अपने उपन्यासों में की है। चारुचन्द्र लेख का सीदी मौला, सातवाहन और चन्द्रलेखा के प्रणय पावन से प्रसन्न है। सातवाहन राज्य के दायित्वों को भली भाँति निर्वहन करता है। जब राज्य प्रजा पर दबाव पड़ता है तो वह मित्र और रानी की अपेक्षा प्रजाजनों की मन्त्रणा पर प्रत्यय करता है -

"क्षमा करें महाराज ऐसे नहीं चलेगा। वे लोग हमारे ऊपर आक्रमण करते रहे और हम लोग बचाव करते रहे, यह ठीक नहीं है। मुझसे अब ये नहीं सहा जाता। कल आप रानी के लिये व्याकुल थे, आज धीर शर्मा के लिए चिन्तित हैं, और कल विद्याधर मन्त्री या योधा प्रधान के लिए कातर हो उठें।" {2}

मैना के इस प्रबोधन से स्पष्ट होता है कि राजा पारिवारिक मन्त्रिक दायित्वों का निर्वहन करने के साथ वीर जनोचित प्रजा की रक्षा करना चाहता है। उसने मैना की इस उद्बोधक वाणी को शिरोधार्य किया, ऐसा लगा कि उसका अन्तर्मन यही सुनने के लिए व्यग्र था और पहली बार किसी ने उसकी आँखें खोल दी। राजा ने स्वीकार किया और कहा कि तुमने मेरे चित्त में संचित सारे कूड़े के जंजाल को एकाएक भस्म

- -

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ- 295

{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख- पृष्ठ 437

कर दिया है । वस्तुत: मैत्री, शील और व्यसन की समानता होती है और जहाँ समानता नहीं होती है वहाँ शील उखड़ जाता है । मैत्री गहरा जाती है । स्नेह तन्तु बिखर जाते हैं । शक्तिशाली और शक्तिहीन की मित्रता केवल बात की बात है । सबल और दुर्बल की मैत्री एक के आधिपत्य और दूसरे के आश्रित से अधिक महत्व नहीं रखती । यह सब जीवन दृष्टि के विभिन्न आयाम हैं । चारुचन्द्र लेख में पौधा, मैना और तमाम प्रजाजन राजा के शुभेच्छु हैं । परन्तु यथार्थ वीर जनोचित विचार भूमि पर वे लोग राजा एवं रानी को लाकर खड़ा कर देते हैं । मैना राजधर्म के लिये अपने व्यक्तित्व को न्यौछावर कर देती है ।

अनामदास का पोथा का रैक्व दार्शनिक एवं भाव भूमि की अन्तर्तलाश में सन्नद्ध है । वह वैयक्तिक व पारिवारिक मूल्यों की उलझी उलझी कड़ियों को सुलझाता रहता है । रैक्व रथ चालक की पत्नी को दीदी संज्ञा से अभिहित करता है । वह जगत के प्रपंचों से एकदम अपरिचित है । वह सहज जिज्ञासा भाव से बताता है कि पारिवारिक रिश्ता शायद माँ बाप के रहने पर ही जुड़ता है ।-

> "भैया क्या कहते वह विचारा तो अपनी बात कह गया था, मगर थोड़ी देर बाद जब मैं मिली तो भैया कह रहे थे कि दीदी मेरा विवाह नहीं होगा मैंने पूछा क्यों, बोले कि जिसके माँ-बाप नहीं होते, धन सम्पत्ति नहीं होती उसका विवाह नहीं होता । फिर बोले अच्छा दीदी, लड़के का विवाह क्या लड़की से ही होता है ।" ॥1॥

वस्तुत: लोक जीवन और लोक मूल्यों की जानकारी भी तभी होती है जब व्यक्ति की पारिवारिक और सांसारिक जीवन दृष्टि का सम्यक

- -

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 413

आँककर रहे । रैक्व दाम्पत्य जीवन की जिज्ञासा तो मन में संजोयेहुये है परन्तु लोक मूल्यों के अभाव में आचार्य द्विवेदी के शब्दों में बागड़बिल्ला जैसी बात कर रहे हैं । जावाला लोक-मूल्यों की कसौटी पर खरी उतरती है यद्यपि पर दुःखकातर रैक्व, दीन दुःखियों के बारे में बहुत सोचते और करते भी है । जब उन्होंने गाँव वालों के दुःख की बात सुनी तो माताजी के साथ-साथ गाँव गये और उनका सोच बना कि जब लोग इतना कष्ट पा रहे हैं उस समय तप करना वैश्वानर भगवान को धोखा देना है । रैक्व का यह जन-जीवन सापेक्ष जुड़ाव एक ऐसे मूल्य का विकास है जिसे सामान्य नहीं कहा जा सकता । रैक्व का विधिवत् उपनयन संस्कार हुआ, नया संसार मिला । वेद शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वानों का सत्संग मिला । उनके परिवार की महिलाओं, बालक, बालिकाओं के परिचय से उनकी जानकारी हुयी कि दुनियाँ बहुत विस्तृत है । वे लोक व शास्त्र दोनों को समझने का अवसर पा सकें ।"§1§

निष्कर्षतः आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों का वैयक्तिक एवं पारिवारिक जीवन मूल्यों का गवेषणात्मक अनुशीलन करने पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि उपन्यासकार भारतीय मूल्य की संस्कृति और विरासत में प्राप्त उसके संस्कारों का पूर्णतः अनुगामी है । बाणभट्ट की आत्मकथा का लोक विश्रुत विश्व में भले लम्पट कहा जाता हो, परन्तु रागात्मक सत्ता का साधक और वीर जनोचित, साहसी वह कला संगीत मर्मज्ञ अप्रतिम मेधा शक्ति का परिचायक और श्रद्धावान समर्पित साधक है । निपुणिका प्रेमोत्सर्ग की प्रतिमूर्ति है । तथा वैयक्तिक चेतना की धुरी पर समष्टिवादी अवतारणा है । वह प्रेम के ऐसे संसार की रचना करती है जिसमें व्यक्तिवादी मूल्य पूर्णतः ममेतर हो जाते हैं । प्रतीत होने लगता है कि बाणभट्ट की वह सख्य अनुरूपा संगिनी है और भट्टिनी की कृतज्ञ ।

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा- पृष्ठ 42।

चारुचन्द्र लेख का नायक राजा सातवाहन तथा नायिका चन्द्रलेखा गुर्जर सिद्ध सामन्त युग के मूल्यों की धरोहर है । फिर भी उन्होंने नैतिकता और वैयक्तिक आचरण शीलता, निपुणता, कार्य कौशलता तथा भाव प्रवणता कूट-कूट कर भरी हुयी है । जिसे वैयक्तिक मूल्य वत्ता में चारुत्व प्रदान करने वाले गुण कहा जा सकता है ।

पुनर्नवा उपन्यास का नायक देवरात, सौम्य, सुशील, आचरणशील, सत्यनिष्ठ, प्रणयी, उत्सर्गवादी तथा कर्मवादी सोच को मूल्यगत जीवन में उकेरने का प्रयत्न करता है । वह मानव निर्मित कमनीयता में लालित्य बोधीय आयामों को संग्रन्थित कर देना चाहता है । मंजुला तथा मृणाल मंजरी आर्यक तथा शार्विलक जैसे साहसी पात्रों को वह वरेण्यता प्रदान करता है ।

अनामदास का पोथा एक ऐसा उपन्यास है जिसमें ऋषि कुमार रैक्व अन्तर्मुखी चेतना के सहज पात्र है । त्याग, तपस्या, ब्रह्मचर्य, योग साधना, अहिंसा सत्य निष्ठा आदि सद्गुणों के वे प्रतिमूर्ति है तथा उपन्यास का उत्तरार्द्ध पक्ष लोक ज्ञान शून्य रैक्व के लिये लोक ज्ञान हेतु परिवर्धित, परिशोधित, अभिनव आयाम जिसमें मानवीय मूल्यों का भली-भाँति प्रतिपादन हुआ है ।

आचार्य डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने सभी उपन्यासों में त्याग, तपस्या, सत्य, अहिंसा, प्रेमोत्सर्ग, सेवा, शिष्टता, साधना, विनम्रता आदि मानव मूल्यों का प्रतिपादन करके मानवतावादी जीवन दृष्टि का परिचय दिया है । जहाँ उन्होंने सत्य अहिंसा और प्रेम को अपने पात्रों के माध्यम से आदर्श रूप में प्रस्तुत करवाया है वहाँ साधना पक्ष का उद्घाटन करते हुये उसमें मानव मूल्यों को दर्शाया है । उनके

विचारों में व्यक्तिगत साधना से सामूहिक कल्याण की भावना श्रेष्ठतर है । "अनामदास का पोथा" में रैक्व ऋषि इसी भावना के पोषक हैं । डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के चार व्याख्यानों में साधना केन्द्र जो उनका पहला व्याख्यान था जिसका आयोजन मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद द्वारा किया गया था, उसमें साधना के उदस्त रूप को मानव-कल्याण की भावना में प्रत्यक्ष किया है । उसमें सामूहिक कल्याण की भावना ही व्यंजित होती है ।

> "आधुनिक मनुष्य अपने पूर्ववर्तियों से बहुत कुछ
> भिन्न हो गया है और उसकी दृष्टि पहले की
> भाँति अधिकतर परलोक पर केन्द्रित न रहकर
> निश्चित रूप से इहलोक में निबद्ध हो गयी है। "।1।

धर्म का रूप मानवतावादी सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिये जिसमें मानव-सेवा, समाज-सेवा, चिकित्सालय, मातृ-सेवा-सदन, आदि समितियाँ मिलकर मानव-कल्याण करें । उपन्यासकार ने अनामदास का पोथा में ऋषि रैक्व आदि पात्र निवृत्ति-मार्ग को छोड़कर प्रवृत्ति मार्ग में लगकर समाज के लिये सेवा-कार्य करते हैं । औषस्ति ऋषि उन्हें अनुप्रेरित करते हुए सच्चे तप की व्याख्या करते हैं ।

> "लोग दुःख से व्याकुल हैं । उनमें जाना चाहिये ।
> उनके दुःख का भागी बनकर उनमें दुःख दूर करने
> का प्रयत्न करो । यही वास्तविक तप है । "।2।

रैक्व ने स्वयं तपस्या का सही अर्थ समझा है- वे कहते हैं-

> "मैं जो गाड़ी के नीचे बैठकर तप कर रहा था,
> वह झूठा था । सही तपस्या गाड़ी चलाकर
> की जा सकती है । " ।3।

।1। शांति निकेतन से शिवालिक: डा0 शिव प्रसाद सिंह: पृष्ठ सं0 343
।2। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा-पृष्ठ 349
।3। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा-पृष्ठ 376,377

भगवती ऋतम्भरा भी तप को वैयक्तिक महत्व न देती हुयी समष्टि के कल्याण को ही वास्तविक तपस्या समझती है।

"ऐसा तप वास्तविक तप नहीं है जिसमें समस्त प्राणियों के सुख-दु:ख से अलग रहकर केवल अपने आप की मुक्ति का ही सपना देखा जाता है।" (1)

दुर्भिक्ष के समय माता ऋतम्भरा ने बच्चों की सेवा में रत गामा को देखकर कहा " आप सच्ची तपस्या कर रहे हैं। " (2)

रैक्व की ओर उन्मुख होकर कहती हैं "देख बेटा, इस आदमी में मुझे परमपिता परमेश्वर की ज्योति दिखाई देती है।" (3)

जगत माता ऋतम्भरा ने कहा कि जाबाला तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा लेनी चाहे तो मैं उसे क्या उत्तर दूँ तब रैक्व ऋषि का उत्तर था-

"माँ, जो दीन दुखियों की सेवा नहीं कर सकता वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा।" (4)

उक्त उपन्यास के उदाहरणों से स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि तपस्या और साधना के प्रति डा० द्विवेदी जी का दृष्टिकोण अत्यन्त ही मानवतावादी है और वे मानव-मूल्यों के प्रतिपादन में सफल हुये हैं।

इसी प्रकार उपन्यासों में सेवा-भावना, शिष्टता, तथा विनम्रता के सन्दर्भ में मानव-मूल्य दृष्टिगत होते हैं। सम्माननीय

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ सं 421

(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ 375

(3) हजारी प्रसाद द्विवेदी ~~पृष्ठ~~ ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ 376

(4) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ 379

व्यक्तियों का सम्मान करने की शिक्षा ऋतम्भरा प्रदान करती है-

"आचार्य औदुम्बरायण तो तुमसे मिल चुके हैं
मिल चुके हैं
हाँ बेटा, तूने उन्हें पहिचाना नहीं था ।
उनका उचित सम्मान भी नहीं किया था ।
किया था? बेटा
मुझे मालूम नहीं था माँ बड़ा दुष्कृत हो गया।
नहीं दुष्कृत नहीं हुआ । आचार्य ने भी बुरा नहीं माना
क्यों माँ बुरे को बुरा तो मानना ही चाहिये ।
नहीं, तेरा चित्त शुद्ध है, निर्मल है, इसलिये बुरा
नहीं माना पर तुझे बड़ों के सम्मान का ध्यान
रखना चाहिये । "
हाँ माँ । " §1§

डा0 द्विवेदी जी ने शिष्टता परिचायक मूल्यों को उद्घाटित किया है । राजा स्वयं ऋषियों के आश्रम में बिना आज्ञा के नहीं जाताथा-

"ऋषियों के आश्रम का सम्मान था । स्वयं राजा
भी ऋषि की आज्ञा के बिना आश्रम में प्रवेश नहीं
कर सकता था । राजा जानश्रुति ने भी ऋषि की
आज्ञा के बिना आश्रम में प्रवेश नहीं किया था ।
ऋषि औषस्तिपाद की आज्ञा के लिये वे आश्रम
के बाहर रुके रहे । " §2§

अहिंसा परमोधर्म: के सिद्धान्त को भी उपन्यास में प्रतिपादित किया गया है । चारुचन्द्र लेख उपन्यास में सत्य और अहिंसापर बल देते हुए

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ 410
§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली "अनामदास का पोथा" पृष्ठ 444

उपन्यासकार ने इस मानव-मूल्य को दर्शाया है - मृग-छौने के पीछे दौड़ते हुये राजा सातवाहन के डर से वह मृग चन्द्रलेखा की गोद में शरण लेता है तो चन्द्रलेखा राजा सातवाहन को अहिंसा जैसे मानव मूल्य को समझने के लिये प्रेरित करती हुयी उसकी चापल्य-वीरता को धिक्कारती है ।

"धिक्कार है ऐ सातवाहन । तुम्हारे विष दुग्ध बाण क्या ऐसे कोमल मृग छौने के लिये ही है क्या यही वीरता है । " §1§

विद्याधर भट्ट शस्त्र-बल की अपेक्षा आत्मबल को महत्व देते हैं-

"शस्त्र बल से हारना, हारना नहीं है आत्मबल से हारना ही वास्तविक पराजय है। "§2§

शास्त्रों में भी शस्त्र बल से ब्रह्मतेज को ही परमबल माना गया है । सीदी मौला भी शस्त्र बल के आधार पर किये गये तत्कालीन युद्धों के उत्पात के बिल्कुल विरुद्ध हैं ।

उपन्यासकार ने वैयक्तिक मानव मूल्यों के अन्तर्गत प्रेमोत्सर्ग जैसे मूल्य का प्रतिस्थापन करके समस्त सृष्टि को रागात्मक तथा भावात्मक एकता में बाँधने का प्रयास किया है जहाँ तक उपन्यासकार ने प्रेम की परिभाषा की है पूर्णतया त्याग-परक है जिसमें भोग को कोई स्थान नहीं । वस्तुत: सभी उपन्यासों के पात्र त्यागमय प्रेम के पक्षपाती हैं । बाणभट्ट की आत्मकथा में निपुणिका, भट्टिनी का पूर्ण समर्पण युक्त प्रेम एक आदर्श एवं मानव-मूल्य को प्रतिपादित करता है। चारुचन्द्र लेख में विष्णुप्रिया द्वारा सातवाहन को जो उपदेश दिया जाता है उसमें

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 27।

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 325

आत्म-समर्पण की ओर संकेत करते हुये समर्पण युक्त प्रेम में ईश्वर उद्भासित होता है। का परिचय मिलता है।

"जहाँ परिपूर्ण आत्म समर्पण है वहाँ भगवान
आप रूप होकर प्रकट होते हैं। " (1)

प्रेम मूर्त से अमूर्त में भी जीवित रहता है। कारण कि यह भोग की वस्तु नहीं प्रेम समर्पण में होता है भावना में निहित होता है तभी तो लिंग शरीर धारिणी मंजुला का देवरात के प्रति भावुकता पूर्ण वाक्य, इसी प्रकार के प्रेम को घोषित करता है।

"प्यार करो उसे जो प्यार का अधिकारी है।" (2)

अमूर्त प्रेम से परिपूरित देवरात प्रेम का अनुभव करते हुये कहते हैं -

"तुम आती हो दिव्य वेश में, तुम्हारे प्रत्येक
पद संचार से प्राणों का उद्घोषण होता है।
मुरझाये अंकुर खिल उठते हैं, कलियाँ चटकने
लगती है सारे विश्व ब्रह्मांड में जीवनरस उमड़
पड़ता है। मेरी शर्मिष्ठा जीवन्त हो उठती है।
उसके सूखे अधरों पर अनुराग की लाली दौड़ जाती
है, मुरझाये कपोल कदम्ब केसर के समान
उद्भिन्न हो जाते हैं तुम शर्मिष्ठा में मिलकर
एकमेव हो जाती हो, पुनः नवीन पुनः जाग्रत
पुनः प्राणवती।" (3)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 473
(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली ~~कहक~~ पुनर्नवा पृष्ठ 233
(3) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 233

निष्कर्षतः वैयक्तिक मानव-मूल्यों को डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने कथा-साहित्य में उतारकर जन-मानस को प्रेरणा दी है । प्रेम का वास्तविक अर्थ, त्याग और तपस्या का स्वरूप, अहिंसा का व्यापक अर्थ, समाज में शिष्टता और विनम्रता की आवश्यकता जिससे समाज में रागात्मक एकता उत्पन्न हो इन सभी मूल्यों का समागम होकर एक धारा के रूप में प्रवाहित कर अपनी लेखनी को समाज कल्याण की दिशा देकर धन्य बनाया है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव - मूल्य

अध्याय - तीन

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

सामाजिक, धार्मिक, सॉंस्कृतिक मानव-मूल्य

अध्याय - तीन

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सामाजिक धार्मिक एवम् साँस्कृतिक मानव मूल्य

§क§ सामाजिक मानव मूल्य :-

मूल्य कोई जन्म जात प्रवृत्ति या विलक्षणता नहीं है। व्यक्ति के जीवन में इसका विकास समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ होता है। प्रत्येक समाज अपनी-अपनी परिधि में अपने-अपने बच्चों को संस्कारित करते हैं। प्रगतिशील समाज खामियों को नजरंदाज करता हुआ अन्तर्जातीय मूल्यों को अपना लेता है। मूल्य सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अंग है। वस्तुत: व्यक्ति अपने समाज को प्यार करता है, इस कारण अपने समाज में प्रचलित मूल्यों को वह श्रेष्ठ मानता है और धीरे-धीरे अपने जीवन में उतारता चलता है स्पष्ट है कि व्यक्ति मूल्यों का अर्जन समाज के उन लोगों या घटनाओं से करता है जिनको वह अपनी समझता है क्योंकि ऐसा करने से वह अन्य लोगों के समान हो जाता है। सच है, कि मूल्य एक दिन में अर्जित नहीं होते व्यक्ति क्रमश: परिवेश और वातावरण के द्वारा मूल्यों को अर्जित करता चलता है। उसके अर्जन करने के साधन हैं परिवार, पाठशाला और समाज। सर्व प्रथम परिवार में ही बच्चा अपने आधारभूत मूल्यों को विकसित करता है क्योंकि परिवार के सदस्यों के साथ विशेषकर माता पिता के साथ बच्चे का सम्बन्ध आन्तरिक व घनिष्ठ होता है। माता-पिता को बच्चा आदर्श मानता है, इस कारण अपने जीवन से सम्बन्धित उन पहलुओं तथा घटनाओं के बारे में मूल्यों को ग्रहण करता है। यह मनो--वैज्ञानिक सच है कि बच्चा माता-पिता के सद्-असद् भावों का अनुपालन करता है। तदनन्तर पाठशाला में अध्यापकों का भी महत्वपूर्ण योगदान

रहता है । सामाजिक-जीवन से सम्बन्धित विभिन्न वस्तुओं तथा परिस्थितियों के सम्बन्ध में जीवन मूल्यों को अध्यापक विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करता है ।

सामाजिक या समूहगत द्वारा पारित नियमों तथा निधियों का व्यक्ति परिपालन इसलिये करता है क्योंकि इसे सामाजिक संगठन तथा महत्ता की आवश्यकता होती है उसके विकास तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्ति अपने साथियों अर्थात समाज के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर रहना चाहता है । व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये सामाजिक मानदण्ड की चिन्ता करता है । सम्पूर्ण मानव समाज व मानव कल्याण के लिये इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक होता है ।

आचार्य द्विवेदी कृत उपन्यास "पुनर्नवा" में देवरात शील-सौजन्य औदार्य के धनी व्यक्ति हैं, फिर भी वैराग्य करने के बाद भी हलद्वीप के राज परिवार में उनका बड़ा सम्मान था । सामाजिक उत्सव धर्मिता उनके मन में रहती थी । लेखक कहता है-

> "लोगों का विश्वास था कि उन्हें संसार के किसी विषय से आशक्ति नहीं थी । उनका एक मात्र व्यसन था कि दीन-दुखियों की सेवा......देवरात दीन दुखियों की सेवा में सदा तत्पर रहा करते थे, उन्हें किसी से कुछ लेना देना नहीं था । परन्तु उनकी कला मर्मज्ञता का राज भवन में भी सम्मान था । हलद्वीप की जनता का विश्वास था कि देवरात जो हलद्वीप में टिक गये हैं उसका मुख्य कारण राजा का आग्रह और सम्मान है।

अन्त:पुर में भी उनका अबाध्य प्रवेश था
वस्तुत: वे राजा और प्रजा दोनों के ही
सम्मान भाजन थे । " ¦1¦

सामाजिक मान्यता व्यक्ति के सद्गुणों या उसकी मूल्यवत्ता से होती है । देवरात के शील-सौजन्य कला प्रेम और विद्वत्ता ने हलद्वीप की जनता का मन मोह लिया था । देवरात जनता के बीच सम्मान की प्रतिमूर्ति बन गये थे । यह एक सामाजिक प्रतिष्ठा और मूलवत्ता का ही परिणाम था । व्यक्ति का सात्विक भाव व्यक्ति को ऊँचा उठाता है । केवल वह राजसभा में ही नहीं बल्कि मल्लयुद्धों, पंडितों के शास्त्रार्थ तथा अन्य उत्सवों में सम्मिलित हुआ करते थे । देवरात के लिये मंजुला जैसी गणिका का दर्प-दमन करना ही सामाजिक मूल्यवत्ता ही थी । मंजुला समर्पित होकर कहने लगी, यदि वह अनुचित न समझें तो दासी किसी दिन अपने घर पर चरणों की धूल पाने की मनो कामना करती है और देवरात भी पुलकित होकर कह देते हैं कि अवकार आने पर उसकी यह मनोकामना पूर्ण होगी । यह सब सामाजिक प्रतिमान है जिस पर होकर ही देवरात ने नगर की मंजुला को भी अभिभूत कर लिया । उपन्यासकार ने लिखा है-

"इस बीच देवरात राजा से कई बार मिल भी
आये । यह भी सुना गया कि राजा ने उनकी
बात मान ली है और गणिका को क्षमा प्रदान
कर दिया है । अटकलों के बवण्डर उठते रहे,
इतना अवश्य देखा गया कि गणिका। राजकोप
के शमन के बाद धूम-धाम से त्रिपतेश्वर महादेव
की पूजा करवायी और सहस्त्रों नागरिकों को
अपना नृत्य दिखाकर मुग्ध भी किया । नगर

- -

¦1¦ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा पृष्ठ ।7 व ।8

> के लोग इस परिणति से सन्तुष्ट हो गये और काना फूसी धीरे-धीरे दब गयी। लोग धीरे-धीरे इस घटना को भूल गये।" (1)

समाज पर अच्छाई का असर होता है और बुराई बेअसर होती जाती है। देवरात मंजुला की पुत्री मृणाल मंजरी को भी पाल्य पुत्री की भाँति पल्लवन करते रहे। इधर चन्द्रा जैसी नारी पात्र के आचरण पर प्रजा में आक्रोश था। चन्द्रा और मृणाल मंजरी के तुलनात्मक आचरण को प्रजा विस्मृत नहीं कर सकी। हलद्वीप के प्रायः सभी लोग चन्द्रा को चरित्रहीन नारी समझते थे वह किसी और की ब्याहता बहू है। अपने पति को छोड़कर वह आर्यक के पीछे लग गयी। यह धर्म-कर्म के विपरीत आचरण था लेकिन मृणाल मंजरी उसे बड़ी बहिन जैसा सम्मान देती रही। सामाजिक संरचना मूल्यों पर स्थिर है। उपन्यासकार ने इसी विचारणा को अभिव्यक्त किया है -

> "प्रजा में जहाँ मृणाल मंजरी का मान और भी बढ़ गया वहीं चन्द्रा के प्रति रोष और घृणा बढ़ गयी। चन्द्रा के पति श्रीचन्द्र ने अवसर देखकर अमात्य पुरन्दर के दरबार में मुकद्दमा खड़ा कर दिया। उसकी इच्छा केवल यही थी कि चन्द्रा को दण्ड मिले और आर्यक की कुत्सा हो। पुरन्दर बड़े असमंजस्य में पड़े उनके हृदय में भी चन्द्रा के प्रति रोष था पर इस व्यवहार में स्वयं राजा आर्यक के घसीटे जाने की आशंका थी।" (2)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा पृष्ठ-31

(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा पृष्ठ 160

सामाजिक विद्रूपता असह्य होती है । असमंजस के और भी कई कारण थे । पुरन्दर को प्रामाणिक रूप से तो कुछ पता नहीं था पर सारे हल द्वीप में लोग जम गये थे कि स्वयं सम्राट ने आर्यक और चन्द्रा के सम्बन्ध को अनुचित ठहराया है और इस कार्य के लिये अपने प्रिय वयस्क और सेनापति आर्यक की भर्त्सना की है । इस प्रकार सम्राट ने स्वयं निर्णय कर लिया कि यह सम्बन्ध अनुचित है । पुरन्दर ने मृणाल मंजरी से भी इस विषय में परामर्श लिया । मृणाल मंजरी ने लज्जा और संकोच के कारण इस विषय में कुछ नहीं कहा ।

आचार्य द्विवेदी ने क्लीव निर्वीर्य श्रीचन्द्र को पति के रूप में सामाजिक मान्यता प्रदान नहीं की है । तभी तो सुमेर काका के माध्यम से यह बात कहलवायी-

> "आर्य हलद्वीप के सभी स्त्री पुरुषों की तरह
> मैं भी चन्द्रा के आचरण को विरोधी था,
> मुझे भी उससे घृणा थी परन्तु मुझे कुछ नयी
> जानकारी मिली है । मेरा अभियोग यह है
> कि श्रीचन्द्र में पुरुषत्व है ही नहीं, और
> चन्द्रा के साथ उसका विवाह धर्मसम्मत नहीं
> हुआ । यह विवाह चन्द्रा के पिता ने कन्या
> की इच्छा के विरुद्ध कराया है जो मेरी दृष्टि
> में सामाजिक बलात्कार है । " §1§

सामाजिक मूल्य जीवन सापेक्ष उन तर्कों को प्रश्रय देते हैं जिनमें सामाजिक व्यवस्था बनी रहे किन्तु स्त्री पुरुष के सह-सम्बन्धों के परिपेक्ष्य में नर का नरत्व और नारी का नारित्व होना एक अनिवार्य शर्त है । ऐसे

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 162

बहुत सारे ऐतिहासिक व पौराणिक सन्दर्भ मिलते हैं जिनमें स्त्री पुरुष वैवाहिक कर्म को तर्क के आधार पर शिथिलिकृत कर दिया । नाटककार जयशंकर प्रसाद कृत ध्रुव स्वामिनी नाटक भी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। (1)

अनामदास का पोथा का नायक रैक्व लोक जीवन के सामाजिक मूल्यों से परिचित नहीं है किन्तु राजपुत्री जाबाला सामाजिक मूल्यों से भली-भाँति परिचित है इसलिये वह रैक्व से सामाजिक, आदर्शों की बात करती है । समाज में स्त्री पुरुष के सह सम्बन्धों के लिये कुछ आदर्श स्थापित क किये गये हैं और इसी आदर्श के अनुसरण के लिये समाज अपेक्षा करता है कि वह उनका पालन करे।

> "राजकुमारी हँसने लगी, बोली, देखो ऋषिकुमार तुम्हारा यह प्रस्ताव अनुचित है इससे लोक निन्दा होगी । कोई भी युवक किसी कुमारी को पीठ पर ले जाने की बात नहीं करता सोचता भी नहीं। मुझे सिर्फ उस रास्ते तक पहुँचा दो जहाँ से बैलगाड़ी यहाँ आयी है, मेरे पिता के आदमी अवश्य ही उधर खोजने के लिये आये होंगे । मेरे पैरों में यदि कष्ट न होता तो उतनी दूर जा सकती थी । " (2)

जाबाला राजा जानुश्रुति की बुद्धिमती इकलौती कन्या थी, वह जन सामान्य के साथ खेती बारी के काम में हिस्सा बटाती थी, वह पठन-पाठन और शास्त्र चिंतन में आनन्द का अनुभव करती थी उसे लोक मूल्यों का पूरी तरह ज्ञान था । सामाजिक संरचना के परिपेक्ष्य में

---

(1) ध्रुवस्वामिनी- पृष्ठ भूमिका

(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 322,32

जीवन दृष्टि से भी उसका झुकाव था और ऋषिकुमार लोक ज्ञान शून्य हो वह कन्या शब्द से तो परिचित थे परन्तु कन्या क्या होती है उन्हें विदित नहीं था । स्त्री पुरुष के व्याकरणिक भेद को वह जानते थे इसलिये उन्होंने शुभे शब्द का प्रयोग करके जावाला को सम्बोधित किया समाज में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में अलग अलग रीति नीति है । जावाला ने ऋषिकुमार को बोध कराया कि तुम पुलिंग हो मैं स्त्रीलिंग हूँ । रैक्व जावाला को देवलोक का मनुष्य मानकर भौंचक्का हो जाता है, उसने इस प्रकार की मानव मूर्ति इससे पहले कभी देखी ही न थी । वह अभिभूत होकर हतप्रभ की भाँति उसे देखता रह जाता है । सामाजिक अलगाव के कारण कहने लगता है कि मैं नहीं जानता, इतना अवश्य जानता हूँ कि स्त्रीलिंग शब्द भाषा में व्यवहृत किये जाते हैं । पद का मुझे ज्ञान है पदार्थ का मुझे ठीक ज्ञान नहीं है । मैं जानता हूँ कि कन्या शब्द स्त्रीलिंग है, इसलिये मैं आपको कन्या शब्द से सम्बोधित कर सकता हूँ मुझे यह भी मालूम है कि आर्या भवति शुभे इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग के सम्बन्ध में हैं । " §1§

सामाजिक प्रतिमान सामाजिक व्यवस्था के लिये बहुत आवश्यक होते हैं परन्तु सहज प्रकृति पुरुष उनके अविज्ञान से अपरिचित रहने के कारण सहज प्रवृत्ति का ही परिचायक होता है । रैक्व पद और पदार्थ के भेद को व्याकरणिक दृष्टि से समझते हुये भी जागतिक दृष्टि से समझ नहीं पाते समाज में ने कुछ रीतियाँ नीतियाँ ऐसी गढ़ दी हैं जिसमें सहजता लुप्त हो गयी है और विकार लिप्त हो गये हैं। तभी तो जावाला सामाजिक मूल्यों को जानते हुये भी कहती है कि ऋषि कुमार तुम स्वर्गीय ज्योति हो मेरी हँसी तो अधम जन के कलुषित चित्त का विनोद है । और यह कुत्सित चित्त तव सामने आचरित होने

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 322

लगता है जब राजकुमारी की तलाश में राजा के लोग उधे आते हुये दिखायी पड़ते हैं -

> "राजकुमारी हँसती रही, ऋषिकुमार मुग्धभाव से उसकी ओर देखते रहे इसी समय कुछ लोग उधर आते दिखायी पड़े। राजकुमारी ने ऋषि-कुमार से कहा जान पड़ता है मेरे आदमी आ रहे हैं तुम कहीं दूर जाकर छिप जाओ, ये लोग जानने न पायें कि हम लोग यहाँ एकान्त में बात कर रहे थे। ऋषिकुमार हैरान। क्यों क्या इसमें भी दोष है राजकुमारी ने बल देकर कहा हाँ है।" §1§

जाबाला ने रैक्व को सामाजिक दृष्टि से दूर तो कर दिया परन्तु वह बेचैनी महसूस करती रही। वह अपने को ही धिक्कारती रही कि वह भागा कहाँ मैंने ही तो भगा दिया। जाबाला को ऋषिकुमार की निश्छलता और लोक व्यवहार ज्ञान शून्य का बार-बार ध्यान हो आता है। ऋषिकुमार तो नितान्त भोला है पर वह तो लोक व्यवहार जानती है। लोक व्यवहार की जानकारी तो अच्छी चीज है परन्तु सहज मानवीय प्रवृत्ति से वियुक्त हो जाना अधिक कष्ट कारक है। सामाजिक मूल्यवत्ता का यह व्यवस्था सम्बन्धी अनूठा उदाहरण है परन्तु व्यक्ति की वैयक्तिकता का इसमें पूरी तरह से लोप है। ऋषिकुमार और जाबाला की मानसिकता का अध्ययन सामाजिक संरचना की दृष्टिगत अवधारणा को लेकर किया जा सकता है। लोक आचरण लोक व्यवस्था के लिये बहुत अनिवार्य है परन्तु उसकी अतिशयता व्यक्ति को छलती है, खलती है तथा लोक ज्ञान लुप्त होने के लिये विवश करती है।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 324

बाण भट्ट की आत्मकथा का नायक यद्यपि समाज के लोगों के द्वारा बण्ड, लंपट, आवारा जैसे शब्दों से अभिहित किया गया था किन्तु वह सामाजिक संरचना को भली भाँति जानता था तथा उसे वह जीवन में भी उतारने का प्रयास करता था । वह मान्यताओं मूल्यों को जानता है परन्तु करता वही है जो कुछ उसके अन्तर से उसे प्रेरित करता है। वह अनेक विध कर्मकाण्ड को भी आचरित करता है-

"एकाएक मेरे मन में आया कि क्यों न कुमार कृष्ण वर्धन के पुत्र के जन्म के अवसर पर बधाई दे आऊँ, आशीर्वाद देना तो ब्राह्मण का धर्म है, कर्तव्य है, पेशा है । यद्यपि मैं योजना बनाकर कोई कार्य नहीं कर पाता और यही कारण है कि मैं कोई भी पुस्तक समाप्त नहीं कर सका, पर निश्चय करने में बिल्कुल देर नहीं करता। तो ज्यों ही यह विचार मेरे मन में आया मैं कुमार के घर को प्रस्थान करने का आयोजन करने लगा।" §1§

बाण भट्ट जहाँ एक ओर सामाजिक और जातीय आदर्शों का अनुसरण करता है वहाँ वह ब्राह्मणत्व भाव को साज-सँवार कर इजहार करना चाहता है वहाँ दूसरी ओर निपुणिका का संक्षिप्त परिचय देते हुये सामाजिक रीतियों का उनकी खामियों का और उनकी व्यवस्थाओं का भी चित्रण करता है तथा इसके बाद भी बाण भट्ट निपुणिका को धीरे-धीरे अपने संरक्षण में लेकर रंग भूमि पर उतारता है । निपुणिका के जीवन इतिहास वृत्त का संक्षिप्त परिचय तत्कालीन सामाजिक मूल्यों की अवधारणा को उद्भासित करता है ।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-26

निपुणिका उन जातियों में से एक की सन्तान है जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थी, परन्तु जिनके पूर्व पुरुषों को सौभाग्य वश गुप्त सम्राटों की नौकरी मिल गयी थी। नौकरी मिलने से उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ ऊपर उठ गयी। वे आजकल अपने को पवित्र वैश्य वंश में गिनने लगी हैं और ब्राह्मण स्त्रियों में प्रचलित चलन का अनुसरण करने लगी हैं। उनमें विधवा विवाह की प्रथा हाल ही में बंद हुयी है। "निपुणिका का विवाह किसी कान्दविक वैश्य के साथ हुआ जो भड़भूजे से उठकर सेठ बन गया था। विवाह के बाद एक वर्ष भी नहीं बीतने पाया था कि निपुणिका विधवा हो गयी। मुझे यह नहीं मालूम कि विधवा होने के बाद निपुणिका को क्या दुःख या सुख झेलने पड़े थे, परन्तु वह घर से भाग निकली थी। मुझसे अपने पूर्व जीवन के विषय में उसने इससे अधिक कुछ भी नहीं बताया, परन्तु उसके बाद की कहानी मेरी बहुत कुछ जानी हुयी है। निपुणिका जब पहले पहल मेरे पास आयी थी, उस समय मैं उज्जयनी में था। वहाँ मैं एक म नाटक मण्डली का सूत्रधार था। निपुणिका ने मण्डली में भर्ती होने की इच्छा प्रकट की और मैं राजी हो गया। निपुणिका बहुत अधिक सुन्दर नहीं थी। उसका रंग अलक्त शेफालिका के कुसुमनाल के रंग से मिलता था। ॥1॥ तत्कालीन समाज में साधारणतः जातिगत परिवर्तन में बहुत बड़ी अड़चन नहीं थी बाणभट्ट निपुणिका के भीतर छिपी दैवी शक्ति को पहचानता है सामाजिक दृष्टि से भले ही निपुणिका कुल भ्रष्टा मानी जाती रही हो परन्तु बाण ने उसे देव मन्दिर के समान ही पवित्र माना था, उसने जानबूझकर निपुणिका को अपनी रंग मण्डली में ले लिया था। इसी सहभूतिमय हृदय ने बाण भट्ट को सामाजिक दृष्टि से आवारा बना दिया था वह भली-भाँति जानता था कि निपुणिका का चरित्र सदाचारियों की दृष्टि में अत्यन्त निकृष्ट है,

---

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 28

परन्तु बाण भट्ट उस अभागिन को अपने साथ लेकर रंग मंचीय दृष्टि से धन्य समझने लगा । निपुणिका बाण को स्मरण दिलाती है कि वह नारी देह को देव मंदिर मानता है इसलिये एक ऐसा देव मन्दिर जो छोटे राजकुल में बन्धक बनाया हुआ है, उसका उद्वार करने के लिये प्रवृत्त करती है-

"निपुणिका ने कहा अब तक तुमने नारी में जो देव मंदिर का आभास पाया है वह तुम्हारे भोले मन की कल्पना थी। आज मैं तुम्हें सचमुच का देव मंदिर दिखाऊँगी, परन्तु उसके लिये तुम्हें छोटे राजकुल में मेरी सखी बनकर प्रवेश करना होगा और कीचड़ में धँसे हुये उस मंदिर का उद्वार करना होगा x x x तुम असुर गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो मदिरा के पंक में डूबी कामधेनु को उबारना चाहते हो । " §1§

बाण भट्ट भट्टिनी के उद्धार के लिये निरत होना चाहता है और आत्मोद्धार कर्म से विरत होना चाहता है । युवती के दुख मोचन यज्ञ में वह अपने को होम कर देना चाहता है ।

चारु चन्द्र का राजा सातवाहन सामाजिक जीवन मूल्यों का सिद्ध सामन्ती प्रतीक है रानी चन्द्रलेखा राजा सातवाहन के प्रति आकृष्ट होती है और वह राजा को तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति इंगित करती है -

"रानी हँसने लगी बोली, तुमने तो मेरी जाति
पाँति के बारे में सन्देह नहीं किया महाराज,
मैंने कहा तुम मुझे अपनी रानी बना लो और
तुमने बना लिया । नगर में आयी तो न पूछ

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 35

> पुरोहित ने ही कुछ कहा और न मैत्री ने ही आपत्ति की । मैं शान से अन्तःपुर में चली आयी और तुम नौकर की तरह पीछे-पीछे हो लिये, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है "§1§

तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था में ऊँच नीच की भावना बहुत कम और राजाओं के लिये तो बिल्कुल नहीं हुआ करती थी । यद्यपि गरीब और निर्बल को समाज के लोग सताया करते थे । चन्द्रलेखा माँ के द्वारा बतायी हुयी कहानी कहकर तत्कालीन समाज व्यवस्था पर प्रकाश डालती है कि माँ ने मेरे हठ पर पूरी कहानी सुना दी । बेटी मेरा विश्वास है कि तू शीघ्र ही राजरानी होगी । विद्याधर ज्योतिषी की बात असत्य नहीं हो सकती । तेरे जन्म से पहले मैं बाँझ समझी जाती थी, उस समय से तेरे कक्का दो वर्ष के छोटे बालक थे । मेरे सास-ससुर उन्हें छोड़कर चल बसे । हम दोनों को उन्हें पालना पड़ा । तेरे पिताजी को इस बात का पूर्ण सन्तोष था कि उनका अपना पुत्र न सही छोटा भाई पुत्र की साध पुजा रहा है । मुझे भी सन्तोष था परन्तु गाँव की ये मुखरा झगड़ालू स्त्रियाँ कभी-कभी व्यंग्य कस दिया करती थीं । उससे मुझे बड़ा कष्ट होता था । चार पाँच वर्ष तक मैंने सहा पर अन्त में सहा नहीं गया । बाँझ होना स्त्री का सबसे बड़ा अभिशाप है ।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में पालित पुत्र पुत्री भी ठहराये जाते थे । राजा सातवाहन सीदी मौला की तलाश में इधर-उधर भटकता है । सीदी मौला से उसे अनेक प्रकार की बौद्धों, मंगोलों, ईसाइयों की जानकारी मिलती है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का सम्मान था । एक स्थान पर उपन्यासकार ने बताया है

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ- 285

कि उस समय शादी चाहे कितनी करो पर, परस्त्री की ओर नहीं ताकना नियम था । कुदृष्टि डालते हुये देखा गया तो तुरन्त उसकी आँखे फोड़ दी गयीं और जीवित दफना दिया गया । सीदी मौला ने स्पष्ट किया कि बौद्ध भी होते हैं और ईसाई भी होते हैं । मंगोल हिंसा भाव रखते हैं इसलिये ऐसे पवित्र अवसरों पर वे हिंसावृत्ति का परिचय देते हैं । मंगोल पढ़े लिखे नहीं होते इसलिये वे वख्शी का काम कुछ पुरोहितों से लेते हैं । इस तथ्य से स्पष्ट है कि तत्कालीन वर्ग व्यवस्था सिद्ध सामन्ती रही थी और उसमें भी अनाचार और अत्याचार का बोल-बाला था राजशाही में प्रजा का सब कुछ राजा ही होता था और राजा की कृपा दृष्टि पर ही सब कुछ निर्भर होता था -

> "रानी ने जब कहा था कि मुझे सर्वत्र स्वाधीनता देनी होगी तो उसी समय मैंने क्यों नहीं समझा कि स्वाधीनता और अनाधीनता में अन्तर है । रानी साधना के लिये प्रस्थान करते समय स्वाधीन नहीं थी x x x x विद्याधर भट्ट के सामने मैं क्या मुँह दिखाऊँगा वे एक बार फिर राजाओं की दुर्बलता से समूचे देश के महानाश की चिन्ता से क्या व्याकुल नहीं हो जायेंगे । " ॥1॥

रानी निर्विकार भाव से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहती है किन्तु राजनीतिक कुचक्रों के कारण वह, वह न कर सकी जो उसके मन में था फिर भी उसने देश की साधारण प्रजा में सामाजिक विकास का संचरण किया । उसने मैना बोधा जैसे धीर-वीर साहसियों का उत्साह वर्धन किया तथा निरीह सैकड़ों ग्रामीणों को सामाजिक

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारुचन्द्रलेख - पृष्ठ 384

अस्तित्व प्रदान किया । विद्याधर मैत्री रानी को सम्बोधित करते हुये यही कहता है कि देवि उठो और इस हत श्री देश को प्रेरणा दो तुम व्यर्थ मिथ्याभिमान का शरीरधारी प्रतिवाद हो तुम राजाओं की आदर्श प्रेम निष्ठा का मधुर फल हो और इतिहास विधाता का जो विधान है उसकी ओर इंगित करने वाली अप्रतिम तर्जनी हो । चन्द्रलेखा देश में मिथ्या खण्ड अभियानों को चूर्ण करने के लिये तत्पर हो जाती है वह समूचे समाज के चित्त में इतिहास की मंगलमयी प्रेरणा बन जाती है । मैना, बोधा, विद्याधर, सीदी मौला, भाकी विष्णु प्रिया और राजा सातवाहन आदि सब सामन्त व्यवस्था के पक्षधर है किन्तु रानी चन्द्रलेखा व्यवस्था के परिमार्जन के लिये उत्सुक हैं मूल्यों का परिमार्जन अवश्य होना चाहिये, यदि ऐसा नहीं होता है तो मूल्य रीति बनते बनते रूढ़ि हो जाते हैं ।

(ख) धार्मिक मानव मूल्य :-

मानव आचरण, धर्म नैतिकता के बिन्दु पर केन्द्रित होता है । आचरण में सत्य और शुभ को उतारना नैतिक बनता है तथा नैतिक होने के भाव को नैतिकता कहा जाता है । मूल्य एक दृष्टि है, समझ है जिसे मनुष्य प्राप्त करना चाहता है । वह दृष्टि विभिन्न धर्मावलम्बियों के प्रश्रय में अनुशीलित होती है । जीवन मूल्य सर्व धर्म समभाव का पाठ पढ़ाता है । चाहे वह हिन्दू धर्म हो या सिख, ईसाई अथवा मुस्लिम धर्म हो । सभी के सब लोक हित को चरम मानते हैं । मानव मूल्य साध्य और साधन दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है । मानव जिसे प्राप्त करना चाहता है वह उसका साध्य होता है जिसके द्वारा प्राप्त करना चाहता है वह उसका साधन रूप धर्म होता है । पुरुषार्थ में धर्म अर्थ काम को साधन मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है और ज्ञानकर्म तथा भक्ति साध्य तक ले जाने वाला सुविचारित पक्ष है ।

देश काल परिस्थितियों में मूल्यों का परिमार्जन होता आया है । मानव की मूल प्रवृत्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है- जैविक, सामाजिक और आध्यात्मिक । जैविक के अन्तर्गत क्षुधा, काम, प्रवृत्ति, संग्रह प्रवृत्ति, शारीरिक श्रम और खेल जैसी प्रवृत्तियाँ आती हैं । जिसमें क्षुधा और काम प्रवृत्ति की तृप्ति शारीरिक मूल्यों से जुड़ी हुई है । सामाजिक के अन्तर्गत सामञ्जस्यता की प्रवृत्ति, सहानुभूति की प्रवृत्ति और लोक हित की प्रवृत्ति प्रमुख है । आध्यात्मिक के अन्तर्गत व्यक्ति के धर्माचरण का विशेष महत्व है । श्रद्धाभाव धार्मिक मूल्यों का अवतरण करते हैं और धर्म मूल्य ही आगे चलकर दार्शनिक मूल्य माने जाते हैं ।

मानव मूल्य के सन्दर्भ में धर्म और नैतिकता अति आवश्यक है । धर्म के अभाव में जीवन का सुव्यवस्थित चित्रण नहीं हो सकता युग पर युग बीतते जा रहे हैं किन्तु व्यवस्था के लिये धर्म की प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती । तप, व स्वाध्याय, परहित, संस्कारशील, विचारशील होना ही सच्ची मानवीय प्रेम की कसौटी है । आज परिवर्तन -शील समाज में मूल्यों में भी परिशोधन होता जा रहा है । धार्मिक सदाशयता जीवन मूल्यों की आधार शिला है । वर्तमान युग में यह बोध जागृत हुआ है कि दया किसी व्यक्ति पर तब होती है जब हम बड़े हों या उसकी तुलना में हमारी स्थिति उच्च हो । प्रेम अथवा सहानुभूति समानता का लक्षण माना जाता है । अत: दया करने के लिये दयालु और क्षमापात्र दो ऐसे वर्ग प्रकाश में आये हैं जिससे समकालीन समानतावादी युगबोध भी आहत हो जायेगा । तो भी नाम कोई भी दे दिया जाय प्रतीति के प्रति सम्वेदना की प्रतीकजो कि शाश्वत है नष्ट नहीं हो सकती । इसी प्रकार हम सेवा को लें इसका स्वरूप अनादि और अनन्त है । सेवा के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती शिशु माँ

की पूजा, सुश्रूषा से बड़ा होता है । घर के वयोवृद्ध सदस्यों की सेवा की आवश्यकता है । सच बात तो यह है कि सामाजिक व्यवस्था में सेवा एक प्रमुख कारक तत्व है । किसान अन्न उपजाकर समाज की सेवा करता है जबकि सैनिक विदेशी आक्रमणों से देशवासियों को सुरक्षित रखकर उनकी सेवा करता है । इसी प्रकार अध्यापक ज्ञान के प्रचार-प्रसार से सेवाकार्य करता है । सब के अपने-अपने धर्म कर्म हैं । किन्तु सेवक और सेवा के वर्गीकरण का आधार भूत सामन्तवादी मानसिकता से जुड़ा सेवा शब्द वर्तमान युग का मूल्य नहीं हो सकता । सामन्तवादी दृष्टिकोण सेवक के लिये सेवा एक बाध्यता है जो शोषण के भाव को ध्वनित करती है । इस युग में सेवा कर्तव्य तो हो सकती है, स्वान्तः सुखाय तो हो सकती है, किन्तु वह बाध्यता नहीं हो सकती । इस प्रकार हम देखते हैं कि शाश्वत कहे जाने वाले मूल्य भी परिवर्तनशील समाज के अनुसार ही परिशोधित होते रहते हैं ।

भारत में धार्मिक साधना बल पर मोक्ष सदा से सर्वोच्च मूल्य रहा है। प्राचीन एवम् मध्य युगीन विचारकों की दृष्टि से मुक्ति परलोक केन्द्रित थी, वह जहाँ तक परलोक केन्द्रित है वहाँ तक मध्य युग है और जहाँ से मुक्ति सीधे मानव मुक्ति या स्वाधीनता से जुड़ी होती है वहीं से आधुनिक समाज का जन्म होता है । धर्मावलम्बियों की परिशोधित दृष्टि से मुक्ति निश्चय ही मानव मुक्ति से सम्बन्धित है । परलोक केन्द्रित मुक्ति के प्रति अमूर्त कल्पनाओं के प्रासाद धराशायी हो गये हैं । वहीं इस लोक में सभी स्तरों पर आत्म निर्भरता, स्वायत्ता, तथा जीवन के परिपूर्ण विकास के लिये सर्वोत्तम माध्यमों की उपलब्धि वर्तमान युग के मनीषियों द्वारा मुक्ति की परिभाषा है । धर्म परायण समाज अपने अपने पंथों पर चलकर जीवन जगत और मोक्ष के विभिन्न

आयामों को उद्भाषित करता है । व्यक्ति निज धर्म और निज देश के गौरव को आत्मसात कर लेना चाहता है । यही उसकी धार्मिक मूल्यवत्ता होती है और उसका सर्वश्रेष्ठ जीवन मूल्य ।

बाण भट्ट की आत्मकथा के प्रमुख पात्र बाण भट्ट, भट्टिनी और निपुणिका मानवीय मूल्यों के सुविचारित पक्षधर हैं । महामाया अवधूत त्रिपुर भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी आदि ऐसी धर्म कर्म मूर्तिमान मूर्तियाँ हैं जो आर्यावर्त की धरती पर विकराल भीषण ताण्डव होने पर चिन्तित हैं । परन्तु नियति का चक्र इन धर्मावलम्बियों के निवेदन पर भी स्तब्ध नहीं होता है ।

> "हे भगवान क्या यह रक्त स्नान रोका नहीं जा सकता, क्या राजाओं और सामन्तों की हठधर्मी चक्की में इसका रहा सहा उपाय भी पिस जायेगा । अवधूत अघोर भैरव ने महामाया को डाँटते हुये कहा था, तुम त्रिपुर भैरवी की लीला नहीं रोक सकती तुम महाकाल का कुण्ठ नृत्य नहीं थमा सकती, तुम शूलपाणि की मुण्ड माल की रचना में बाधा नहीं दे सकती क्योंकि तुमने अपने को सम्पूर्ण रूप में त्रिपुर भैरवी के साथ एक नहीं कर दिया । जिस दिन स्वयम् उनसे अभिन्न हो जाओगी उसी दिन इस लीला को चाहे जिधर मोड़ सकती हो । " §1§

कर्मकाण्ड प्रधान ने मानवीय सुख-दुख को प्रमाणित किया है वस्तुतः

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी की ग्रन्थावली- बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 202

धार्मिक अनुष्ठान आध्यात्म दर्शन की पहली सीढ़ी तो है पर उसमें मानवीय दुख को अपना दुख समझ लेने का भाव प्रबल नहीं है । तभी बाणभट्ट अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुये क्षमा याचना चाहता है कि स्वर्गीय उनके पिता उन्हें माफ करेंगे कि वह निपुणिका जैसे लोक निन्दित पात्र को भी अपने सानिध्य में लेना चाहता है । वह अवसर मिलने पर कर्मकाण्ड पूरा करेगा । उसके पिता कर्मकाण्डी और वेदाभ्यासी संस्कारशील व्यक्ति थे । इसलिये वह पिता के वंश को कलंकित नहीं करना चाहता है । लेकिन दूसरी ओर निपुणिका से मिलकर परम्परितकर्मकाण्डों को करना भी चाहता है देखे-

> "मेरे मन में आज विचित्र उमंग थी । आज ही मेरा मानो सारा कलुष धुल गया था और मेरा मन और शरीर लघुभार हो गये थे । मैं अब निश्चय कर चुका था कि अपनी लम्पटता की बदनामी को हमेशा के लिये छोड़ दूँगा x x x फिर मेरा गृह यज्ञ भूमि की कालिमा से दिशाओं को धवल बना देगा । फिर मेरे द्वार पर वेद मन्त्रों का उच्चारण करती हुयी सुख सारिकायें बहुगनों को पथ-पथ पर टोका करेंगी । मैं अब वात्सायन वंश का कलंक कदापि न रहूँगा ।"§1§

इधर निपुणिका अपने धर्म कर्म में निपुण थी वह सांसारिक रीति को भली भाँति जानती थी वह भट्ट से कहती है कि तुम मेरे गुरू हो, तुमने मुझे स्त्री धर्म सिखाया है । वह भट्ट का आश्रम नहीं छोड़ना चाहती किन्तु राजकुल की आश्रिता बनकर जीवन यापन करने को विवश है । जहाँ भट्ट उसे स्त्री शरीर के रूप में देव मन्दिर मानते हैं

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 203

दुनियाँ के लोग स्त्री शरीर को मानव मन्दिर भी नहीं मानते । परन्तु निपुणिका की साधना उसका त्याग उसकी कला मर्मज्ञता उसका अपूर्व आह्लाद और उसकी सहिष्णुता विलक्षणीय थी । धार्मिक प्रवृत्ति में उसका मनोयोग पर दृष्टिकोण है । उसे अनुष्ठान करते हुये देखकर ऐसा प्रतीत होता है -

"वह कुशासन पर बैठ गयी और महा बाराह
के सामने स्थैर्य गले से एक स्त्रोत पाठ करने लगी ।
उसकी आँखों से निरन्तर आँसू झड़ते रहे । वक्षस्थल
पर का वासन्ती उत्तरीय इस अश्रुधारा से भीग
गया । मैं वह दृश्य इकटक देखता रहा । निपुणिका
धन्य है, महाबाराह धन्य है, तुलसी धन्य है और
अभागा बाणभट्ट इन तीनों को देख रहा हूँ सो
धन्य ही हूँ । मुझे एक बार अपने गर्व की तुच्छता
पर पश्चाताप हुआ, किसे आश्रय देने की बात मैं
कह रहा था निपुणिका को जो आश्रय मिला है
उसकी तुलना में मेरा आश्रय कितना तुच्छ, कितना
नगण्य और कितना अकिंचन है । मेरे पुरूषत्व का
गर्व, कौलीन्य का गर्व और पाँडित्य का गर्व ,
क्षण भर में भरभरा के गिर गये । निपुणिका को
पहचानने में मैंने कितनी भूल की थी । वह
भक्ति गद् गद् स्वर में स्त्रोत पाठ कर रही थी
और मैं निर्निमेष नयनों से उसे देख रहा था -
उस समय उसकी अंग प्रभा अलौकिक दिख रही थी,
कोटरगत आँखें मानों उद्वेल वारिधारा से परिपूर्ण
होकर प्रफुल्ल पुण्डरीक के समान विकसित हो गयीं
थी, कुन्तल जाल रह-रह कर इस प्रकार विलुपित
हो उठते थे । "§1§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-33

क्रमागत से मानवी मूल्यों परिशोधित परिमार्जित स्वरूप व्यक्ति आत्मसात करता आया है । यदि पुराने मूल्यों को माजा न जाये तो उसमें जंग लगने का खतरा होता है । आचार्य द्विवेदी के कथा पात्र मूल्यों की अभिनव संरचना करते हैं । लेकिन उनकी धरती पुरानी ही होती है । व्यक्ति धर्म अनुष्ठान में प्रवृत्त होकर आत्मकल्याण का प्रतिरूप विधायक बनना चाहता है परन्तु उससे बड़ा कारण पारमार्थिक सिद्धि है जिसे वह विस्मृत कर चुका है । देवता या आराध्य छोटा-बड़ा नहीं होता वह तो भक्त की आत्मशक्ति का परिचायक है लेकिन आत्म शक्ति बहिर्मुखी होना चाहिये जो जन कल्याण में निरत रहे । प्रतीत होता है कि धार्मिक अनुष्ठान आज न तो दार्शनिक और आध्यात्मिक ऊँचाई छू पा रहे हैं और न ही व्यक्ति के लिये आत्म सुखकारी ही बन पा रहे हैं । आचार्य द्विवेदी के पुनर्नवा का देवरात ऋषि तुल्य है, संस्कारशील है वेदशास्त्र निष्ठ है किन्तु उसे पूजा करते हुये किसी ने नहीं देखा है । वह दीन दुखियों के घर जाकर सेवा भाव में लगा रहता है । अध्ययन अध्यापन करता है। कला मर्मज्ञता का परिचय देता है । ज्ञाती का राजा होते हुए भी निरभिमानता का अवतरण है । यही जीवन का तर्क संगत मूल्य है ।

पुनर्नवा का देवरात, चन्द्रमौलि, श्यामरूप, आर्यक, चन्द्रा, मृणाल मंजरी और न जाने कितने ही ऐसे पात्र हैं जो धर्म कर्म में निरत रहकर जनमानस में अपनी छवि बनाये हुये हैं ।

> 'सात्विक भावों के अभिनय में तो उसने कमाल कर दिया उसी दिन उसे पहली बार लगा कि उसके समस्त बाह्य आवरणों के नीचे पुत्री भाव का अविराम स्रोत बह रहा है । वही उसकी सार्थकता है । मुझे उसने देखा अपनी राम कहानी

सुनायी, मैं समझ नहीं पायी कि उसकी क्या सहायता करूँ। कैसे करूँ फिर चारुदत्त से मिली, क्षमा से मिली, सोचती रही कि इस समस्या का क्या कोई समाधान है, क्या समाधान हो सकता था इसका स्त्री को भगवान ने जो काया दी है वह मोह और आसक्तियों का अड्डा है, ईर्ष्या अभिमान का घर है। "(1)

व्यक्ति के मनो विकार उसके निजी कर्मकाण्ड में बाधक होते हैं और प्रणय अवस्था का नकारात्मक रूप ज्यादा ही खतरनाक होता है। मनुष्य की बनाई समाज व्यवस्था विधि विधान के अनुरूप नहीं होती किन्तु मनुष्य ने अपने आपको अहंकारवादी मानकर मानव धर्म के भीतर छोटी-छोटी सीमाओं को रेखांकित किया है।

"ब्राह्मण देवता थोड़े म्लान हुये उन्होंने उदासी भरे स्वर में कहा, मथुरा हो तो अब धर्म कर्म उठ ही गया है, वह अब कुछ क्यों न हो जाये कोई पूछने वाला नहीं है सुना है तीर भुक्ति में एक बड़ा अधिकारी होता है जिसे विनय स्थिति स्थापक कहते हैं, उसी ने वहाँ के राजकुमारों को दण्ड दिया है। कहा जाता है कि वे चम्पारण्य में निर्वासित किये गये हैं। इधर मथुरा में यह बात है कि म्लेच्छ राजा स्वयम् प्रजा का क्षीर नष्ट करने पर तुला है। भगवान वासुदेव

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा - पृष्ठ 194

की लीला भूमि न जाने कब तक इस प्रकार के
अनाचार की अखाड़ा बनी रहेगी । ऐसा लगता
है कि गोपाल आर्यक के रूप में वे फिर इस पवित्र
लीला भूमि की सुधि लेने आ रहे हैं परन्तु धर्म
स्थापना के कार्य में कुछ विघ्न पड़ने के समाचार
भी सुनायी दे रहे हैं । " (1)

मथुरा के उपर्युक्त राजनीतिक कुचक्र ने अनेक प्रकार की अफवाहें धर्म कर्म को लेकर फैला रखी है । हिन्दू धर्म और सनातन मानवीय धर्म की मूल विशेषता है कि स्त्री पुरुष के प्रति परिवार के प्रति, समाज के प्रति कुछ सनातन मूल्य हैं जिनको धर्म मानकर पालन किया जाता है । गोपाल आर्यक के बारे में जितनी किंवदंतियाँ मथुरा में फैलायी गयीं वे सब लोकाचार विरोधी थीं । जो युवती लिच्छवि गणराज्य में बन्दी बनी थी वह उसकी ब्याहता बहू नहीं है, बल्कि किसी और की पत्नी है, यह बहुत प्रसन्न हुआ । सुनने में आया है कि गोपाल आर्यक की ब्याहता बहू कोई मृणाल मंजरी है, जिसे उसने हलद्वीप में छोड़ दिया था और स्वयम् किसी पर स्त्री को लेकर भाग गया था । लोग कहते हैं कि गोपाल आर्यक की वास्तविक पत्नी मृणाल मंजरी बहुत ही सती साध्वी और पतिव्रता स्त्री है । ऐसी बहू का अकारण परित्याग करना निःसन्देह महापाप है और गोपाल आर्यक ने यही पाप किया है । सङ्कर्षण के रोष से बचने के लिये गोपाल आर्यक फिर कहीं लोप हो गया है । मथुरा में यह समाचार आश्वस्तकारी सिद्ध हुआ है । (2)

श्यामरूप किंवदन्तियों को सुनकर जहाँ आर्यक की वीरता की बात से उल्लसित होता है वहाँ उसे दूसरी ओर धर्म विरुद्ध आचरण

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ 75
(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा- पृष्ठ 76

के कारण मर्मान्तक पीड़ा पहुँचती है । वह धर्म कर्म का निष्ठावान पुजारी है । गुरु देवरात से उसने सदाचार की शिक्षा ग्रहण की है इसीलिये उसके मन में भावनात्मक सदाशयता का प्रदरूप अवस्थित रहता है । वह सर्व धर्म सम्भाव की आधार शिला पर मूल्यों को खरा उतारना चाहता है ।

चारुचन्द्र लेख का राजा सातवाहन आध्यात्मिक, दार्शनिक और धार्मिक व्यक्ति है । इस उपन्यास के पहले सर्ग में उपन्यासकार ने सर्व धर्म सम्भाव का एक अनूठा उदाहरण सीदी मौला सन्त में देखा है ।

> "मुझे पता चला कि उज्जयिनी से कोई पचास मील दक्षिण की ओर एक स्थान है जिसमें कोई एक सिद्ध पुरुष आये हैं जो हिन्दू मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते हैं और मौज में आकर नमाज भी पढ़ लेते हैं और पूजा भी कर लेते हैं । बड़े ही फक्कड़ सिद्ध हैं और जरूरत पड़ने पर आसमान में उड़ जाया करते हैं और धरती में भी प्रवेश कर जाते हैं यदि किसी कारणवश नाराज हुये तो जो सामने आया उसी पर गाली की बौछार शुरू कर देते हैं । नमाज पढ़ने वालों को भी फटकार देते हैं और सन्ध्या पूजा करने वालों को धिक्कार देते हैं पूरे अवधूत हैं । धर्म सम्बन्धी किसी भी नियम के पाबन्द नहीं हैं, न किसी वेश भूषा के प्रति ही आस्था या अनास्था रखते हैं । " §1§

धर्म का यह रूप वरेण्य है व्यक्ति को भी, जाति को भी और देश को भी । भारत वर्ष की धर्म व्यवस्था में बहुत छिद्र हो गये हैं तापस

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्रलेख- पृष्ठ 267 व 268

से उपन्यासकार कहलवाता है कि अपने ही रक्त, माँस और चर्म से छिपाना ढक सको ढको । अपनी ही अंतड़ियों के तागे से जितना सीं सको सिओ । जाओ बज्र की तरह दृढ़ बनकर इतिहास विधाता के क्रूर प्रहारों को सहो। वास्तव में धर्म मानव मूल्य की आत्मदानवादी कसौटी है जहाँ धार्मिक सहस्त्र धाराओं में क्षरित होकर गल जाना चाहता है । सीदी मौला कुछ ऐसे ही सन्त हैं जो जन-जन के बीच पैठ करके उन्हें विधाता का कर्मफल सिद्धान्त समझाते हैं । रानी चन्द्रलेखा और राजा सातवाहन ऐसे ही सन्तों की तलाश में हैं लोग ऐसी कठिन धर्म तपस्या करते हैं जो आत्म विस्मृति का गौरव बोध दिलाती है । चन्द्रलेखा धार्मिक अनुष्ठानों में प्रत्यक्ष दर्शी बोध दिलाती है । उपन्यासकार ने लिखा है -

> "उस दिन महाशिवरात्रि थी, दर्शनार्थ लाखों नर-नारी उपस्थित थे, हम लोग भी एक कोने में बैठ होकर ज्योतिर्लिंग को निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे । अर्धरात्रि की प्रदक्षिणा करके साथ ही प्रणाम किया और गंगा तट की ओर चले गये । गंगातट के सिवाय और कोई स्थान हमारा जाना नहीं था काशी के मनोहर गंगातट को देखकर मन इतना प्रसन्न हुआ कि मानों उसे सब कुछ प्राप्त हो गया हो । "﴾1﴿

आज भी प्रजाजन महाशिव रात्रि के दिन धार्मिक अनुष्ठान करते हैं शिव के मन्दिर में अर्द्धरात्रि तक भक्ति भावना से अनुष्ठान करते हैं । चारुचन्द्र लेख में भी इस धर्म मूल्य का अनुशीलन किया गया है । वस्तुत: धार्मिक अनुष्ठान जीवन को और उसकी इच्छा शक्ति को बल प्रदान करता है । सीदी मौला राजा सातवाहन को स्पष्ट करता है कि दैनिक शक्ति के

- -

﴾1﴿ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्रलेख- पृष्ठ 287

आराधना से भौतिक साधन प्राप्त होते हैं । फिर मनुष्य तो यह कल्पना करता है कि उसकी कल्पना के आधार पर कोई ऐसा ही घरौंदा बनाकर खड़ा कर दे जो उसके मन के अनुकूल हो । ब्रह्माण्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पिण्ड में न हो । शक्ति चाहे दैवीय भौतिक हो, आध्यात्मिक हो एक है, और पिण्ड के भीतर विद्यमान है अगर व्यक्ति उसे पकड़ सकता है उसे खींच सकता है तो निखिल ब्रह्माण्ड ही उसके वश में हो सकेगा । जब मनुष्य साधना में निरत होता है तो अन्तर्यामी देवता भी उस पर प्रसन्न होते हैं ।

आचार्य द्विवेदी ने ब्रह्माण्ड के रहस्य का धार्मिक स्वरूप चित्रित करते हुये बताया है कि विविध संयोगों के भीतर से निखिल ब्रह्माण्ड बिहारी देवता जब मनुष्य को इस रहस्य का किंचित आभास देते हैं तो उसका केवल यही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर मैं पूर्ण रूप से विराज रहा हूँ । तुम्हारी अहम की क्षुद्रता के आवरण के भीतर से कभी-कभी जो प्रकाश की किरण पहुँचा देता हूँ, वह केवल इसलिये कि तुम जान लो कि तुम्हारा अहं भाव जो पृथकत्व बुद्धि उत्पन्न कर रहा है वह गलत है । समय आयेगा महाराज जब कलिका विकसित होगी और प्रफुल्ल पुष्प के रूप में अपना सौरभ इस जगत में बिखेरेगी । "§1§

हम देवता के लिये उपासना करते हैं, जप करते हैं, तपस्या करते हैं वह अन्तःकरण में स्थित उस शक्ति का उद्‌बोधन मात्र है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि भौतिक है । जिससे मानव जीवन की कल्याणकारी इच्छायें तृप्त होती हैं और मानव सदमार्गी बन जाता है।

अनामदास का पोथा विशुद्ध जप-तप और अनुष्ठान का आलेखन है । रैक्व ऋषि तापस पुत्र हैं उन्हें ब्रह्माण्ड के सत्य का ज्ञान है उसके बारे

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्रलेख- पृष्ठ 304

में जन-जन का सोच यह बनता है-

> "जिज्ञासु जनों में उसके प्रति आदर का भाव अवश्य बढ़ गया था। उसमें चिन्तन मनन की प्रवृत्ति निरन्तर ध्यान करने की शक्ति और हर बात के मूल में पहुँचने का प्रयास प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता था । धीरे-धीरे लोग उसे देखने के लिये भी आने लगे । ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि यह निष्क्रिय निष्काम तरुण तापस समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर रहा है क्योंकि उसकी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी नहीं हैं अन्तरतम में लीन हो गयी हैं । लोगों के आते जाते रहने पर भी वह उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता था ।" ॥1॥

तरुण तापस रैक्व बाह्य जगत से विमुख होकर जप-तप धर्म में लीन रहने वाला ऋषि कुमार था वह मनुष्य लोक को ही अन्तिम सत्य नहीं मानता उसे वायु और आकाश की पुराणवत्ता पर विश्वास है । ऋषि कुमार वायु को सब कुछ का कारण मानता है वह अनुभव शून्य किन्तु अन्तरंग की चेतना का धनी है किन्तु जब उसे इस बात का ज्ञान होता है कि संसार और उसके अनुभव भी जीवन सापेक्ष होते हैं, । उसके मन में तमाम तरह की जिज्ञासायें पैदा होती हैं । जाबाला के संस्पर्श से ऋषि कुमार विमोहित होकर चले जा रहे हैं । कहाँ जा रहे हैं यह उन्हें स्वयम् नहीं मालूम । विचित्र प्रकार की व्याकुलता उनके मन में है पर वे समझ नहीं पा रहे हैं । प्राणवायु मन का गहरा सम्बन्ध विश्लेषित करते हैं लेकिन उन्हें परीक्षित सत्य की खोज अभी प्राप्त होनी है । वह भक्ति पूजा में निष्ठावान होकर दार्शनिक वितर्कों में उलझ जाते हैं । रैक्व को तत्व ज्ञान की अभिलाषा है इसलिये वह ऋषि पत्नी वृद्ध माँ के पास जाकर

- -

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 317

अपनी बात कहतेहैं । उन्हें समस्त पदार्थ जात का धार्मिक आयामों का विश्लेषण करना है । पद पदार्थ के अन्तर को समझना है । प्राण मन और बुद्धि के रहस्य को जानना है । " §1§

धार्मिक प्राण प्रतिष्ठा मानव मन की एक अनुष्ठानवादी देन है जो उसे परात्म पद तक पहुँचाती है । तापस रैक्व ब्रह्मभाव के संकल्प को उद्घाटित करते हुये सनातन सत्य के मार्ग को प्रशस्त करते हैं । उन्हें जीवन के वे प्रसंग बहुत प्रभावित करते हैं जो मानव के कल्याण के निमित्त किये गये हों । भगवती ऋतम्भरा के सानिध्य को पाकर के धर्म कर्म का सहज उच्चार यहाँ प्रकट किया गया है -

> "इस बीच ब्रह्मचारियों का दल मधु दधि, कन्दमूल आदि के साथ आ गया । वे माताजी से निर्देश लेने आये थे कि सम्माननीय अतिथि और उनके परिवार के लिये उन्हें क्या करना है, माताजी ने यथोचित निर्देश दिया और रैक्व को खोजकर उनके पास भेज देने का आदेश दिया । ब्रह्मचारियों के जाने के बाद माताजी ने जाबाला के आतिथ्य का आयोजन किया परन्तु जाबाला ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ उत्तर दे दिया कि जब तक रैक्व लौट नहीं आते और आकर कुछ आहार ग्रहण नहीं करते तब तक वह कैसे भोजन कर सकती है । " §2§

वस्तुतः मानव मूल्यों के प्रति कथाकार ने दार्शनिक एवम् धार्मिक अर्थवत्ताओं का प्रस्तुतीकरण किया । बाण भट्ट की आत्मकथा का बाण भट्ट, पुनर्नवा का देवरात, चारुचन्द्र लेख का राजा सातवाहन तथा अनामदास का पोथा का रैक्व ऋषि मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये समर्पित है ।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 342

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 467

वस्तुत: धर्म मानव को सद प्रवृत्ति देता है किन्तु जब वह रूढ़ हो जाता है तब उसमें विकार पैदा हो जाते हैं और वह मानव के लिये अपेक्षणीय नहीं रह जाता। मानव मन सुगमता को प्राप्त करना चाहता है। जैसा कि मानव मूल्यों में सरलता और सादगी को बड़ा दर्जा दिया गया है। यही निष्कर्ष मानव मूल्यों की बड़ी कसौटी है। धर्म कर्म औपचारिक जिजीविषा का अंग बन गया है। बहुत से लोग धर्मावलम्बी मूल्यों से हटकर आजीविका के स्वार्थ पूर्ण साधनों से जनहित करने लगे हैं। उन्हें मूल्य कभी नहीं कहा जा सकता।

(ब) सॉंस्कृतिक मानव मूल्य :-

संस्कृति विविध आयामी है। विकासात्मक उपागम के आधार पर व्यक्तित्व विकास की महत्वपूर्ण स्थितियाँ- बाल्यावस्था, किशोरावस्था युवावस्था और वृद्धावस्था है जिनमें व्यक्ति सॉंस्कृतिक विरासत को आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ता है। बच्चे के मानसिक संस्कारों को माता-पिता दिशा देते हैं और अध्यापक विचारकों के विचारों को क्रमश: उन्हें बढ़ाता चलता है। युवावस्था तक आते-आते बालक अपने देश समाज की सभी सॉंस्कृतिक व्यवस्थाओं से परिचित हो जाता है। हमारी सॉंस्कृतिक विशेषतायें ही यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस रूप में होना चाहिये उस स्थिति में यह आवश्यक है कि हम संस्कृति तथा इसको प्रभावित करने वाले घटकों को समझने का प्रयत्न करें। क्योंकि हमारे जीवन मूल्य प्रारम्भिक अवस्था से ही हमारी संस्कृति से सम्बन्धित रहे हैं।

संस्कृति भौतिक अभौतिक तत्वों की वह जटिल सम्पूर्णता है जिसे व्यक्ति समाज का एक घटक होने के नाते प्राप्त करता है तथा जिसमें वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। इसका तात्पर्य यह

कदापि नहीं कि व्यक्ति केवल संस्कृति के सहारे ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता हो । उस पर वर्तमान में विकसित सभ्यता का गहरा प्रभाव रहता है । और वर्तमान की विकसित सभ्यता काफी हद तक परम्परा की कोख में जन्म लेती है । इसलिये मानव के जीवन मूल्य पूर्ण रूपेण संस्कृति पर निर्भर होते हैं । ये मूल्य चाहे वैयक्तिक हों या सामाजिक । संस्कृति सभ्यता का जीता हुआ रूप है इसलिये उसमें सारे मूल्यों का समावेश हो जाता है । हम अपने आदर्शों की प्राप्ति के पहले सत्यम शिवम सुन्दरम् की प्राप्ति का उद्देश्य लिये होते हैं । कुछ प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते हैं और मेरे विचार में ये प्राप्य उद्देश्य हमारे जीवन मूल्य ही हैं । जिनमें प्रेम, दया, सहानुभूति, धर्म, अर्थ, काम आदि जुड़े हैं । पर आज इनके सन्दर्भ कुछ उलट गये हैं । उदाहरण के लिये वैदिक युग में दया के गुण का तात्पर्य था कि प्राणि-मात्र के कष्ट को देखकर द्रवी भूत हो जाना। पर आज वर्तमान में हमारी सभ्यता में परिवर्तन हुआ और दया जो कि शाश्वत सहानुभूति और प्रेम का मूल्य था । आज के युग में दया करना एक अहंकार माना जायेगा भले ही अन्य लोग अहंकार न मानें पर हम स्वयं अपने अहं की पुष्टि के लिये ही दूसरों पर दया करते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में पलने वाला दया का बोध और आज के दया का बोध दोनों में अन्तर आ गया है ।

सांस्कृतिक जीवन दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एवं हर विकास की अवस्था पर व्यक्ति के मूल्य में परिवर्तन होने के अंग मौजूद रहते हैं । आज के समाज में नैतिक मूल्यों का जो पतन हमें दिखायी दे रहा है उसका एक प्रमुख कारण यह है कि आज ऐसे ही लोग हमें उन्नति करते दिख रहे हैं, जो गलत मूल्यों को अपनाये हैं. इसमें हमारे संचार साधनों का योगदान कुछ कम महत्व का

नहीं, ये भी इन्हीं गलत मान्यताओं का प्रस्फुटन प्रस्तुत करते हैं क्योंकि इन साधनों को सभी देखते हैं व बुराई को ग्रहण करना अपेक्षाकृत सरल है अतः ये उन्हें आसानी से अपनाने लगते हैं ।

हम यही कह सकते हैं कि सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हेतु मुख्यतः समाज में होने वाले परिवर्तन उत्तरदायी हैं । हम हमेशा की तरह संस्कृति की विराटता को भूलकर नूतन के प्रति आकृष्ट होते चले जाते हैं । वास्तव में संस्कृति में समाहित विभिन्न कारकों का विकास समानगति से नहीं हो पाता है । एक ओर हमारी भौतिक संस्कृति क्रान्तिकारी परिवर्तन करती है तो दूसरी ओर लोकाचार में जुड़ने वाली संस्कृति परम्परा से प्रतिबद्ध किये रहती है इसी प्रकार के विश्वास हमें सदैव प्रभावित करते रहे हैं । अतैव हमें सांस्कृतिक विरासत को स्मृति गर्भ में बनाये रखना चाहिये तभी मानव का जीवन जीवन है अन्यथा अन्य प्राणियों की तरह वह भी पुनर्नवा का नायक सांस्कृतिक गुण शीलता का भण्डार है । वह अपने शील सौजन्य तथा दयालुतासे मोहक बन जाता है । उसकी मृदुता औदार्य पूर्ण गरिमा जिस परिप्रेक्ष्य में जन मानस में अंकित है । उसे अद्वितीय ही कहा जा सकता है । हलद्वीप के वासन्ती क्षणों में उसका सांस्कृतिक सरोकार विलक्षण है ।

> "बसन्तारम्भ के दिन इस सरस्वती विहार में काव्य नृत्य संगीत आदि का बहुत बड़ा आयोजन हुआ करता था । उस दिन राजा स्वयम् इन उत्सवों का नेतृत्व करते थे । कई दिन तक नृत्य गीत के साथ साथ अक्षर विन्दुमती, प्रहेलिका आदि की प्रतियोगितायें चलती थीं, न्याय और व्याकरण के शास्त्रार्थ हुआ करते थे, कवियों की समस्या पूर्ति की प्रतिद्वन्दिता भी चला करती थी, और देश-विदेश से आये हुये,

प्रख्यात मल्लों की कुश्तियाँ भी । " |1|

इस द्वीप की सांस्कृतिक विरासत को लेखक ने अनूठे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है राजा के सभापतित्व में ही एक बार मंजुला का नृत्य इसी सरस्वती विहार में हुआ । देवरात भी सदा की भाँति आमंत्रित थे मंजुला ने उस दिन बड़ा ही मनोहर नृत्य किया था । स्वयम् राजा ने उसे नृत्य के लिये साधुवाद दिया था । देवरात भाव गद्गद् होकर उस मादक नृत्य का आनन्द लेते रहे । मंजुला ने उस दिन पूरी तैयारी की थी उस दिन उसकी सम्पूर्ण देहलता किसी कवि द्वारा निबन्ध छन्दों की धारा की भाँति लहरा रही थी । द्रुत मन्थर गति अनायास विविध भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही थी मानों किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्प वल्ली ही सजीव होकर थिरक उठी हो । उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें कटाक्षेप की पूर्णिमा परम्पराओं का इस प्रकार निर्माण कर रही थी जैसे नील कमलों का चक्रवार ही चक्रित हो उठा हो । शरद कालीन चन्द्रमा के समान उसका मुख मण्डल चारों के वेग से इस प्रकार घूम रहा था कि जान पड़ता था कि शत-शत चन्द्रमण्डल औरात्रिक प्रदीपों की कराल माला में गूँथकर जगर-मगर दीप्ति उत्पन्न कर रहे हों । " |2|

चन्द्रा शोभन, मृणाल मंजरी, सुमेरका का पुरन्दर आदि सभी ग्रामीण अंचल के सांस्कृतिक स्वरूप हैं । चन्द्रा विन्ध्यावती, विन्ध्याचल के प्राकृतिक परिवेश में अपने को खो जाती है । संस्कृति व्यक्ति को व्यक्ति से आत्म प्रकाश करती हुई जोड़ने का प्रयास करती है । चन्द्रा ने प्रतिवाद किया -

---

|1| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 19

|2| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 20

"अच्छा मेरी भोली मैना अगर कोई ऐसी बात
बताऊँ जो सोलहों आने आप बीती हो और
दूसरों के बारे में उतना ही कहूँ जितना अपनी
आँखों से प्रत्यक्ष देखा है,। तो इसे तू निन्दा
कहेगी या सच्चाई। बिल्कुल आँखों देखी बात,
मृणाल ताकती रही, वह समझ नहीं सकी कि
चन्द्रा क्या कहना चाहती है। चन्द्रा ही बोली,
जाने दे, नहीं कहूँगी। मृणाल हँसने लगी। मैं
जानती हूँ दीदी अब तुम उनके बारे में कुछ गड़बड़
बोलना चाहती हो, बोलो न। रोज ही तो
कुछ न कुछ कहती रहती हो। अपनों के बारे
में कहने में क्या बुराई है। चन्द्रा हँसने लगी।
आर्यक के बारे में गड़-बड़ भी बोलती हूँ तो तुझे
अच्छा लगता है यही न। बात आर्यक की ही
होनी चाहिये। चाहे वह उस बिचारे की निन्दा
ही क्यों न हो।" (1)

सौहार्दप पारस्परिकता मन के कपाट खोल देता है। आत्मीयता का
प्रकाशन होने लगता है। समूह गत समष्टि का निरूपण होने लगता है।
चन्द्रा सांसारिक भाव आकुलता को तर्जीह देती है। ब्रह्मचारी जी का
नखरा बखान करते हुये चन्द्रा मृणाल को संवाद सुनाती है कि खाना परस
कर दिया तो ब्रह्मचारी ने नखरा शुरू किया, मैं नहीं खाऊँगा। मैंने
कहा बहुत ठीक। जरा इधर मुँह करो, खिला दूँ और कौर उठाकर मुँह
में देने लगी, अच्छे भले बच्चे की तरह खा गये फिर दूसरा कौर उठाया
तो थाली खींचकर खाने लगे। मैंने आँचल की हवा की प्यार से अचवाया

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ 173

तो थोड़ा मान भी हुआ रात भर शरीर दबाती रही अपना आधा आँचल बिछा दिया था मैं मैं उस पर सो गये। बड़ा अभिमान मन में पाले थे पर सेवा का सुख भोगने में भी सजग थे। §1§

व्यक्ति के भोलेपन और उसकी सादगी नारी को उन्मादनी बना देता है। चन्द्रा और मैना के संवाद के बीच-बीच ब्रहमचारी के अन्तर्मन को विश्लेषित वैसे ही करती जाती है जैसे कि अनामदास का पोथा की जाबाला। जाबाला तरुण तापस से अत्यधिक प्रभावित है। उसे रैक्व की भोलेपन की सहज गुणवत्ता प्राप्त हुयी है। रैक्व जाबाला को स्वर्गीय मनुष्य मानता है-

> "रैक्व ने कातर किम्पीत वाणी में कहा, हे देवलोक के मनुष्य तुम्हें देखकर मेरा सारा अस्तित्व तुम्हारी सेवा के लिये थिरक जाना चाहता है x x x x आनन्द गद्गद् होकर रैक्व ने उसके मुलायम बालों को हाथों से अनुभव करने का प्रयत्न किया। बेरुस अत्यन्त सहज सरल भावों से उन्होंने देवता के ही गातों पर हाथ फेर दिया। आनन्द कातर भाव से बोले अहा तुम्हारी अवस्था के पुत्रों के तो रुखे-रुखे बाल जम जाते हैं। कैसा दिव्य तुम्हारा मुख मण्डल है, कितने लाल-लाल अधर हैं स्वर्गीय प्राणी ने जरा झिड़क कर कहा ऋषिकुमार जरा दूर हट कर रहो, तुम क्या पहली बार किसी स्त्री को देख रहे हो। ऋषि कुमार कुछ समझ न सका केवल आँखे फाड़कर उसकी ओर देखता ही रहा।" §2§

व्यक्ति के भोलेपन का भी बड़ा मूल्य होता है वह नहीं जानता कि

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा - पृष्ठ 175

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 332।

स्त्रियों का स्पर्श करना अनुचित और पाप है । इसीलिये जाबाला उसकी सरलता पर मुग्ध है । उसने अपने जीवन में ऐसा भोला व्यक्ति देखा ही नहीं । ऋषि कुमार भारतीय संस्कृति की दृष्टि से जाबाला की सेवा में तत्पर होता है और सहज धर्म संगत प्रस्ताव प्रस्तुत करता है कि जाबाला उसकी पीठ पर बैठ जाये । जाबाला ऋषि कुमार के भोलेपन की प्रगल्भ मुग्धा बन गयी वह मन ही मन ऐसी अनुभूतिमयी गुद-गुदी महसूस करने लगी जो बहुत ही मर्मभेदी और कमनीय थी । जाबाला ऋषि कुमार के परम तत्व ज्ञान से भी प्रभावित हुयी, और आगे चलकर लोक उत्सव लोक संस्कृति, लोक रीति नीति, लोक पूजा पाठ और लोक से उत्पन्न विविध संस्कार युक्त होकर वैवाहिक बन्धन में बँध जाते हैं । वैवाहिक बन्धन हमारे समाज और संस्कृति का मुख्य आकर्षण बिन्दु है । विवाह से पूर्व जाबाला रैक्व के बारे में तरह-तरह की कल्पनायें संजोती है । जाबाला विवाह नहीं कराना चाहती परन्तु रैक्व के सम्बन्ध में कोमल और मधुर भाव बनाये रखना चाहती है । जाबाला की इसी उधेड़ बुन में रैक्व प्रकट हो जाता है वह चारू मिलन कितना अधिक रोमांचकारी और मार्मिक है -

" रैक्व ने देखा शुभा, स्तब्ध एकदम रुद्ध चेष्ट । दोनों हैरान । भये दृगंचल चारू अचंचल कुछ देर ऐसी ही स्थिति रही, फिर रैक्व ने मौन भंग किया । शुभे मैंने तुम्हें स्वप्न में कई बार देखा है पर आज जागृत अवस्था में देख रहा हूँ पर कौन जाने आज भी स्वप्न ही देख रहा हूँ बताओ शुभे कहीं मैं स्वप्न अवस्था में ही नहीं हूँ । ऐसा कहकर रैक्व ने एकबार अपनी आँखों पर हाथ फेरा । जाबाला ने मृदुकंठ से उत्तर दिया नहीं तापस कुमार तुम स्वप्न अवस्था में नहीं

जागृत अवस्था में ही अपनी शुभा को देख रहे हो, कहो प्रसन्न तो हो। "﴾1﴿

रैक्व ने चकित मृग शावक की तरह उस मनोहर वापी को सुना, उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, रैक्व सचमुच जाबाला के प्रति मुग्ध हो गया है। वह शुभा को पथ प्रदर्शक मानता है, वह बुद्धि और बोध के विषय को समझना चाहता है। बहुत दिनों बाद रैक्व ने अपने चित्र में ऐसी स्थिरता का अनुभव किया था आज वे अनुभव कर रहे हैं कि श्रेय इन्द्रिय प्राण मन, बुद्धि आदि सभी आवरण हृदय हैं। सबको अभिभूत करके एक अपूर्व तेज उनके अन्तरतर को आलोकित कर रहा है।

जाबाला के मिलने पर रैक्व को नयी अनुभूति का अनुभव हुआ था। धीरे-धीरे वह तिरोहित होने लगा। सांस्कृतिक विन्यास व्यक्ति को भाव प्रवाहयों प्रदान करता है। रैक्व उसी रजाई पर पहुँच कर जीवन जगत की संस्कृति के छोरों को बाँध देना चाहता है। यही उसकी विशिष्टता है, अपूर्वता, अप्रतिमता है। बाण भट्ट की आत्म कथा का नायक बाण भट्ट सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अपना जीवन रेखांकित करता है। भट्ट निपुणिका और भट्टिनी को लेकर जीवन के रंग-रंग को खट्टे मीठे अनुभवों के साथ तादात्म्य करता है।

"गोधूलि बेला में मल्लाहों ने नाव खोल दी,
थोड़ी ही देर पहले आचार्य सुगत भद्र भट्टिनी
को स्नेह पूर्वक आशीर्वाद देकर और उनके पिता
के पास पहुँचाने का आश्वासन देकर चले गये थे।
भट्टिनी बहुत देर तक उसी ओर उदात्त भाव

﴾1﴿ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 448

से ताकती रही जिस ओर आचार्य गये थे,
उसकी घन चिकुर राशि अस्त-व्यस्त होकर
मुख पर पड़ी हुयी थी जिसे देखकर शैवाल
जाल में उलझे हुये पदम पुष्प का भ्रम होता
था । धीरे-धीरे नदी की धारा में लाल
चन्द्रमा का बिम्ब प्रकट हुआ और देखते-
देखते दो सौ रूपों में बिखर कर अवगाहन
करने लगा मानों दिन भर फाग खेल लेने के
बाद अब अपने शरीर पर लिपटे हुये अबीर
को धो डालना चाहता है । रात की कालिमा
घनी होती गयी ज्योत्स्ना धवलतर होकर सारे
गंगा पूजन को दुग्ध धौति की बनाने लगी और
गंगा की जटिल वीथियों पर चन्द्रमा तथा नक्षत्र
मण्डल का नृत्य होने लगा, पर भट्टिनी वैसी
उदास बैठी रही । मुझसे अधिक न देखा गया,
व्यथित होकर बोला, देवी । चिन्ता छोड़ो
बाण भट्ट पर विश्वास करो । " (1)

जीवन की सांस्कृतिक विलास भूमि पर भट्ट भट्टिनी का संवाद प्रत्यय बोधक है । भट्टिनी उसकी प्रार्थना पर मुग्ध हो गयी । अपनी मृणाल कोमल अंगुलियोंसे अस्त व्यस्त अलक जाल को संयत किया और भट्ट की ओर स्मित पूर्वक देखा । भट्ट कला मर्मज्ञ विलक्षण बुद्धि का यहाँ नायक है । उसने महसूस किया कि भट्टिनी के निगूढ़ मनोभाव कुछ कहना चाहते हैं । भट्ट निपुणिका से भी त्रिकोणात्मक सांस्कृतिक विन्यास के साथ जुड़ा है । उसने निपुणिका के कलामर्म को भली भाँति आत्मसात

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 102

कर लिया था वह निपुणिका की गम्भीर अनुराग से भली भाँति अवगत था । निपुणिका जब ज्योतिष के तन्त्र मन्त्र में बिधकर जीवन के उपसंहार की बात कहती है तब बाण स्पष्ट करता है -

> "निपुणिका ने जानुपात पूर्वक प्रणाम किया मैंने उसे आश्वासन देते हुये कहा मैं तेरा अनुरोध पालन करूँगा न्युनिया । पर मैं ज्योतिषी की बात पर विश्वास नहीं कर रहा, न्युनिया आँख फाड़कर मेरी ओर देखने लगी । ज्योतिषी की बात पर विश्वास न करना उसकी समझ में आने लायक बात न थी । मैंने अधिक कुछ नहीं कहा केवल आकाश की ओर देखकर एक दीर्घ निश्वास लिया मैं जानता हूँ कि हाल ही में यवन लोगों ने जिस होरा शास्त्र और प्रश्न शास्त्र नामक ज्योतिषी विद्या का प्रचार इस देश में किया है वह यवनी पुराणगाथा के आधार पर रचा हुआ एक अटकल पच्चू विधान है । भारतीय विद्या ने जिस कर्मफल और पुर्नजन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है उसके साथ इसका कोई मेल ही नहीं है । " {1}

संस्कृति में ज्योतिष शास्त्र तन्त्र मंत्र का भी स्थान है, हमारे पुराण बतातेहैं कि देवताओं की जाति, स्वभाव और लिंग तक में अद्भुत विरोध है । हमारे पुराण प्रसिद्ध शुक्र और चन्द्रमा इस ज्योतिष में स्त्रीवाद मान लिए गये हैं क्योंकि यवन गाथाओं की वीनस और

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा -पृष्ठ 102

द्रियेना देवियाँ है । और वे ही इन ग्रहों की अधिष्ठात्री देवी मान ली गयी है । गृह मैत्री का तो यह अद्भुत विधान है । इस ज्योतिष विधा तथा तन्त्र विधा ने जन समूह को कुप्रभावित किया है । कालान्तर में इन विधाओं का प्रभाव पंडितों के माध्यम से राजाओं पर बहुत पड़ा जिससे मूर्त अमूर्त का भेद ही भूलकर जन सामान्य संभ्रमित हो उठा । बाण भट्ट इन सांस्कृतिक आयामों से परिचित था । जान पड़ता है कि तांत्रिक अभिचार के कारण लोगों में अविश्वास बढ़ गया है । तांत्रिकता संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है । जहाँ एक ओर संस्कृति जीवन गत उत्सव प्रेम और भाव प्रवण विचारों पर टिकी है तो दूसरी ओर मानव के वैज्ञानिक सोच का भौंडा मजाक करती है । पाश्चन्द्र लेख का सीदी मौला दार्शनिक मुद्रा का अनुभवी व्यक्ति है । वह निखिल ब्रह्माण्ड के स्पन्दन को रेखांकित करता है ।

> "मैं जो कह रहा हूँ महाराज कि विश्व ब्रह्माण्ड
> में जो कुछ घटित हो रहा है वह छोटे से छोटे पिण्ड
> में भी है । यह ध्रुव सत्य है । विविध संयोगों के
> भीतर से निखिल ब्रह्माण्ड विहारी देवता जब
> मनुष्य को इस रहस्य का किंचित आभास देते है
> तो उसका केवल यही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर मैं
> पूर्ण रूप से विराज रहा हूँ x x x x किसी भी
> नयी खोज का अर्थ है अन्त:करण में स्थित और
> बाह्य जगत में व्याप्त शक्ति का सामंजस्य ।
> जो कुछ हम जानते हैं जो कुछ देखते हैं, जो कुछ
> हम अनुभव करते है वह वस्तुत: हमारे अन्त:करण
> में स्फुटित होने वाली महा शक्ति का ही रूप
> है । हम देवता के लिये उपासना करते हैं, जप
> करते है तपस्या करते है, वह अन्त:करण में स्थित

उस शक्ति का उद्‌बोधन मात्र है । " ¦1¦

सीदी मौला की बात की धारा खिल चुकी थी । सीदी मौला की बात समझने की वह कोशिश कर रहा था । ऐसा लगता था कि चित्त में एक चिनगारी क्षण भर के लिए जल उठी है और बुझ गयी है । चिंगारी की हल्की सी ज्योति में केवल इतना ही मालूम पड़ा कि अन्तर्जगत और बाह्‌य जगत में कोई अटूट सम्बन्ध अवश्य है ।

वस्तुत: जब जब मनुष्य अपने अन्तर्यामी देवता के इंगित पर शक्ति के नवीन श्रोतों के रहस्य को ढूँढ निकालेगा- तब तब तमोगुण जोर मार कर उसकी विवेक बुद्धि पर आक्रमण करेगा । एक व्यक्ति के तमोगुण के उद्वेग से उतना अनर्थ नहीं होता जितना सहस्त्र व्यक्तियों के तमोगुण से होता है । संघ का तमोगुण और भी भयानक होता है जो व्यवस्था का विस्फोटक बन जाता है । चारुचन्द्र लेख के विभिन्न सांस्कृतिक विन्यास, पूजा पाठ, जप-तप दृष्टव्य है ।

"इस मठ में जौ और चावल के श्राव की अवाध गति थी । मठ में उसके बनाने की भी व्यवस्था थी और खपत भी वहीं होती थी । साधना प्राय: रात्रि में होती थी । मनुष्य की हड्डियों से बनी हुयी वंशियों और पशुओं के सींग से बने हुये बड़े-बड़े श्रृंगी बाद्‌य के साथ डमरू प्राय: गड़गड़ा उठता था । शुरू शुरू में मुझे अलग ही रखा जाता था परन्तु बाद में रथ के प्रधान लामा साधु की आज्ञा से मुझे उसमें स्थान मिलने लगा । जो मद्य साधना भूमि में व्यवहरित होता था उसकी

¦1¦ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ 304-305

दुर्गन्ध भयंकर होती थी x x x x पुरुषों और स्त्रियों में इस उत्कट मधुपान की होड़ सी लगी रहती थी । प्रातः काल वे सूर्योदय के बाद तक संज्ञा शून्य पाये जाते थे । " §1 §

सिद्ध सामन्तकाल में लोग तन्त्र-मन्त्र जप के द्वारा भूत वैताल, डाकिनी-शाकिनी आदि की साधना करते थे । और बुद्ध प्रज्ञा के आलोक से वंचित थे । भगवान ने उनके ऊपर अनुग्रह किया और प्रज्ञा के आलोक से उन्हें सत्व ज्ञान की ओर उन्मुख किया । जिसके कारण जम्बू द्वीप में दुःख निवृत्त का उन्होंने उपदेश दिया । साधारण जनता के दुःख विमोचन के लिये भाव प्रवणता का होना आवश्यक है भाव जगत में जो कुछ अनुभूत होता है वह सब स्थूल जगत में प्रत्यक्ष हो सकता है । भाव जगत में यदि व्यक्ति रोग मुक्ति सोचे तो स्थूल जगत में भी स्थूल मुक्त हो सकता है । भाव जगत में जो मारण, मोहन और उच्चाटन की प्रक्रियायें चल रही हैं वे स्थूल जगत में देखी जा सकती हैं । इस जगत में साधकों ने इस मन्त्र को पा लिया था ।

पारिवारिक एवम् सामाजिक सम्बन्ध सरोकार त्यौहार पर्व साज सज्जा, रीति रिवाज, तन्त्र-मन्त्र आदि ऐसे ही सांस्कृतिक आयाम हैं जिनका वर्णन चारु चन्द्र लेख, बाण भट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा और पुनर्नवा उपन्यासों में अनेक विध मिलता है उपन्यासकार ज्योतिष तन्त्र-मन्त्र जप-तप और साधना के विविध पक्षों का अध्येता है । अतैव सांस्कृतिक परिदृष्टि इन उपन्यासों में भरपूर है।

उपन्यासकार ने सामाजिक मूल्यों का उद्घाटन करते हुये समाज में उनके महत्व को प्रतिपादित किया है । बाण भट्ट की आत्म कथा में निम्न समाज से लेकर उच्च समाज तक का वर्णन है । समाज में

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्र लेख पृष्ठ 307

जाति-भेद का जोर था । हर्षकालीन समाज की व्यवस्था सुदृढ़ न थी । अन्तर्जातीय विवाह हुआ करते थे जिसके फलस्वरूप निम्न वर्गों से उच्चवर्गों में भी विवाह सम्पन्न होते थे । यद्यपि जाति व्यवस्था जन्म के अनुसार ही कायम थी कर्म के अनुसार नहीं तथापि कभी-कभी कर्म के कारण जाति में परिवर्तन देखा जाता है ।

> "निपुणिका आजकल की इन जातियों में से एक की सन्तान थी, जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थी, परन्तु जिनके पूर्व पुरुषों को सौभाग्य से गुप्त सम्राटों की नौकरी मिल गयी थी । आजकल उनकी गिनती पवित्र वैश्य-वंश में होने लगी थी । x x x उसका विवाह एक भड़भूंजे से उठकर सेठ बनने वाले कान्दीवक वैश्य से हुआ था । " §1§

पुनर्नवा में उपन्यासकार सामाजिक कुरीतियों का परिमार्जन एवं समाज के प्रति दायित्व स्थापित करते हुये पुरगोभिल के शब्दों में व्यंजित करता है -

> "जिसे आज अधर्म समझा जा रहा है, वह किसी दिन लोक मानस की कल्पना से उठकर व्यवहार की दुनियाँ में आ जायेगा । ....अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थायें तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म भी तोड़ देंगी । " §2§

देवरात, जो पुनर्नवा का उच्च नैतिक स्तरीय पात्र है सामाजिक जीवन

- -

§1§ बाण भट्ट की आत्मकथा एक अध्ययन, राजेन्द्र मोहन भटनागर पृष्ठ सं0234

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पृष्ठ सं0 166,167

में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर अधिक जोर देते हैं वे स्वयं मूल्यों के पोषक हैं -

"वे परम्परागत भारतीय जीवन के नैतिक मूल्यों के पोषक भी हैं और उन्नायक भी । उन्हें युग विशेष में नैतिक मान्यताओं के पुनर्वीक्षण पर विश्वास तो था, पर बिना सामूहिक स्वीकृति के किसी भी आचरण का द्योतक मानने का आग्रह भी था । उन्होंने शास्त्रीय मान्यताओं के पुनर्वीक्षण को प्रोत्साहन भी दिया, परन्तु ब्राह्मणों और और अन्य विद्वानों की स्वीकृति पाये बिना कोई भी आचार उनकी दृष्टि में उच्छृंखल सदाचार मात्र था । वे क्रमबद्ध सुविचारित आचार संहिता से शासित समाज को ही उत्तम मानते थे । "§1§

समाज में कर्म की प्रतिष्ठा, समाज की उन्नति और सुव्यवस्था की परिचायक है । वैदिक काल में कर्म के अनुसार वर्ण विभाजन था न कि जन्म-मूलक । भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं-

चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुण-कर्म-विभागशः । §2§

कालान्तर में जन्मानुसार यह विभाजन सम्प्रदायवाद को जन्म देने वाला सिद्ध हुआ । उपन्यासकार ने चारुचन्द्र लेख में वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाकर समाज में नैतिक मूल्यों को स्थापित किया है । गोरक्षनाथ के शब्दों में -

" इस विद्रुट कलुष प्रजा का संशोधन कठिन जान पड़ता है .... प्रत्येक समुदाय अन्त: विदीर्ण है ।

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 225

§2§ श्रीमद्भगवत गीता - अध्याय-4 , श्लोक सं0 13

छोटेपन में अहंकार का दर्प इतना प्रचंड होता
है कि वह अपने को ही खण्डित करता रहता
है । " §1§

समाज में जब तक जातिवाद, सम्प्रदायवाद का नारा लगाया जाता रहेगा कोई भी समाज अपकर्ष की पराकाष्ठा तक पहुँच जायेगा । सम्प्रदायवाद के विरुद्ध गोरखनाथ के उदात्त विचारों को हम पुनर्नवा में पाते हैं ।

"आज क्या सम्प्रदायवाद को बहुमान देकर
परस्पर विच्छिन्न होने की जरूरत है ? क्या
शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन, क्या बौद्ध -
सभी पर विभ्रान्ति की घोर घटा छायी हुयी
है । यदि हम अपने बाह्य-चिन्हों पर ही
अब भी अड़े रहेंगे तो विनाश निश्चित है।" §2§

इस प्रकार डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने सभी उपन्यासों में मानव मूल्यों की संस्थापना की है । समाज में कर्म प्रतिष्ठित होना चाहिये कर्म निष्ठा भी एक मूल्य है जो समाज को सभ्य, शिष्ट व उच्चतर बनाता है । "अनामदास का पोथा" में औदुम्बरायण तत्कालीन ग्रामीण नागरिकों के उच्च वैचारिक स्तर एवं स्वाभिमान की व्यवस्था करते हुये तथा श्रम के प्रति ग्रामीणों की आस्था व्यक्त करते हुये अपने राजा जान श्रुति से कहते हैं कि भिक्षा का अन्न भोगना ग्रामीणों की दृष्टि में अति निम्नतर है -

"परमेश्वर की दया से हमारी प्रजा में अब भी
यह सुबुद्धि है कि वह भिक्षा के अन्न पर आस्था
नहीं रखती ।" §3§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं० 514

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं० 38।

§3§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा पृष्ठ सं०38।

इस प्रकार उपन्यासकार ने एक सुव्यवस्थित समाज में किस प्रकार मूल्यों की आवश्यकता है तथा कैसे इनको प्रतिस्थापित किया जा सकता है अपने उपन्यास के विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रद्योतित किया है । तत्कालीन समाज में सब नागरिक मिल जुल कर उत्सव आदि मनाते थे राजा अन्य कार्यों में भी रुचि रखते थे भले ही वे कार्य चाहे सामाजिक हों या साहित्यिक । साथ-साथ मिल जुल कर कार्य करने से उत्सवादि में शामिल होने से लोक कल्याण की भावना तो पनपती ही है, एक रूपता की भावना का भी संचार होता है जो समाज के लिये आवश्यक है । यह एक नैतिक मूल्य है । डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में जन-संस्कृति के अन्तर्गत त्योहार पर्व मनाने की बात आयी है । विभिन्न साज-सज्जाओं का वर्णन है ।

> "समाज में नित नये उत्सव मनाये जाते थे, उत्सव बड़ी धूम-धाम तथा शान से मनाये जाते थे xxx जनता में कीर्तन लोकप्रिय था । टोलियाँ बनाकर जन-साधारण नाचते-गाते झूमते थे x x x x राजा का ध्यान युद्धों की अपेक्षा अन्य कार्यों में विशेष रहता था । हर्ष देव महाराजाधिराज होकर भी इतना समय अपने व्यस्त कार्यक्रम से निकाल पाते कि "रत्नावली" नाटिका लिख लें'। कहना न होगा कि प्रजा तथा राजा दोनों राग रंगों में मस्त थे। " ।1।

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के दो उपन्यास "बाण भट्ट की आत्मकथा" तथा चारुचन्द्र लेख भारतीय संस्कृति की सजीव झाँकी प्रस्तुत करते हैं ।

।1। बाण भट्ट की आत्मकथा एक अध्ययन- राजेन्द्र मोहन भटनागर पृष्ठ सं0 236

"द्विवेदी जी ने जिस काल को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है, उसका सम्बन्ध हमारे अतीत कालीन भारत की सामंती संस्कृति से है। द्विवेदी जी ने अपने व्यापक अध्ययन एवं अद्भुत रचनात्मक मौलिक प्रतिभा के कारण अतीत में बिखरे सूत्रों को जोड़कर एक ऐसी प्रेरणादायिनी दृढ़भित्ति का निर्माण किया है जिसकी टेक लेकर वर्तमान पीढ़ी अपनी भावी जय-यात्रा का सफल अभियान कर सकती है। "{1}

द्विवेदी जी एक आशावादी साहित्यकार है। अतीत के इतिहास के माध्यम से वर्तमान को जो समृद्धि प्राप्त होती है वह उससे अपना शोधन ही नहीं करता अतीत में हुयी भूलों एवं असफलताओं को सामने रखकर कर्तव्य की भावी रूपरेखा निश्चित करता है। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से परम्परागत मान्यताओं का वर्तमान सामाजिक हित में चित्रण किया है। द्विवेदी जी ने संस्कृति को संकीर्ण अर्थ में न लेकर व्यापक रूप में लिया है। संस्कृति उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होती है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति वाँछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक श्लाध्य व्यक्ति समझा जाता है।

"इस अर्थ में संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। {2}

बाणभट्ट की आत्मकथा में हर्षकालीन भारत में प्राप्त सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक गतिविधियों का सरस वर्णन मिलता

{1} शांति निकेतन से शिवालिक - डॉ० शिव प्रसाद सिंह

{2} हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ 80।

है । यद्यपि उक्त स्थियाँ कुछ मलिन मान्यताओं से पीड़ित थी लेकिन

> "द्विवेदी जी ने प्राचीन संस्कृति के उसी रूप को ग्रहण किया है जो वर्तमान सामाजिक जीवन को स्वस्थ्य रूप प्रदान कर सके । अस्वास्थ्यकर सामाजिक कुरीतियों को संस्कृति के नाम पर स्वीकार कर लेना उनके लिये कठिन है और यहीं आकर हमें द्विवेदी जी की प्रगतिशीलता का परिचय मिल जाता है । समाज विरोधी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को भी द्विवेदी जी ने कहीं भी अपना समर्थन नहीं दिया है । यही कारण है कि उन्होंने प्राचीन संस्कृति में प्राप्त अस्वस्थ्य परम्पराओं को अपने ढंग से स्वीकार कर उसे समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी बना दिया है । " §1§

द्विवेदी जी ने प्राचीन संस्कृति के उन सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाया है जिससे वर्तमान में घटित विषमताओं से जूझ रहे जीवन को जीने के योग्य बनाया जा सके । तात्कालिक विषमताओं और विवेच्य काल की संस्कृति, मानव जीवन के भौतिक सुख की ओर से अनुप्राणित थी जिसने आध्यात्मिकता से विमुख होकर मानव जीवन को झकझोर दिया था उस स्वरूप का वर्णन करके उपन्यास के ही पात्रों द्वारा उन्होंने उसके विरोध में जीवन मूल्यों को दर्शाया है ।

> "अनेक धर्मों के दुराग्रह, उनकी कट्टरता से उत्पन्न कलह और विविध प्रकार के अंध विश्वासों का जो चमत्कारिक वर्णन द्विवेदी जी के दोनों उपन्यासों में मिलता है, उसका एकमात्र कारण यही है कि

---

§1§ शांति निकेतन से शिवालिक डॉ0 शिव प्रसाद सिंह पृष्ठ सं0 280

> द्विवेदी जी जीवन को जीने के योग्य बनाने वाले उन सभी तत्वों का उल्लेख करना चाहते हैं, जिनकी मानव को आवश्यकता है । प्रचलित सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक विकृत स्थिति के जो चित्र उपन्यास में आये हैं, वे इस प्रकार रखे गये हैं कि पाठक सहज ही वाँछित अवाँछित का निर्णय कर लेता है । ऐ ऐतिहासिक परिवेश में रची गयी कृति का यही महत्व है । आज विगत को पुनर्जीवित करने अथवा क्रमशः अदृश्य होने वाली संस्कृति को आधुनिक परिस्थितियों में बदलने से कतिपय असंभाव्य बातें प्रस्तुत हो सकती हैं । "बाण भट्ट की आत्मकथा" और "चारुचन्द्रलेख" में भी इसका अभाव नहीं है पर द्विवेदी जी ने भरसक प्रयत्न किया है कि भूतकालीन स्रोतों का सदुपयोग समसामयिक सभ्यता के विकासहित में किया जाय। "॥1॥

बाण भट्ट की आत्मकथा में हर्ष वर्द्धन कुमार कृष्ण वर्धन जैसे पात्रों के चरित्र चित्रण में उपन्यासकार ने आगे आने वाली सभ्य पीढ़ियों के लिये नैतिक मूल्य उद्घाटित किये हैं । प्रायः लोग संस्कृति को धर्म से पृथक नहीं देख पाते । मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये समय-समय पर विविध कलाओं का उद्गम होता रहता है बिल्कुल ठीक उसी प्रकार धर्म की रूप रेखा समय-समय निश्चित होती रहती है । यह बात उस धर्म के सम्बन्ध में है जो मात्र मानव निर्मित है । संकीर्ण अर्थों में जो धर्म स्वीकार किया जाता वह बहिष्कार के योग्य होता है । मार्क्स के शब्दों में -

---

॥1॥ शाँति निकेतन से शिवालिक डा0 शिव प्रसाद सिंह पृष्ठ सं0 28।

"यथार्थ मानवीय सुख की यह माँग है कि उसकी उपलब्धि के लिये मिथ्या सुख की सृष्टि करने वाले धर्म का बहिष्कार हो । " §1§

द्विवेदी जी ने स्वयं स्वीकार किया है -

"यह सब मिथ्या है । सिद्धियों के पीछे पागल बनने की उस हवा ने वर्णाश्रम धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। कायरों और भगोड़ों को अपना नेता समझने वाली जाति की जो दशा होना चाहिये वही आज इन जन समूह की दशा होगी । निरर्थक मन्त्रों की निरर्थक रट देश में प्राण-शक्ति का संचार नहीं कर सकती । मनुष्य को देवता बनाने के लिये आत्म विश्वास और दृढ़ संयम की आवश्यकता है । "§2§

डा० द्विवेदी वन्ध्या धार्मिक भावनाओं का परित्याग करके उपयोगी कलाओं के साथ उसे जोड़ना चाहते हैं । "बाण भट्ट की आत्मकथा " में वर्णित संस्कृति से अनुशासित जन-समाज ही हर्ष कालीन सभ्यता का नियामक है ।

प्रजा तन्त्र जैसे देशों में भी हर परिस्थितियों में समान अधिकार सामाजिक हित के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होते अतः डा० द्विवेदी जी ने कथा साहित्य में संयम को महत्व दिया है ।

द्विवेदी जी के कथा-साहित्य में सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्य उभर कर प्रत्यक्ष हो उठते हैं निश्चय ही ~~भ~~ नारी के प्रति सम्मान की भावना, धर्म, नैतिकता, कला, परिमार्जित मान्यताओं व संयम का

---

§1§ The removal of religion as the illusory happiness of the people is the demand for their real happiness Karl Mark

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - वात्स्यन्द्र लेख पृष्ठ सं० 157-158

उदात्त रूप उपन्यासों में परिलक्षित होता है । विभिन्न परिस्थितियों का समुद्र-मंथन कर मानव मूल्य रूपी रत्नों को उद्भासित करते हुये द्विवेदी जी ने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अपनी आस्था का परिचय दिया है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव - मूल्य

अध्याय - चार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में राजनैतिक

एवं आर्थिक मानव-मूल्य

अध्याय - चार

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में राजनैतिक और आर्थिक मानव मूल्य

(क) राजनैतिक मानव मूल्य -

मूल्य किसी एक व्यक्ति, जाति, धर्म या सम्प्रदाय की विरासत नहीं है। वह तो समूचे विश्व की परम्परित मान्यता है। मनुष्य इसलिए श्रेष्ठतम है, क्योंकि उसने हर परिवेश में हर सभ्यता में और राजनीतिक अर्थसत्ता में मूल्यों की धरोहर को संजोये रखा है। प्राचीन मध्यकाल में सामन्तवादी समाज की राजनीतिक प्रवृत्ति मूल्यों को बहुआयामी बनाती आयी है। हमारे भारत राष्ट्र का मनोबल भी इन मूल्यों के तिनकों से बने एक नीड़ की भाँति है जिसे समय के झंझावातों ने सदैव सुरक्षित रखा है। जहाँ तक राष्ट्रीय जीवन मूल्यों का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि आधारभूत मानवीय जीवन की नैतिकता इन्हीं मूल्यों में समाहित है।

पुनर्नवा उपन्यास में आर्यक शार्विलक मूल्यों के लिए ही युद्ध करते हैं और जन सामान्य की रक्षा करते हैं।

> "शार्विलक ने नागरिकों से अनुरोध किया कि वे विशाल भवन के प्रत्येक कमरे को देख आएँ। हो सकता है कहीं और भी किसी को बाँध दिया गया हो या मार डाला गया हो। यह भी आदेश दिया कि आर्य बसन्त सेना इस समय अचेतावस्था में हैं इसलिए इन्हें किसी एकान्त कक्ष में रखा जाय जहाँ वायु और प्रकाश मिले सके और उनकी सखी मदनिका के होश में लाने

का प्रयत्न किया जाय जिससे वह उनकी सेवा कर सके । "।1।

मादी को छबीला पण्डित छुटकारा दिलाना चाहता है । छबीला पण्डित अर्थात शार्विलक राजनैतिक कुचक्रों से भली-भाँति सजग है । वह मादी के कानों में अपने आने की बात कहता है । शार्विलक नगर के बाहर के कोलाहल से भी सचेष्ट है । उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भीड़ दूसरी ओर भाग रही है । पहले तो उसे संदेह हुआ कि कदाचित भानुदत्त के सिपाही फिर लौट आए । उसने श्रुतिधर से आकर कहा - आर्य ! आपसे कुछ बात करने का अवसर भी नहीं मिला। जान पड़ता है कि दुर्वितों ने फिर नागरिकों पर हमला कर दिया है । मैं फिर युद्ध भूमि में जा रहा हूँ लेकिन एक बात पूँछ लेना चाहता हूँ कि चन्द्रसेन के परिवार का क्या हाल है । वे लोग सुरक्षित तो हैं । श्रुतिधर ने कहा- बातें तो तुमसेबहुत कहनी परन्तु अभी इतना जान लो कि चन्द्रसेन का परिवार अभी सुरक्षित है परन्तु स्वयं चन्द्रसेन का कुछ पता नहीं चल रहा है । मैं, मैं तो बसन्त सेना के पास एक संदेशा लेकर आया था और यहीं फँस गया ।

यह राजनैतिक मूल्यों की राज्य क्रान्ति का उदाहरण है । गोपाल आर्यक पालक को मारने पर विवश हो जाता है और भीड़ उल्लसित होकर इधर-उधर भागने लगती है । पहले केवल भानुदत्त के गुण्डे ही उत्पात कर रहे थे, अब राजकीय सेना भी उत्पात करने में जुट गयी है । ऐसी स्थिति में प्रजा की रक्षा करना परम कर्तव्य है । राजभवन के बाहर शार्विलक ने देखा कि पालक के सैनिक व्यूहबद्ध होकर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं । अब नागरिक उसका प्रतिरोध करने

।1। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 208

का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्यों ही शार्विलक नागरिकों के मध्य पहुँचता है त्यों ही नागरिकों में अभूतपूर्व उत्साह भर जाता है।

> "इसी समय कोई डुग्गी पीटता हुआ। घोषणा करने लगा कि पालक मार दिया गया। गोपाल आर्यक राजसिंहासन पर अभिषिक्त हो रहे हैं। घोषणा सुनते ही शार्विलक अपनी तलवार उछालते हुए बोला - बोलो गोपाल आर्यक की जय। सहस्र-सहस्र कण्ठों ने दुहराया, गोपाल आर्यक की जय, गोपाल आर्यक की जय। आश्चर्य के साथ देखा गया कि अनेक सैनिक भी गोपाल आर्यक का जयनाद करने लगे। अधिकांश नागरिकों की ओर आ गए और जो बचे थे, भाग खड़े हुए।" ॥1॥

शार्विलक ने आदेश दिया कि नगर में अरक्षित अवस्था बहुत है। आप लोग नगर की रक्षा के लिए चौराहे पर खड़े हो जायँ, जो कोई भी लूट-पाट, मार-काट या धर-पकड़ करता है, उसे तुरन्त दण्ड दिया जाय। नगर में शान्ति स्थापित करें, यही इस बात का प्रमाण होगा कि आप लोगों ने सचमुच गोपाल आर्यक का नेतृत्व स्वीकार कर लिया है। शार्विलक ने पुन: आदेश दिया कि तुम्हारा राजनैतिक दायित्व है कि राज भवन की रक्षा की जाय।

मथुरा में श्यामरूप समुद्रगुप्त के साथ राजनैतिक ऊहापोहात्मक वृतान्त प्रस्तुत करता है। वृद्ध ने चिन्ता कातर देखकर श्यामरूप को आश्वासन करते हुए कहा -

- -

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - पुनर्नवा पृष्ठ सं0 21।

> "राजनीति में यह सब हुआ करता है, बेटा,
> सुना गया है कि समुद्रगुप्त अब पछता रहा है
> और वह आर्यक जैसे सेनापति को कभी हाथ से
> न जाने देगा । फिर ये सब सुनी-सुनायी बातें
> हैं, इनमें कितना सच है और कितना झूठ, यह
> कौन बता सकता है । मथुरा में रहोगे तो रोज
> ही नए-नए समाचार सुनोगे । सब बातों को सच
> मान लेना बुद्धिमानी नहीं है । राजनीति में
> बहुत सी बातें जान बूझ कर तोड़ी-मरोड़ी जाती
> हैं । तुम चिन्ता न करो बेटा, आर्यक निश्चित
> रूप से फिर समुद्रगुप्त का सेनापति बनेगा ।
> मथुरा की हालत तो आजकल बहुत बुरी है, कौन
> जाने तुम्हें किसी दिन यहीं पर गोपाल आर्यक
> से मिलने का अवसर मिल जाय । " {1}

श्यामरूप तो गोपाल आर्यक की राजनीतिक कहानी सुनने को उत्सुक था । मथुरा के भाग्य का लेखा-जोखा उसके लिए विशेष महत्व की बात नहीं थी । वृद्ध श्यामरूप से हँसते हुए कहते हैं कि बेटा, तुम्हें अपने गाँव के लड़के की चिन्ता है मुझे सारी मथुरा की । सुना है कि इन दिनों समुद्रगुप्त गोपाल आर्यक की वीरता से प्रभावित हुआ और दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गयी । वह गोपाल आर्यक को अपने साथ पाटलिपुत्र ले गया गोपाल को एक छोटी सी सेना देकर हलद्वीप पर आक्रमण करने के लिए भेजा । लोग बताते हैं कि हलद्वीप के राजा से गोपाल आर्यक की अनबन हो गयी थी । आर्यक ने उस राजा को

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा -पृष्ठ सं0 77

पराजित किया और हलद्वीप के राज्य पर अधिकार कर लिया । समुद्रगुप्त ने आर्यक को हलद्वीप का राजा घोषित करवा दिया । इधर समाचार आए हैं कि समुद्रगुप्त अब पाटलिपुत्र के सिंहासन पर विराजमान है और गोपाल आर्यक को उसने महाबलाधिकृत के पद पर अभिषिक्त किया है ।

वृद्ध की आँखों में हलद्वीप के प्रति बेहद लगाव है । वह हलद्वीप का नाम लेते ही अपनी गहरी मर्मान्तक पीड़ा को अभिव्यक्ति करने लगता है ।

> "सुना है कि हर लिच्छवि राजकुमार ही होता है । शक्ति और श्रद्धा दोनों के ये धनी हैं । कोई पचास लिच्छवि युवक एक ओर थे और आर्यक अकेला । जिन दुर्दान्त लिच्छवियों ने किसी का लोहा नहीं माना वे आर्यक के बाहुबल का लोहा मान गए । सुना जाता है कि वह अकेला ही शस्त्र-सज्जित लिच्छवि व्यूह में इस प्रकार घिर गया जैसे मदमत्त हाथियों के झुण्ड में कोई किशोर सिंह शावक घिर गया है । पहर भर तक वह अकेला ही जूझता रहा लेकिन अन्त में लिच्छवियों ने उसे बन्दी बना लिया . . . . लिच्छविगण वीरों का सम्मान करता है । तुमने उस गण की मर्यादा को कलंकित किया है । उसने गोपाल आर्यक का राजकीय सम्मान किया । उसकी पत्नी को लौटा दिया और उसे समस्त लिच्छवि गण राज्य में स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करने की आज्ञा दे दी । " §1§

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा पृष्ठ सं० 75

राजनैतिक मोड़ों का घटना-चक्र पुनर्नवा उपन्यास में बाहु-पराक्रम, धृति-साहस, बुद्धि-चातुर्य जैसे मूल्यों को समेटे हुए है ।

पुनर्नवा की राजनैतिक पृष्ठ भूमि युद्ध, स्वामित्व, अस्तित्व के मूल्यों को लेकर रची गयी है । यद्यपि उसमें दार्शनिक पटाक्षेप भी है-

"आर्य क्षमा करें, मैंने भी कई बार रम्य वस्तुओं को देखकर मधुर शब्दों को सुनकर अकारण उत्सुकता अनुभव की है । जाने क्यों हृदय मसोस उठता है जैसे कोई पुराना सम्बन्ध हो पर याद न आ रहा हो । अच्छा आर्य, क्या यह नहीं हो सकता कि पूर्व जन्मों में कोई सम्बन्ध इन वस्तुओं से रहा हो और अब याद नहीं आ रहा केवल चित्त-भूमि पर अस्पष्ट रेखा रह गयी है । देवरात को यह बात बहुत अद्भुत लगी । " {1}

देवरात ने अनुभव तो किया है और इसी अनुभूति जनित सत्य के आधार पर उन्होंने कुलूत देश के राजनैतिक पृष्ठ भूमि को त्यागा था । युवक कभी कह जाता है कि वह किसी असामान्य महानुभाव को देख रहा है। विधाता ने देवरात को धरती पर प्रकाश देने के लिए भेजा है । देवरात को लगा जैसे कोई वेदना हृदय में चिपके हुए शल्य को उखाड़ने के लिए हिला रही हो । यह वेदना बड़ी ही दारुण सिद्ध हुयी । चन्द्रमौलि को ऐसी आशा नहीं थी कि बात इस प्रकार व्यथा वाली दिशा में मुड़ जायेगी । उसने बात खूब मोड़ते हुए कहना शुरू किया कि मनुष्य बनाए हुए विधान, विधाता के बनाए हुए विधानों से टकराते हैं, उन्हें मोड़ते हैं, बन्द कर देते हैं । वह राजनैतिक द्वन्द और विषम

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा पृष्ठ सं0 128

परिस्थितियों का चित्रण करता है । गोपाल आर्यक के राजनैतिक शौर्य का जब वर्णन होता है तो देवरात का हृदय धक-धक करने लगता है । आर्यक गुप्त सम्राटों के सेनापति हैं और उनके अनुपम शौर्य की कहानी जनपद में गूंज रही है । उसने विचार किया कि आर्यक को विधाता ने अपार सामर्थ्य देकर दुखियों का दुःख दूर करने के लिए इस धरती पर भेजा है । सचमुच आर्यक के राजनैतिक उत्थान का संदेश देवरात को बहुत प्रिय लगता है क्योंकि इस संदेश में गुरु-शिष्य के जीवन-मूल्य का भी एक नाता जुड़ा हुआ है ।

अनामदास का पोथा एक दार्शनिक उपन्यास कृति है । फिर भी उसमें मानवीय दुर्बलताओं-सबलताओं का चित्रण किया गया है । धर्म कर्तव्यों का आचरणों का इस कृति में बहुत उल्लेख किया गया है । राजा से लेकर रंक तक की बात को वर्णित किया गया है । ऋषि-मुनि से लेकर अत्यज तक की बात को इस कृति में कहा गया है । ब्रहम से लेकर शरीर तक की बात को इस कृति में कहा गया है। साधक से लेकर साध्य तक को इस कृति में वर्णित किया गया है । जीवन के गूढ़ से गूढ़तर महत्व का प्रतिपादन इस कृति में किया गया है । इस कृति के दार्शनिक आयामों को विराट तत्वों पर दर्शाया गया है । जैसा कि आज तत्वज्ञानी कहने लगे हैं कि ईश्वर या ब्रहम की सत्ता मानें बिना भी धर्म का आचरण किया जा सकता है जो अपने आपको सुख-सुविधा का ध्यान न रखकर दूसरों के दुख दूर करने का प्रयास करता है, सत्य से च्युत नहीं होता है, दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए अपना प्राण तक त्याग सकता है, वही धार्मिक है । वह परम या चरम तत्व के बारे में क्या मानता है, यह बड़ी बात नहीं, बड़ी बात है कि वह कैसा आचरण करता है । औरों के साथ कैसा व्यवहार करता है ।

राजनीतिक पृष्ठभूमि में जाबाला राजकुमारी के जीवन-मूल्यों का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार उसके इतिहास वृत्त को निरूपित करता है -

"जाबाला राजा जानश्रुति की इकलौती दुलारी कन्या थी । बड़े लाड़-प्यार में उसका लालन-पालन हुआ था । लड़की बहुत बुद्धिमती थी । राजा जानश्रुति ने उपयुक्त अध्यापकों को लगाकर उसे पढ़ने-लिखने में चतुर बनाया था । यद्यपि राजा का वैभव बहुत अधिक था वह तो बैलों की खेती करता था । अनेक दास-दासी उसके यहाँ नियुक्त थे । जाबाला को कुछ करने की आवश्यकता नहीं थी परन्तु फिर भी वह खेतों पर जाती और कर्मकारों के साथ खेती-बारी का काम देखती और अपने हाथों से गाय-बैलों की सेवा भी करती थी । राजा जानश्रुति आस-पास के गाँव में सबसे सम्पन्न व्यक्ति थे । उनकी रूपवती और गुणवती कन्या को प्राप्त करने के लिए अनेक राजकुमार प्रयत्नशील थे । परन्तु जाबाला कुछ विचित्र स्वभाव की लड़की थी । उसे अपनी विद्या और ज्ञान पर गर्व था । वह ऐसे किसी से विवाह नहीं करना चाहती थी जो ज्ञान और विद्या में उसके समकक्ष न हो । राजा जानश्रुति लाड़-प्यार में पली अपनी बेटी के योग्य वर नहीं खोज पा रहे थे क्योंकि उनकी जाति के लोगों में पढ़ने-लिखने

> का विशेष चलन नहीं था । अच्छे पढ़े-लिखे
> युवक ब्राह्मण और क्षत्रियों में ही प्राप्त हो
> सकते हैं । जाबाला की प्रखर बुद्धि की समकक्षता
> बहुत थोड़े ही कर सकते थे । इस प्रकार माँ-बाप
> की लाड़ली जाबाला का विवाह कार्य रुका
> हुआ था । " (1)

राज घरानों और जन सामान्य परिवारों में भी जीवन मूल्य विविध आयामी होते हैं । आचार्य औदुम्बरायण जानश्रुति राजा के शुभचिन्तक और संरक्षक हैं । एक दिन आचार्य की एक महात्मा से भेंट होती है । आचार्य उस महात्मा से मिलकर निराश होते हैं । वह सिद्ध महात्मा ऋषिकुमार रैक्व है जिसके जीवन-मूल्य परम्परा या परिपाटी से बँधे हुए नहीं हैं । किन्तु आचार्य का अनुभव उस सिद्ध पुरुष के प्रति कुछ विचित्र सा ही है । क्योंकि आचार्य ने सुन रखा है कि वह सिद्ध पुरुष यज्ञ का विरोधी है, ब्राह्मणों का विरोधी है, देवताओं का विरोधी है, यहाँ तक कि एकान्त के तप और मनन का भी विरोधी है । रैक्व दीन-दुखियों का हिमायती है उसने राग-द्वेष, तृष्णा, लोभ सबसे अलग हटकर जनसामान्य के मध्य विचार यापन करने का संयोग ढूँढा है । रैक्व गाँव जाकर राजा और राज्य की मूल्यवत्ता को समझ लेना चाहता है । इधर औदुम्बरायण भी राजा जानश्रुति को प्रजा के कष्ट का ज्ञान कराता है -

> "आचार्य ने कहा- महाराज, दोष तुम्हारा भी है
> और मेरा भी है । राजा जब तक स्वयं जागरूक न
> हो तो राज्य कर्मचारी शिथिल हो जाते हैं । मुस्तैदी

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा- पृष्ठ सं० 325

के साथ काम नहीं करते। राजा को चिन्ता
में डालने की आड़ में वे स्वयं निश्चिन्त हो
जाते हैं। राज्य कर्मचारियों को निरन्तर
कसते रहना पड़ता है। वह उन्हें नहीं किया।
दोष भ हमारा भी है। मैं कहूँ दोष हमारा
ही है।" (1)

प्रजा के प्रति राजा का बहुत बड़ा कर्तव्य है कि वह उनके हित-चिन्तन में सदैव कार्य करे। आचार्य औदुम्बरायण ठीक ही कहते हैं कि दुर्भिक्ष की स्थिति में राजा को प्रजा के प्रति बहुत कुछ करना है। राजा ने उस जीवन मूल्य को यहाँ प्रकट करना चाहा है जिससे प्रजा का भला हो सके। उपन्यासकार इन्हीं मूल्यों के लिये व्यक्तिगत जप-तप से भी अधिक समर्पित है। मानव-जीवन में सदैव यह बोध होना चाहिए कि आत्मप्रकाश तभी प्रकाश है जब वह जन-जीवन के लिए अन्धकार दूर करने का साधन बन सके। राष्ट्र के राजनैतिक उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं परन्तु सबसे बड़ी अवधारणा तब दर्शन बन जाती है जब राजा-प्रजा में जीवन परक आवश्यकताओं का आदान-प्रदान सहजता से होने लगता है। ऋतुका का पति जाबाला के रथ को हाँकते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ऋतुका जैसी साधारण नारी के प्रति रैक्व ऋषि का ध्यान जाना एक बहुत बड़ा मूल्य है। इसीलिए माताजी ऋषि कुमार के सम्बन्ध में गर्वोक्ति के साथ कहती है कि -

" बेटा तुम निश्चित रूप से बुद्धिमान हो तपस्या
और ब्रह्मचर्य का पालन कर चुके हो। स्वयं परीक्षित
सत्य पर आस्था रखते हो और सबसे बढ़कर तुम मेरे

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं० 380

> पुत्र हो । तुम्हें पूर्ण रूप से शास्त्रज्ञ बनना है । उसके बाद सभी बातों को शास्त्रीय विधि से परीक्षा करने के बाद तुम्हारे अन्तर्यामी वैश्वानर जैसा कहें, वैसा ही करो । यह बात कभी मत भूलना कि ऐसा तप वास्तविक तप नहीं है जिसमें समस्त प्राणियों के सुख-दुख से अलग रहकर केवल अपने-आप की मुक्ति का ही सपना देखा जाता है । सारा चराचर जगत उसी परम वैश्वानर का प्रत्यक्ष विग्रह है जिसका एक अंश तुम्हारे अन्तरतर में प्रकाशित हो रहा है । सत्य से च्युत न होना, धर्म से च्युत न होना, निखिल चराचर रूप परम वैश्वानर को न भूलना । "(1)

रैक्व की भाँति शुभा भी अर्थात जाबाला (राजकुमारी) वैश्वानर के ही तेजोमय अमृत रूप को आश्रय दिए हुए है । उसकी मान्यता है कि यह जो मनुष्य भाव है, प्रेम है, मैत्री है, चाहें है, अभिलाषा है, तद्रूप है व्याकुलता है, यह मनुष्य भाव भी सब प्राणियों को मधु समान प्रिय है । इस मानस भाव में जो तेजोमय, अमृतमय पुरुष है वह समष्टि रूप ब्रह्माण्ड की आत्मा है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में जो तेजोमय पुरुष है वह व्यष्टि पिण्ड की आत्मा है । आत्मा ही अमृत है । आत्मा ही ब्रह्म है और आत्मा ही सब कुछ है । हमारे मन में जो प्रेम अकस्मात उदय हो जाता है और सारे जगत को मधुमय बना देता है । राजा के राजनैतिक जीवन दर्शन में भी वही प्रेम होना चाहिए । रैक्व और जाबाला दोनों ही इसी प्रेम-प्रवाह में सारे जागतिक सम्बन्धों से ऊपर उठ जाते हैं । रैक्व कर्मपद पर विश्वास करता है । वह हथेलियों की

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा- पृष्ठ सं0 42।

रेखाओं पर विश्वास नहीं करता । जटिल मुनि दार्शनिक विसंगतियों को आज के सह-सम्बन्धों पर दृश्यमान मानते हैं । जब जटिल मुनि बोलते रहे तब रैक्व कहने लगे कि हस्त रेखा देखकर भाग्य की बात करने का अर्थ तो यह हुआ कि मनुष्य को कुछ करने-धरने की आवश्यकता नहीं है। मुनि ने बताया कि मनुष्य को करने के लिए बहुत कुछ पड़ा है, जिसे लोग दुर्भाग्य कहते हैं वही उनकी सिद्धि है -

> " देखता हूँ आयुष्मान तुम वृथा मोह के चक्कावें में भटक गए हो । विधाता ने तुम्हें सब प्रकार से निश्चिन्त कर दिया था । माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, बहिन नहीं, द्वार नहीं यही तो महात्मा कठोर तपस्या के बाद सिद्धि रूप में प्राप्त करते हैं । तपस्या का फल न होता है प्यारे, कि आदमी में कोई ममता न बचे । मम, मेरा कहा जाने वाला कुछ न रहे । "§1§

व्यक्ति जब संसार से मोह-मुक्त हो जाता है तब उसका सच्चे मायने में मोक्ष हो जाता है । रैक्व साधु-ऋषियों और राज परिवार की नीति में उलझ जाता है । जाबाला इस दर्शन को समझती है । जाबाला और आचार्य औदुम्बरायण के सम्वाद का सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक अर्थ निरूपित होता है । जाबाला ने पूछा था कि कन्यादान का अर्थ क्या है । पिता किसी को कन्या दे तो उसे कन्यात्व ही दे सकता है पर पत्नीत्व नहीं दे सकता है । यह शब्द ही गलत बनाया है। आचार्य ने अनेक धर्म-सूत्रों का हवाला देकर बताया था कि वह केवल रूढ़ि शब्द मात्र है । पिता केवल रक्षण, भरण-पोषण का उत्तरदायित्व

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 456

योग्य वर को सौंप देना है, वह कन्या का नहीं उसके भरण-पोषण के दायित्व का दान करता है । जाबाला इस पर आपत्ति करती है । उसे यह अर्थ बनावटी लगा था । अगर सचमुच पिता कन्या को किसी व्यक्ति को पत्नी के रूप में नहीं देता तो विवाह अत्यन्त गर्हित विधान है । जाबाला को लगा था कि समाज के परम्परित मूल्य किसी राजनीतिक यात्रा के सहभागी है, वे स्वस्थ जीवन के स्वस्थ्य मानदण्ड नहीं, परन्तु जाबाला रैक्व के भावनात्मक प्रणय में इतनी अधिक आबद्ध हो चुकी थी कि उसे रैक्व के प्रति वैवाहिक कल्पना का आभास होने लगा था ।

> " वह बेचारा क्या जाने कि विवाह क्या होता है जाबाला को अपने ऊपर ही हँसी आ गयी । किसी ने तो नहीं कहा कि उसका विवाह रैक्व से होने जा रहा है या होने की सम्भावना है । फिर यह विवाह के बारे में ही क्यों सोच रही है । रैक्व के चाहने न चाहने का प्रश्न ही कहाँ उठता है, यह तो उसके अपने ही मन का चोर है । " §1§

राज परिवार की कन्या जाबाला जीवन-मूल्यों को तर्क की कसौटी पर कसना चाहती है । वह अपने भीतर बैठे देवता के प्रति मौन स्वीकृति देती है । वहपरम प्रेमी को निरन्तर अपेक्षित समझती है । इसलिए जाबाला का मन रैक्व के प्रति बन्धनों से दूर रहकर भाव-प्रवरता में जी जाना चाहता है । उसमें संकल्प शक्ति है जिसके आधार पर वह बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के विचारों को तर्क संगत बना देता है । आत्म जनित तेजस्व उसके भीतर है, यह अत्यन्त उल्लसित भाव से भीतर के भाव को बाहर के जीवन में दीन-दुखियों की सेवा करते हुए उड़ेल देना चाहता है ।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 448

बाण भट्ट की आत्मकथा उपन्यास में राजनैतिक प्रचण्डता, उष्णता अबाध गति से प्रवाहमान है । निपुणिका द्वारा भट्टिनी को मुक्त कराना ही राजनैतिक मूल्यों की शुरूआत है । बाण भट्ट निपुणिका के निर्देशानुसार भट्टिनी को मुक्त कराने में सफल होता है । बाणभट्ट राज वैभव के संकुल मार्गों तथा दिग्दर्शन पर टिप्पणी करता हुआ कहता है-

"निपुणिका ने बार-बार छोटे राजकुल की बात बतायी थी । मुझे उस समय राजकुल की अपेक्षा छोटा शब्द ही ज्यादा मुखर जान पड़ा था इसलिए मैंने मन ही मन एक छोटे अन्त:पुर की कल्पना की थी । पर द्वार पर आते ही मुझे अपनी धारणा बदल देनी पड़ी . . . . मेरे सामने लौहार्गल-युक्त विराट कपाट और सशक्त रक्षक न होते तो मैंने उस चाँदनी रात में इस विशाल राजकुल को एक घना जंगल ही समझा होता । उस समय मुझे ठीक मालूम नहीं हो सका । कि इस राजकुल का बहिर्प्रकोष्ठ किधर है हम दोनों भीतर चले गए । थोड़ा चक्कर काटकर हम अन्त:पुर पहुँचे . . . . . हम अभी पुष्प-गुल्मों की वीथी में ही थे कि दो परिचा--रिकाओं को द्विपदीय खण्ड का गान करते अपनी ओर आते हुए देखा । उनके हाथों में आम की मंजरी थी, और वे उन्मुक्त भाव से नृत्य कर रही थीं । " §1§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा- पृष्ठ 38-39

बाण को लग रहा था कि राजकुल-वैभव, ऐश्वर्य और उन्मत्तता के घर होते हैं । उसे प्रतीत हुआ कि राजकुल के भीतर और बाहर उन्मत्त आक्रोश की आँधी बह रही थी । बाण भट्ट निपुणिका के साथ जब अन्दर पहुँचा तो देखा कि वह एक नयी चिड़िया की भाँति जाल में फँस गया । निपुणिका सबसे कहती रही कि यह मेरी सखी गाँव से आयी है । रीति-नीति नहीं जानती । बाण भट्ट कहता है कि जिस नयी बहू को प्रमत्त वन में ले जाने के लिए छोटे महाराज ने रत्नहार का पुरस्कार प्रस्तुत किया था वही राजकन्या थी जिसके उद्धार के लिए मैं अन्तःपुर में चोरों की भाँति घुसा था । बाण भट्ट उस राजकन्या को स्वाभाविक संकोच छोड़कर देखता है । वह उस कन्या की मुक्ति की बात बार-बार सोचता है । इधर निपुणिका ने उस राजकन्या को बाण के बारे में सब कुछ बता दिया । इस दृश्य का चित्रण उपन्यासकार ने यों किया है -

> " निपुणिका ने आगे जाकर बहुत धीरे-धीरे कुछ कहा, उसने मेरे विषय में कुछ गोपनीय नहीं रखा क्योंकि एक क्षण ही राजकन्या के नयनों में लज्जा का भाव उदय हुआ उसके धवला-धमान कपोलों पर लज्जा की लालिमा दौड़ गयी । वह क्षण भर के लिए कुछ म्लान हो गयी । उस समय मुझे अपने अनाधिकार प्रवेश पर बड़ा क्षोभ हुआ । लेकिन, निपुणिका ने क्या कहकर उसे सँभाल लिया । राजकन्या ने पंक्षिम-नेत्र-पाद से मेरी ओर देखा और फिर महावराह की ओर कातर भाव से ताका । उसकी आँखों से धारा बह चली । स्पष्ट ही

उस कातर दृष्टि का अभिप्राय यह था कि हे इष्ट देव, अभी और क्या-क्या दिखाओगे...
......राज कन्या ने मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा । मैंने धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता से कहा, "आर्ये, अभागे दक्ष को एक पुण्य कार्य करने का अवसर मिला है । साहस करो । यमराज भी तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता "
निपुणिका ने एक बार मेरी ओर देखा और राजकन्या के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना मुझसे कहा, "भट्ट, नेपथ्य उतार दो, महावराह का प्रसाद वस्त्र धारण करो और प्रान्त वृक्षों की शाखा के सहारे चहार दीवारी लाँघ जाओ । फाटक पर हमारी प्रतीक्षा करना।
मैं सब समझ गया । वाटिका के एक प्रान्त में जाकर मैंने पुरुष वस्त्र धारण किया । निपुणिका की सखी का नेपथ्य उसे ही देकर मैं एक नातिदीर्घ शिरीष-वृक्ष पर चढ़ गया और बाहर आकर राजमार्ग पर खड़ा हो गया । नाग उस समय उनींदा था । मैं दूर खड़ा प्रतीक्षा करने लगा । उस समय चन्द्रमा मध्य आकाश में आ गया था, ऐसा जान पड़ता था कि वह शुक्ल-वसन-धारिणी धरित्री के ललाट का चन्दन तिलक है । क्या आज धरित्री ने भी अपने उद्धार-कर्ता महावराह की पूजा की है । " (1)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा- पृष्ठ सं044, 45

राजनीतिक स्तर पर मूल्यों में बहुत गिरावट आ गयी है। बाण भट्ट कुमार के कोप का भाजन बनता है क्योंकि भट्ट स्थाण्वीश्वर में राज्य करने वाले राजवंश के कलंक से परिचित हो गया है। उसे- स्थाण्वीश्वर के लंपट राजपुर के अन्त:पुर के विषय में चिन्ता नहीं है। जहाँ चौर्य लब्ध अत्याचार की बधुएँ वास करती हैं उसअन्त:पुर की कोई मर्यादा नहीं होना चाहिए। व्यक्ति साम्राज्य-गर्व में अन्धा हो जाता है। बाण ने भट्टिनी को मुक्त करके अपने ब्राह्मणत्व का मूल्य वरण किया है। उसने नारी के देह-मन्दिर की अर्चना की है, भले ही राजोचित सम्मान करना नहीं जानता हो। बाण की मान्यता है कि देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या को अपमानित करने वाले राजकुल को प्रश्रय देने वाले राजवंश ने अपने को पूज्य-पूजन के अयोग्य सिद्ध कर दिया है। वह देव पुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या की प्रतिष्ठा और मर्यादा के रक्षक के रूप में बोलता है। आचार्य ने उसे कुमार को राजनैतिक मूल्यों का पाठ पढ़ाते हुए शिक्षा दी -

> "साधु वत्स, तुमने देवपुत्र की मर्यादा के अनुकूल कहा है और कुमार तुम धीर हो, विवेकी हो, तुम्हें स्थाण्वीश्वर के कलंक पंक को धो डालने का पवित्र कार्य करना है। तुम्हीं इस पवित्र कार्य को कर सकते हो। दूध का जला मठा फूंक कर पिया करता है न कुमार, तुम्हें आयुष्मती चन्द्र दीधिति के सम्मान का ध्यान रखना होगा। एक बार प्रत्यन्त देश की ओर देखो...... सम्राट चन्द्रगुप्त की कीर्ति आज तक चन्द्र किरणों की भाँति धवल है.... इस कार्य में देवपुत्र को तुम्हें मित्र बनाना है।

उस मित्रता के लिए तुम्हें आयुष्मती चन्द्र
दीधिति का छन्दानुरोध करना पड़ेगा और
उसकी विपत्ति के अकारण बन्धु बाण भट्ट
की वाणी का उचित सम्मान करना होगा।"ॄ1ॄ

ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व जब जागता है तो वह मनुष्यत्व के मूल्यों को वरण कर लेना चाहता है। मनुष्यता बहुत बड़ी चीज है। बाणभट्ट इसी मनुष्यता का कायल है। बाण उस समय और अधिक उग्र हो जाता है जब उसे स्मरण हो आता है कि यह उसी देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या है जिनके प्रताप से प्रतिपक्षी राज्य काँपते थे। आज उसी की मुक्ति के लिए सचेष्ट प्रयत्न करना पड़ रहा है। बाण भट्ट ने कृष्णवर्धन की हृदयस्थित शीतल प्रेम-धारा को और उसकी उष्णधार को पहचान लिया। कुमार का मुख-मण्डल शान्त था, उससे एक स्निग्ध प्रभा निकल रही थी जो दर्शक को अभय देती जान पड़ रही थी। मेरी दृष्टि का अर्थ कुमार ने पहचाना। निपुणिका का अनुष्ठान भट्टिनी के मुक्त हो जाने पर पूरा हुआ। इधर भट्ट संसार के सम्बन्धों से रहित व्यग्रता से आकुल है। उसे कुमार की ज्येष्ठता वह अच्छी लगती है जिसमें सम्बन्धों के निर्वाण का रूप हो। कुमार के इस रूप का भट्ट निवेदक है, वह अभिमान के बोझ से हृदय को मुक्त करना चाहता है। उसे अच्छा नहीं लगता था कि कोई भट्टिनी और निपुणिका के बारे में अप्रासंगिक तर्क प्रस्तुत करे। कुमार ने जरा व्यथित स्वर में कहा -

"आज सायंकाल तुम्हें चल देना होगा भट्ट।
राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है,
असिधारा से भी अधिक दुर्गम है, विद्युत शिखा

- -

ॄ1ॄ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 6

से भी अधिक चंचल है । तुम्हारा और भट्टिनी का यहाँ रहना तब उचित नहीं है जब तक अनुकूल अवसर न आ जाय । तुमने कल अपने को देवपुत्र नन्दिनी का अभिभावक कहा था । तुम निश्चय ही उस महान उत्तरदायित्व के योग्य हो । परन्तु तुम्हें मालूम नहीं कि इस पद को पाकर तुमने अपने को राजनीति के आवर्त संकुल तरंग में छोड़ दिया है । तुम्हारे मनोविकार बहुत स्पष्ट होते हैं क्योंकि तुममें अशुचि कूटनीति का लेश भी नहीं है । पर तुम्हें अपने को देवपुत्र नन्दिनी का उत्तम अभिभावक बनना है । तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मैं भी करता हूँ परन्तु जो समाज व्यवस्था झूठ को ही प्राश्रय देने के लिए तैयार की गयी है उसे मानकर यदि कोई कल्याण कार्य करना चाहो तो तुम्हें झूठ का ही आश्रय लेना पड़ेगा । "।1।

सत्य इस समाज व्यवस्था में प्रच्छन्न होकर वास कर रहा है । इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी बात को ज्यों का त्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है, सत्य वह है जिससे लोक का अत्यान्तिक कल्याण होता हो । ऊपर से वह कैसा भी झूठ क्यों न दिखायी देता हो, वही सत्य है । बाणभट्ट जो भट्टिनी की सेवा इसलिए करनी है कि उसकी दृष्टि में वह सत्य है । बल्कि इसलिए कि उनकी सेवा और बाण लोक का कल्याण करने जा रहा है । लोक कल्याण प्रधान वस्तु है- वह जिससे

।1। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 97

सधाता हो वही सत्य है । औषधि के समान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है । हमारी राजनीतिक व्यवस्था ही ऐसी है कि उसमें सत्य अधिकतर स्थानों में विष का काम करता है । कुमार कृष्ण वर्धन बाणभट्ट को मानव मूल्यों की बात बताकर लोक कल्याण में निरत रहने के लिए प्रेरित करता है । इधर भट्टिनी राजनीतिक परिवर्तन में आबद्ध अपनी स्थिति को सशंकित रूप में देखती है -

> "भट्टिनी की आँखों में आँसू आ गए, उन्होंने छिपाने के लिए मुँह फेर लिया फिर आँचल से मुँह फेरकर मेरी ओर देखने लगी । उनके मुख पर तब भी गीली-गीली हँसी सटी हुई थी । उस हँसी का अर्थ मैंने समझा । उसमें कृतज्ञता थी पर भरोसा नहीं था । मानो वह हँसी ही उच्च स्वर से भट्टिनी के निगूढ़ मनोभावों को प्रकट कर रही थी । आश्वासन दे रहे हो इसके लिए कृतज्ञ हूँ पर तुम्हारी प्रतिज्ञा की रक्षा दुःशक्य है । " (1)

निपुणिका ने और भट्टिनी ने बाणभट्ट की आत्मशक्ति का ज्योतिर्मय रूप नहीं देखा था । इसलिए उसे आशंका घेरे हुए है । भट्टिनी अपनी मुक्ति की प्रतिज्ञा से बहुत आश्वस्त नहीं थी । इधर बाणभट्ट भट्टिनी को आशंका और प्रायश्चित की दुनिया से भी विमुक्त कर देना चाहता है । उत्तेजित होकर वह कहता है कि देवि, आप निर्मल अन्तःकरण पार्वती के समान हैं । गंगा के समान पुण्यकारी विचार-धारा है । राजनीति आपको विकृत नहीं कर सकती ।

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं0 10

चारुचन्द्र लेख के प्रथम अध्याय से ही राजनीतिक विविध आयामों की चर्चा शुरू हो जाती है। सिद्ध सामन्त युग में राजा और साधुओं का मेल राजनीति को दिशा देता है। उस युग में साधारण जनता और राजा के सैनिकों तक में यह विश्वास घर कर गया है कि यदि कभी आक्रमण हुआ तो शस्त्र-बल की अपेक्षा सिद्धों का मन्त्र-बल उनकी अधिक सहायता करेगा। सर्वत्र एक प्रकार की स्थिरता और लापरवाही का बोल-बाला था। कथाकार तत्कालीन राजतन्त्र का उल्लेख इस प्रकार करता है -

> "भारत वर्ष के उत्तरी भाग पर पूर्ण रूप से तुर्कों का राज्य स्थापित हो गया था। दक्षिण में गोपाद्रि दुर्ग तक वे बढ़ आए थे। और भी आगे बढ़कर पैर जमाने की कोशिश में थे परन्तु पूर्वी प्रदेश अभी तक उनके आक्रमणों से बचा हुआ था। मेरे गुप्तचरों ने पूर्वी प्रदेश के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ दी थीं वे बहुत उत्साह-जनक नहीं थीं। लोगों को बाहुबल की अपेक्षा तन्त्र-मन्त्र पर अधिक विश्वास था। नालन्दा के बौद्ध-विहार में अनेक प्रकार की वाममार्गी साधनाओं का अबाध प्रवेश हो गया था।" {1}

आज मन विश्वास नहीं कर सकता कि सिद्ध सामन्ती यह स्वरूप बहुत भरोसे का था। सिद्ध-सामन्तों के भरोसे ज्योतिष का आधार लेकर राजनीतिक घटनाओं का निर्णय इस उपन्यास में किया गया है। यह भी एक विचित्र संयोग है कि इस उपन्यास की महानायिका चन्द्रलेखा भी

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 267

तरुण-तापस की खोज में निकलती है । इधर राजा सातवाहन भी फकीर सीदी मौला की तलाश में निकल पड़ता है । दोनों ही सिद्धों-तापसों की तलाश में हैं और उसी तलाश में दोनों ही एक दूसरे के हो जाते हैं ।

> "चन्द्रलेखा ने कहा कि मैं तरुण-तापसी की खोज में निकली हूँ. . . . .तुम यदि उसे खोज सके । तो तुम मेरी सबसे बड़ी सेवा करोगे । मुझे और इस मृग दोनों को घोड़े पर बिठा लो और उस तापस की खोज करो.।.मैं.तुम्हारे इस रूप से जन्म-जन्मान्तर में भी उऋण नहीं होऊँगी. . . . .
> मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम जो चाहोगी वह सब करूँगा परन्तु मेरे साथ तुम घोड़े पर नहीं बैठ सकती । लोग क्या कहेंगे । इस पर तो मेरे साथ मेरी रानी ही बैठ सकती है । सहज भाव से उस युवती ने कहा, तुम मुझे रानी बना लो उस पर तापस की खोज अवश्य लो । " §1§

राजा सातवाहन और चन्द्रलेखा सहज भाव से एक हो जाते हैं वह तपस्वी की खोज कर लेते हैं । चन्द्रलेखा तापस के बताए हुए ज्योतिष से प्रभावित हो रही है । वह राजा सातवाहन से मिलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है । परस्पर बात-चीत करते हुए रानी ने सहजभाव से राजा सेकहा कि मैं गाँव की अबोध बालिका हूँ । मुझे शास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं परन्तु इतना तो मैं भी समझ सकती हूँ कि तुमने जो जोखिम उठाया है । राजा

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्रलेखा पृष्ठ सं0 274

सातवाहन चन्द्रलेखा को पाकर अपने जन्म-जन्मान्तर को कृतार्थ बनाता है। उसे इतनी अधिक तृप्ति मिल रही है जैसे कोई भीतर-बाहर-सर्वत्र अमृत-रस का लेप कर रहा हो । रानी का चेहरा आनन्द की दीप्ति से उद्भासित हो उठा, वह आत्म-शक्ति के बल पर सारे राजवैभव को बदल देना चाहती है । उसके सहयोग के लिए प्रजा भी तत्पर होती है । बोधा और मैना दोनों राज्य क्रान्ति में सहयोग करती हैं । चन्द्रलेखा भक्ती विष्णुप्रिया से भी प्रभावित है वह नाटी माता के प्रेरक रूप को राजनीतिक उपलब्धि मानती है ।

> "मुझे नाटी माता की चेतावनी याद आयी,
> रानी को प्रसाद रूप में ग्रहण करना होगा ।
> जिसे पा रहा हूँ वह नियन्त्रिता का प्रसाद
> है, उतना ही पवित्र, उतना ही महनीय, उतना
> ही काम्य. . . . .भगवान का प्रसाद कृतज्ञता
> के साथ, परितोष के साथ, निर्लोभ भाव से
> ग्रहण किया जाता है. . . . .रानी के केशों
> की लटें बुरी तरह उलझी हुई थीं । मैना की
> निपुणियाँ देर तक प्रयत्न करती हुई उन्हें सुलझा
> नहीं पायीं थीं, मैंने भी प्रयत्न किया देर तक
> वे मेरी गोद में मुँह छिपाए सुबकती रहीं।" (1)

इधर कुण्डकेश्वर चन्द्रलेखा को राजनीतिक विरोध स्वरूप मानता है इसलिए चन्द्रलेखा नाटी माता से बार-बार प्रेरणा लेकर वह युद्ध-स्थल में अपनी वीरता को राजा सातवाहन की रानी होने के नाते प्रमाणित

- -

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-चारुचन्द्रलेख पृष्ठ सं0 408

कर देना चाहती है । राजा सातवाहन रानी धुण्डकेश्वर पर क्रुद्ध सिंहनी की तरह टूट पड़ना चाहती है । रानी राजा को पीछे ठेलकर आगे बढ़ती है । वह अंधाधुंध तलवार चला रही थी वे भूल गयी थी कि युद्ध भी शिक्षा चाहता है । वे क्रुद्ध-क्षुब्ध अवस्था में दाएँ-बाएँ देखे बिना तलवार चलाए जा रही थीं । राजा ने देखा, सामने से शत्रुओं का बड़ी भारी रेला आ रहा है । रानी उसके धक्के को सम्भाल नहीं पायी । उसी बीच बोधा प्रधान आ गए और रानी को उठाकर कुटिया में ले गए । विकट युद्ध था । युद्ध का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने राजनीतिक युद्ध का निरूपण इस तरह किया है -

"मैं निर्द्वन्द्व होकर युद्ध में रम गया । कलहना अब भी जूझ रहा था पर उसकी जय ध्वनि क्षीण हो आयी थी । कुत्ते कदाचित मार डाले गए थे । मैंने अकेले ही शत्रु सेना को निःशेष करने का संकल्प किया । मैंने कुल देवता का स्मरण किया और अकेला ही घुँस गया परन्तु आश्चर्यों का तांता तो अब शुरू हुआ । विद्युत-रेखा की भाँति मैन सिंह न जाने कब मेरी बगल में डट गया था । उसने मुझे पीछे करके आगे बढ़ने का प्रयत्न किया.. .....पहाड़ों पर से दनादन पत्थर बरसने लगे । भयंकर गोला-बारी थी वह । शत्रु के पाँव उखड़ गए । दूर तक भागती हुई शत्रु सेना पर पत्थरों की वर्षा होती रही । बोधा-प्रधान ने गरज कर जय-घोष किया । महाराजा--धिराज सातवाहन की जय । " §1§

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारुचन्द्रलेख - पृष्ठ सं0 421

लड़ाई रुक गयी थी। अलहना रक्त से लथ-पथ हो गया था। वह बिल्कुल अधमरा हो गया था परन्तु धन्य है वह वीर बालक। हाथ का भाला नहीं छूट पाया। बोधा प्रधान भी निःशस्त्र निरीह होकर भी मृत्यु को ललकारते रहे। कितना दुरन्त्व साहस है। हाथ में एक डन्डा भी नहीं और भयंकर गोलाबारी में रानी को उठा लाए। इधर मैना तो बुद्धि, सेवा, साहस, रण-कौशल का परिचायक है। युद्ध कौशलता का भी एक मूल्यवादी दृष्टिकोण होता है। विजेता को फिर सारा जगत उत्सुकता से देखता है। युद्धोपरान्त राजा के दर्शन की ललक लिए हुए लोग एकत्र होते हैं। रानी उधर स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से विश्राम कर रही थीं। उनकी चेतना पूरी तरह नहीं लौटी थी। राजा ने सोत्साह रानी को कल्याण-रूप महादेवी की संज्ञा दी। रानी कहती हैं कि मैं पूर्ण स्वस्थ्य हूँ। मुझे खेद है कि मैं शत्रु-संहार में आपकी पूरी सहायता न कर सकी। मैं कब गिर गयी, पता नहीं, परन्तु मुझे लगता है कि मैं न गिरती तो बुरा होता। हर पाप का प्रायश्चित हो जाना अच्छा होता है महाराज मुझमें क्रोध आ गया था। मैं भूल गयी कि यह युद्ध व्यक्ति के विरुद्ध क्रोध या प्रेम के लिए नहीं लड़ा जा रहा है। जब मैं रण-स्थल में गयी थी तो मुझे युद्ध का ठीक-ठीक स्वरूप स्मरण था। पर वहाँ पहुँच कर मैं क्रोध की चपेट में आ गयी। मैना को क्रोध नहीं आया। बोधा को तो कभी आता ही नहीं। मैं ही पथ-भ्रष्ट हो गयी। वस्तुतः क्रोध झूठे अभिमान का चिन्ह है। हर काम में अपने को कुछ अधिक महत्वपूर्ण मानने का परिणाम है। राजा सातवाहन का राजनैतिक मूल्य है कि वह अविचल, धैर्यवान, स्थिति-प्रज्ञ और अहमिका से मुक्त राजयोगी है। राजा सातवाहन यथा नियम सिद्ध-सन्तों की सेवा करता हुआ राज्य का संचालन करता है। नाटी माता चन्द्रलेखा की मनोवैज्ञानिक विशेषता को व्यंजित करती है।

"मैं तो रानी के गुणों को देखकर चकित हूँ । कुण्ठा तो नारी को विधाता ने दे ही दी है । नारी की सबसे बड़ी विशेषता यह कुण्ठा ही है । वही उसकी दुर्बलता है, वही उसकी शक्ति है । नारी अपने को सबसे छिपाती है, स्वयं अपने आप से भी । यहाँ तक कि वह परमात्मा से भी अपने को छिपाती है । x x x x x रानी की कुण्ठा समाप्त होने का अर्थ यही है कि वे अपने को भगवान के निकट सम्पूर्ण रूप से अन अवकुण्ठित रखें, और बेटा पति को जो परमेश्वर कहा गया है उसका स्पष्ट अर्थ यही है कि नारी को यह सुविधा प्राप्त है । " §1§

उपन्यासकार राजनीतिक कुचक्रों के होने के बावजूद युद्ध स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य का अवगाहन जीवन-धारा के अनुरूप ही करना चाहता है ।

"सारी वन भूमि सूर्य देवता की लाल किरणों से स्नान कर रही थी । आकाश में यत्र-तत्र लाल-लाल मेघ-खण्ड इस प्रकार विराज रहे थे जैसे विकट युद्ध के बाद व रक्तारक्त कलेवर सैनिक विश्राम कर रहे हों । पक्षियों का दल आश्रम-वृक्षों की ओर दौड़ चला था । कार्कों की एक बड़ी सी सेना काँव-काँव करती हुई सैनिकों के मार्ग पर मँडराने लगी । जिस समय सारी सेना हमारी आँखों से ओझल हुई उसी समय थके हुए सूर्य का जरठ रथ-चक्र पश्चिम परिधि में जा डूबा । अंधकार बढ़ने लगा, आकाश में

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख- पृष्ठ सं० 426

तारक-पुंज दिखायी देने लगा । मेरे मन में एक
प्रकार की आशंका का धूम्र छा गया । बाहर
तो अंधकार था ही, भीतर उससे अधिक अन्धकार
छा गया । " ﴾1﴿

जीवन के चारों ओर ऐसे बहु आयामी चित्र हैं जिन्हें बाह्य और अन्तः मनोभावों से ठीक से देख सकते हैं । राजनैतिक सोच मानवीय गुणों से युक्त होकर सिद्ध सामन्त युग में मूल्यों की संरचना करता रहा है । इस सोच में सेवा का भाव, प्रतिदान की आकाँक्षा, साहसी और धैर्यवान रहने की तत्परता, वीरता, पराक्रम जैसे सद्गुणों की क्षमता, निरीह पर दया करने की ममता और आत्म बलिदान करने की समर्पित भाव-भूमि अन्तर्निहित रहती है । उपन्यासकार आचार्य द्विवेदी आज के परिवेश में जन्मी कुटिलता की राजनीति से दूर हटकर योद्धाओं-प्रच्छन्न स्पष्ट राजनीति की चर्चा इन उपन्यासों में करते हैं । उनकी राजनीति में शस्त्र और शास्त्र दोनों का ही मणि कंचन योग है । सिद्ध-सामन्त दोनों ही मानव-कल्याण के निमित्त जीवन-व्यूह की संरचना करते हैं, जिससे स्त्री-पुरुष दोनों की ही सहभागिता वरेण्य है ।

﴾ख﴿ आर्थिक मानव - मूल्य :- मानव बुद्धि, विद्या तथा कौशल में समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ है । उसमें दया, करूणा, सेवा मैत्री आदि गुणों का समावेश है तथा साहित्य-संगीत की अभिरुचि भी उसके जीवन का उच्चतर आयाम पूरा करती है । भारत वर्ष में कृषि व्यवसाय आर्थिक पोषण का महत्वपूर्ण अंग रहा है । कुटीर उद्योगों को भी स्थान मिला है । कारीगरी, कला-कारी, अभिनय और रंग-मंच से जुड़े हुए सभी छोटे-बड़े धर्म-कर्मों का

- -

﴾1﴿ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-चारुचन्द्रलेख पृष्ठ सं० 448

आर्थिक उपादान रहा है । आर्थिक जीवन-मूल्य हमारी समूची व्यवस्था को प्रभावित करते हैं । भारत में नगर-सज्जा, मंच-सज्जा के उपकरणों को और उसके कर्मियों को तर्जीह दी जाती थी । ऋषि मुनियों के भी आश्रम कलाकारिता से परिपूर्ण रहते थे ।

लोक परम्पराओं में इन आर्थिक मूल्यों का विशेष स्थान रहा है । समाज में प्रचलित लोकोत्सव, कथाएँ, धारणाएँ, मर्यादाएँ, कलाएँ आदि में लोक जीवन के दर्शन किए जा सकते हैं । ग्रामीण अंचल के कुआँ-तालाब की कारीगरी उसके घाटों की चित्रकारी, देवालयों-मंदिरों की मूर्तियों की चित्रमयता आदि सब कुशल कारीगरी पर ही निर्भर है । समाज का हरेक वर्ग अपने-अपने कर्म-धर्म में जुटा रहता था । कला को राज्याश्रित आधार भी प्राप्त था ।

व्यापक अर्थ में आर्थिक से तात्पर्य उन समस्त साधनों से है जिनके माध्यम से मनुष्य भौतिक साधन, धन-शक्ति आदि को प्राप्त करता है । भारतीय आर्थिक जीवन-मूल्य में धार्मिक मूल्य को समाविष्ट किया गया है । अर्थ की महत्ता को शास्त्रों में बार-बार स्वीकार किया गया है । महाभारत में अर्थ को परम धर्म कहा गया है जिस पर समस्त वस्तुएँ निर्भर करती हैं । धनी व्यक्ति संसार में सुख पूर्वक निवास करते हैं जबकि निर्धन व्यक्ति मृतक तुल्य है । अतएव, अर्थ को —— जगत का —— मूल्य स्वीकार किया गया है । अर्थ शास्त्र में इसे प्रधान तत्व निरूपित किया गया है । सर्वे गुणा: - कांचनमाश्रयन्ति अर्थात जिसके पास धन है वही कुलीन है, वही पण्डित है, वही विद्वान है और गुणी-वक्ता तथा दर्शनीय है ।

भारतीय चिन्तन धारा में अर्थ को मानव-जीवन के संरक्षण और कर्म-परायणता के लिए अनिवार्य माना गया है । अर्थ की धर्म पूर्वक प्राप्ति

पर ही बल दिया गया है । धर्म विरुद्ध अर्थ को त्याग देना चाहिए । मानव जाति के इतिहास से एक सत्य प्रकट होता है कि हम सम्पत्ति के अर्जन और उसके उपभोग को बढ़ाने से सुखी नहीं रह सके हैं । इसीलिए भारतीय जीवन-मूल्य में कर्मवाद का विशेष महत्व है और आर्थिक मूल्य में तो कर्म की ही महत्ता है । हमारे सन्त भी कर्मवादी रहे हैं । कबीर कपड़ा बुनते थे, रैदास जूता सिलते थे, सिंगादास गाय चराते थे, बुल्ला साहब हल जोतते थे । ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में खेती करना, खिलौने बनाना, रस्सी बनाना, ईंट बनाना, मकान बनाना, मूर्ति बनाना आदि अनेक प्रकार के कर्मवादी रूप हैं जिन्हें परिवार, समाज, आश्रम आदि सभी मान्यता देते हैं । यदि कर्महीन व्यक्ति मूल्यों की संरचना कर सकता हो तो वह अपने आप में बहुत बड़ा आश्चर्य होगा । इस प्रकार भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, उदारता और अहिंसा का भाव है, उसी प्रकार धार्मिक जीवन मूल्यों में धर्म-प्रवृत्त अर्थ को मान्यता दी गयी है क्योंकि आर्थिक जीवन मूल्य नैतिक मूल्यों पर ही निर्भर करते हैं । यदि समाज का प्रत्येक व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि सबके कल्याण के लिए करेगा तो अवश्य ही लोक-कल्याण होगा । आज मनुष्य धार्मिक मूल्यवादी तत्वों को भूल रहा है । उपनिषदों में वायु को दैवीय शक्ति माना गया है । औषधि निर्माण भी आर्थिक मूल्यों का प्रकृति प्रदत्त भण्डार है ।

अनामदास का पोथा का रैक्व वायु को भेषज के रूप में जाबाला पर प्रयुक्त करता है । उसने अपने सिद्धान्त की परीक्षा की ।

> "अगर वायु सब कुछ का कारण है तो समस्त वायु
> में ही विलीन हो जाता है तो वायु के उपचार से
> इस प्राणी को कुछ राहत मिल सकती है । उन्होंने
> उसके शरीर पर उलझे हुए कपड़ों का एक सिरा

उठाया और हवा करने लगा । थोड़ी देर में
उन्होंने देखा कि उस प्राणी में कुछ हल चल हुई।
ऐसा लगा कि उसकी मूर्च्छा दूर हो रही है और
वह धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहा है । एक आश्चर्य
उनको यह हुआ कि जिस कपड़े से वे हवा कर रहे
थे वह सूख गया । रैक्व के आश्चर्य का ठिकाना
न रहा । उन्होंने धीरे-धीरे उसके सब कपड़े उतार
कर सुखाने का निश्चय किया । " (1)

राजा जानश्रुति खेती करते हैं, जाबाला कर्मियों के साथ हाथ बटाती है। रैक्व रोगियों, दीन-दुखियों की सेवा करता है । इस प्रकार उपन्यास के प्रमुख पात्र आर्थिक मूल्यों के औदार्य के साथ जी रहे हैं । एक प्रसंग देखें -

" वह दुखिया स्त्री धरती पर सिर रखकर
गिड़गिड़ाने लगी । रैक्व का मन क्षोभ से
भर गया । यह तो उन्हीं की कहानी सुना
रही है . . . माता जी ने इस स्त्री को
आश्वासन दिया, उससे कहा- उनके यहाँ
कोई काम तो नहीं है क्योंकि वह दास-
दासियों का आश्रम है पर वह तब तक वहीं
रहे जब तक उसके लिए कोई काम-काज की
व्यवस्था नहीं हो जाती । माताजी ने उस
स्त्री और बच्चे के लिए व्यवस्था की और
फिर जड़वत स्तब्ध बैठे रैक्व के पास आयी। "(2)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 320

(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 353

राजकुमारी के जीवित लौट आने पर राज्य में बहुत खुशियाँ मनायीं गयीं पर इस दुखिया की याद भी किसी को नहीं आयी । भीख माँग नहीं सकती । इस छोटे बच्चे को देखकर कोई काम भी नहीं देता । रैक्व उस रथ-चालक की पत्नी की सहायता करता है । उसकी कारुणिक कथा भी व्यथा का पोथा है । वह भाग्यहीन है, उसका विवाह एक गरीब किसान के साथ होता है । कई सालों तक तो उसके बच्चे ही नहीं हुए । जब अनेक पूजा-मनौतियों के बाद वह बच्चा पैदा हुआ तो उसका बाप ही मर गया । उपन्यासकार ने जाबाला के मानसिक कष्ट को अपराध की संज्ञा देते हुए उसे निरीह अबला की बात बतलाई है -

> "वह गाड़ीवान मर गया । उसकी पत्नी और नन्हा सा बच्चा अनाथ हो गए । भूख-प्यास से व्याकुल, शोक से आर्त होकर वह न जाने कहाँ भटक रही है । महात्मा ने बताया कि जिस राजा के राज्य में बच्चे और स्त्रियाँ भूख-प्यास से व्याकुल होती हैं, उसका सत्यानाश हो जाता है । राजा जानश्रुति के राज्य में एक नहीं अनेक स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक भूख से प्यास से, रोग से व्याकुल हैं । "(1)

इस उपन्यास कृति में एक ऐसे महात्मा की चर्चा आती है जो यम, नियमों का विरोधी है । जब राजा जानश्रुति उसके पास पहुँचते हैं तो इस महात्मा ने डाँट-फटकार लगाते हुए कालातीत वर्णन किया । उसने कहा कि जब तक जानश्रुति जाबाला को ही बेटी समझता है तब तक उसका जप, तप यज्ञ सब प्रकार बेकार रहेगा । प्रजा शब्द का अर्थ है संतान । राजा को सारे प्रजा की बेटियाँ अपनी ही बेटियाँ मानना चाहिए । सबका समान ध्यान

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 36।

रखना चाहिए । वह साधु दुखी होकर कहता है कि राजा जानश्रुति और उनके पुरोहित को अपनी प्रजा का बिल्कुल ख्याल नहीं है ।

रैक्व ने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होकर ही जनपद के दीन-दुखियों को आचार-विचार से, भूख-प्यास से, लालन-पालन से परिपूर्ण रखना चाहा था । उसने रथ-चालक की पत्नी द्वारा सारी व्यथा-कथा को सुना । उसका उद्देश्य था कि दुखियों का दुःख दूर करना ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है, यही तप है, यही मोक्ष है । लोग यदि दुखी है तो कला का अधिष्ठान भी अनुचित है ।

> "रैक्व ने अपनी श्री दीदी से जनपद के बारे में अनेक विध जानकारी प्राप्त की । पिछले दो वर्षों में वर्षा न होने से लोग भूख-प्यास, रोग-शोक से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं । राजा की ओर से कोई खैर-खबर नहीं ली गयी है । कितने लोग, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध भूख से तड़प-तड़प कर मर गए हैं । उस दिन जो भारी वर्षा हुई उससे आगे आने वाले दिनों में कदाचित अच्छी खेती हो सकेगी और लोगों को कुछ न कुछ खाने को अन्न और पीने को पानी मिलेगा । पर इस समय तो लोग व्याकुल हैं । " ॥1॥

राज्याश्रय आर्थिक साधन प्रजा के पास नहीं पहुँच पाते, जनता घुट-घुट कर प्राण देती रहती है । राजा कलाकारों से, कारीगरों से, कर्मियों से बेगार लेते हैं । ऋषि-मुनि जप-तप से राजा को प्रभावित कर जीवन-यापन करते हैं किन्तु आम जनता हीन भावना से ग्रसित होकर प्राण

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा पृष्ठ 363

त्यागती है । जब राजा जानश्रुति को आचार्य-पुरोहित द्वारा बोध कराया जाता है, कि जनता अकाल पड़ने से दुखी है, वह अपने राज्य भण्डार से अन्न, औषधि तत्काल दिए जाने का आदेश करता है । इधर जाबाला अकाल-ग्रस्त लोगों की सेवा करना चाहती है । आर्थिक पक्ष राज्य का तब विकृत हो जाता है जब उसमें प्रजा की सहायता के लिए ठीक प्रकार से आयोजन न कर लिया जाय । राजा को एक ओर प्रजा की दशा पर तरस आता है तो दूसरी ओर बेटी जाबाला के स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित है । राजपुरोहित राजा से मंत्रणा करता है :-

> "राजन्, साधारण जनता में कोहलीयों के नृत्य-नाटक का बड़ा आकर्षण है । इस आयोजन में सहस्त्रों की संख्या में दूर-दूर से लोग आयेंगे । आयोजन के अन्त में यदि यह घोषणा कर दी जाय कि राजा के भण्डार से सभी दीन-दुखियों को अन्न और औषधि तत्काल दिए जायेंगे तो अनायास यह बात गाँव-गाँव में फैल जायगी और धनी अपना अन्न का भण्डार खोल देंगे । बहुतों की कठिनाईं दूर हो जायगी । इस प्रस्ताव से बिटिया को भी मानसिक शांति मिलेगी । " ॥1॥

राजा ने दोनों प्रस्ताव मान लिए । सचिवों को तुरन्त आयोजन का आदेश दे दिया गया । जाबाला को भी बता दिया गया । कोहलीयों के अनुष्ठान की तैयारी शुरू हो गयी । जाबाला आश्वस्त थी लेकिन उसने अपने पिता और आचार्य को राजी कर लिया कि रंग-भूमि के निर्माण के समय से ही सहायता-कार्य शुरू कर दिया जाय । अकाल ग्रस्त

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ सं० 38।

देशों से सैकड़ों आदमी रंग-भूमि के निर्माण के लिए बुलाए गए । काम तेजी से हुआ, लोगों में आयोजन के प्रति उत्साह देखा गया । जो बहुत दुर्बल और रुग्ण थे उन्हें भी कुछ न कुछ काम दिया गया । आयोजन का आरम्भ बड़े उत्साह से हुआ ।

रैक्व और जाबाला दोनों ही दीन-दुखियों के हितैषी हैं । उन्होंने जन सामान्य के दुख-दर्द को आत्मसात करके न्यायोचित मदद की। तत्कालीन आश्रम व्यवस्था का भी सशक्त नियम रहा करता था । राजा और प्रजा के जीवन मूल्यों में जनता का प्रथम स्थान था । उन दिनों राजा लोग आश्रमों में कुलपति के आदेश के बिना नहीं जाते थे । साधारण लोगों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था । ऐसा माना जाता था कि तपस्या और स्वाध्याय के क्षेत्र में राजा का किसी प्रकार का दबाब धर्म संगत नहीं है । इसीलिए राजा को आश्रम में प्रवेश के लिए कुलपति की अनुमति और राजवेश का परित्याग, ये दो बातें आवश्यक मानी जाती थी ।

पुनर्नवा का वृद्ध गोप कृषि कार्य में निपुण था । देवरात दीन-दुखियों की सेवा में सदा तत्पर रहा करते थे । श्यामरूप और आर्यक देवरात के आश्रम में अध्ययन करते थे । नगर श्री मंजुला नृत्यांगना थी । चन्द्रमौलि माढ्व्य शर्मा, मृणाल मंजरी आदि भिन्न-भिन्न कार्यों में कर्मरत रहकर अपने कर्तव्य-पथ पर अग्रसर थे । देवरात कर्मवादी हैं, उनका शिष्य शारीरिक साहस तथा अप्रतिम मेधा शक्ति का धनी है । चन्द्रदीप के आर्यक मेधा राजनीतिक अर्थ मूल्य को अपने बाहुबल से विलक्षण बनाते हैं । ग्रामीण अंचल से लेकर राज्य-वैभव तक इनकी शक्ति का सदुपयोग होता है । नगर के परिवेशात्मक वैभव, मूल्यवादी स्वरूप और जन-जीवन का जीविकोपार्जन का स्वरूप प्रस्तुत अंश में दृष्टव्य है -

"वह स्थान एक ऊँचा सा टीला था जिस पर
कदम्ब, कुटज और कोविदार के झाड़ों ने अपना
स्थान बना लिया था । वहाँ से नगर का अधिकांश
मार्ग दिखायी दे जाता था . . . आज मैंने
जीने का अर्थ समझा है । इसी प्रकार पेट पालना
तो मनुष्य जीवन है ही नहीं । आर्य, आज मेरा
नया जन्म हुआ है । मैंने अपने को पाया है ।
यह सेवा करते-करते प्राण भी चले जाते तो मुझे
कोई दु:ख नहीं होता । और भी सिखाओ
आर्य, और भी सिखाओ आर्य कि कैसे अपने
आप को उलीचकर नि:शेष भाव से दिया जा
सकता है । " (1)

वस्तुत: पेट भरना ही जीवन नहीं है । दूसरों की सेवा सुश्रुषा करना बिना स्वार्थ के ही जीवन है ।

बाणभट्ट मूल रूप से अभिनेता है । वह अभिनय को भी आडम्बर विहीन अभिनीत करना चाहता है । रंगारंग अनुष्ठानों में उसका आर्थिक उपादान समाहित है । निपुणिका नौकरी मिल जाने के कारण सामाजिक मर्यादा को आजीविका की दृष्टि से उचित समझती है और भट्टिनी तो तुवर मिलिन्द की दिव्य कन्या है ही । बाणभट्ट आत्मोद्धार कर्म की अपेक्षा पारमार्थिक सत्य को उद्घाटित करते हुए कर्म-वाद में विश्वास करता है । यही उसका धर्म नीतिगत मूल्य है जिसे अर्थ-वत्ता दी जा सकती है -

" मैं हँसा, मैं यह काम जरूर कर सकता हूँ । केवल
एक बार मैंने अपने स्वर्गीय पिता को मन ही मन

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा- पृष्ठ सं0 222

प्रणाम किया । पिता, आज आत्मोद्धार कर्म से विरत रहना पड़ा । समय और सुयोगमिता तो फिर कभी होता रहेगा । न जाने किस दु:खिनी के दु:ख-मोचन यज्ञ में अपने आपको होम देने की पुकार आयी है । आज उसी का ऋत्विज बनने दो । निपुणिका की ओर देखकर मैंने कहा - निउनियाँ मैं प्रस्तुत हूँ । " ।1।

बाण भट्ट, भट्टिटनी और निपुणिका के साथ रहते हुए अपने को परिवर्तित पाता है । वह धर्मवादी नैतिक मूल्य से जुड़कर उनकी रक्षा के लिए उनके साथ है । परन्तु उसे आज अनुभव होता है, कि वह पराश्रित हो गया है । पुरुष में पौरुष होना चाहिए, जो बाण भट्ट में है किन्तु वह त्रिकोणात्मक सात्विक प्रेम का पुजारी है । निपुणिका और भट्टिटनी दोनों ही पुरुषार्थ-बल पर इस जीवन जगत को सोचना चाहती हैं । तन्त्र-मन्त्र के बाह्याडम्बर उन्हें प्रभावित नहीं करते । कर्म पथ पर निरत रहकर वे राजनैतिक और धार्मिक मूल्यों को नयी दिशा देती है । सामान्य मनुष्य जिस कार्य के लिए लाँछित होता है उसी कार्य के लिए बड़े लोग सम्मानित होते हैं, यही मूल्य है । क्या छोटा सत्य बड़े सत्य का विरोधी होता है । इस अवधारणा को लेकर चलने वाले बाण भट्ट ने संघर्षमय अपनी जीवन यात्रा पूरी की ।

चारुचन्द्र लेख उपन्यास का राजा सातवाहन और रानी चन्द्रलेखा सिद्ध-सामन्ती धर्म-कर्म के पात्र हैं । नाटी माता इसलिए कर्म करती हुई भी ईश्वर को कर्ता-धर्ता मानती है । उनका यही साँस्कृतिक-धार्मिक मूल्य है ।

।1। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं035

§ "उनका अभिप्राय ठीक समझ में नहीं आया
परन्तु कुछ व्याख्या सी करती हुईबोली-
कौन-किसका अनिष्ट कर सकता है । तुम
क्या कोई किसी का कुछ बनाता है न
बिगाड़ता है । हम लोग व्यर्थ अपने को
कर्ता मानकर कष्ट पाते हैं । सब उस लीला-
धर की लीला है, हम लोग तो निमित्त
मात्र हैं । मेरे लिए तो यह बड़े सौभाग्य
का दिन जान पड़ता है बेटी, आज तुमने
सातवाहन की सच्ची अर्द्धांगिनी बनने की
लालसा प्रकट की है, इससे बड़ा मंगल क्या
हो सकता है। भला, तुम्हारे ऊपर भगवान
का अनुग्रह इसी रास्ते तो आने वाला है। "§1§

इस उपन्यास के बोधा और मैना तो विलक्षण पात्र हैं । वे युद्ध क्षेत्र में समर्पित योद्धा की तरह जुट जाते हैं । वे राजा सातवाहन और रानी चन्द्रलेखा की पूरी मदद करते हैं । मैना तो सीदी मौला जैसे फक्कड़ सन्तों से भी टूट पड़ती है -

"मैना ने एक दिन कड़ककर सीदी मौला की
ज्ञान-गम्भीर वार्ता को बकवास कहा था ।
कहा था, इन निठल्लों की बात में समय नष्ट
करना व्यर्थ है । जो नहीं कही थी वह बात
उसकी कुटिल भृकुटियों और तनी हुई ललाट-
रेखाओं से चू पड़ी थी ठीक सीदी मौला के
मस्तक पर । वह बात सीधी थी परन्तु इतनी

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्रलेख- पृष्ठ सं0 416

> फाक्ती कि सीदी के मस्तिष्क की गहराई में
> चुभ गयी थी । तुम दायित्वहीन भाँड़े, ठूँठ
> लोग समाज का नाश कर रहे हो । उस दिन
> सीदी मौला ने पहली बार हार मानी थी।" (1)

अन्तत: आर्थिक मूल्य धार्मिक जीवन मूल्यों में ही भारत जैसे देश में समाहित हैं । भारत के मध्यकाल में जीवन की दार्शनिकता और धार्मिकता मूल्यों को संरक्षण देने का कार्य करती थी । राजा से लेकर श्रमिक तक सेवा धर्म का पाठ जीवन का अनिवार्य रूप बन गया था । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में लोगों का ध्यान बाह्य जगत में कम आन्तरिक प्रकाश में लगा रहता था ।

प्राकृतिक शक्तियों को आर्थिक आधार मानकर उन्हें पूज्य समझा जाता था । सूर्य, चन्द्र, धरती, हवा, जल, अग्नि सभी की सभी प्राकृतिक शक्तियाँ हमारी संस्कृति में विरासत के रूप में प्रार्थित थीं । आयुर्विज्ञानियों की धारणा है कि संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो दवा का काम न करती हो । इसलिए हमारे यहाँ वृक्षों, पौधों, सभी वनस्पतियों को देवी-स्वरूपा माना गया है । इसीलिए आज भी प्रकृति के खजाने पर्यावरण पर वैज्ञानिकों की सोच केन्द्रित है । हमारे जीवन मूल्यों में प्रकृति के प्रति आग्रह है और यह आग्रह उसी प्रकार का है जैसे कि हम अपने पूज्य देवी-देवताओं के प्रति रखते हैं ।

आचार्य द्विवेदी ने उपन्यासों में कथानक के साथ-साथ अवान्तर विषयों पर बहुत गहराई से विचार किया है । ज्योतिष, तन्त्र-साधना, मल्ल युद्ध, रंग सृष्टि, नृत्यकला, कोल शास्त्र, इतिहास, पुरातत्वशास्त्र,

- -

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-चारुचन्द्रलेख - पृष्ठ सं0 520

काव्यकला और विज्ञान जैसे अन्य छोटे-मोटे, जादू-टोने जैसे विषयों पर भी विस्तृत विवेचना करते हुए जीवन के उन आयामों को उद्भाषित किया है जिनमें बुद्धि का चातुर्य और हृदय का राग दोनों ही उभय-निष्ठ हैं। उपन्यासकार की मूल्यवादी चेतना परम्परित होने के साथ-साथ क्रान्ति-दर्शी भी है। उसके सभी प्रमुख पात्र लकीर के फकीर नहीं हैं बल्कि वे अपनी अप्रतिम मेधा-शक्ति से परम्परित अवधारणाओं को मथकर अभिनव विचार धाराएँ प्रकट करते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही तरह के पात्रों की समुच्चय शक्ति लोक-कल्याणकारी निरूपित हुई है और वैयक्तिक मूल्य से लेकर आर्थिक मूल्य तक इनकी सुदीर्घ यात्रा जन-जन के कल्याण के लिए प्रतिपादित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यासकार ने स्थान-स्थान पर राजनैतिक तथा आर्थिक मूल्यों को स्थापित करते हुए भावी राजनीतिज्ञों को प्रेरणा दी है तथा उनका प्रयास रहा है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक-मूल्यों की परम आवश्यकता है। आधुनिक परिवेश में हम पाते हैं। कि समाज के विविध क्षेत्रों में उन्नति तो हुयी है लेकिन मूल्यों का सर्वथा अभाव है। मूल्यों के अभाव में स्वस्थ्य समाज का सृजन असम्भव है। राजनीति मूल्यों की अवहेलना में कुत्सित रूप धारण कर लेती है जिसके फलस्वरूप विविध प्रकार के भ्रष्टाचार, आचरण हीनता तथा विघटन जन्म लेता है। इन सबको नियन्त्रित करने के लिये मूल्यों की आवश्यकता है चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र में हो या आर्थिक क्षेत्र में।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विविध राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुये उनमें उत्पन्न हुयी विषमताओं का वर्णन किया है लेकिन वहीं कुछ पात्र मूल्यों का स्थापन करते हुये विषमताओं की भर्त्सना

करते हुये पाये जाते हैं अनामदास का पोथा में राजा जानश्रुति राज्य व्यवस्था से पेफिक्र होकर तत्व चिन्तन करना चाहते हैं इसी प्रवृत्ति को कुत्स्यन करते हुये औदुम्बरायण के शब्दों में मूल्यों के प्रति जागरूकता देखी जाती है -

"राजा जानश्रुति ब्रह्मतत्व को जानने के लिये व्याकुल हैं, उधर प्रजा में त्राहि-त्राहि मची हुयी है । मैं तो किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया हूँ बेटी । " (1)

राजनीति के साथ-साथ गन्धर्व पूजन के निमित्त कोहलीयों द्वारा किये जाने वाले नृत्य नाट्य के आयोजन से राजनीतिक लाभ प्राप्त करने की आचार्य की उचित विशुद्ध कूटनीति की परिचायक है । कारण कि राज-तन्त्र में पुरोहित का अत्यधिक महत्व था । पुरोहित सत्यवादी एवं राजा के हित की बात सोचता था ।

"ब्राह्मण का राजनीति से सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद । ऋग्वेद में पुरोहित की चर्चा है । ऋग्वेद के मत से प्रत्येक राजा का एक कुल पुरोहित होना आवश्यक है । पुरोहित मन्त्र-तन्त्र आदि के प्रयोग एवं स्त्रोत पाठ के द्वारा अपने राजा की रक्षा, विजय और हित साधन में संलग्न थे । " (2)

"अनामदास का पोथा" में औदुम्बरायण उक्त सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है । चारुचन्द्र लेख में "विद्याधर भट्ट" उक्त सभी गुणों से युक्त है । वे

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 36।

(2) वैदिक इन्डेक्स 2/5

राजा की वीरता को बर्बरता का रूप नहीं देना चाहते प्रत्युत उनके शब्दों में योग्य राजा की परिभाषा उदात्त शब्दों में की गयी है -

"चक्रवर्ती वह है जो कोटि कोटि व्याकुल और त्रस्त जनता का रक्षक बनने का उत्तरदायित्व लेता है । भारतवर्ष में यही परम्परा रही है "चक्रवर्ती राज्य सीमाओं में बँधा नहीं रहता । वह राज्य सुख का भोक्ता नहीं, दीन, दरिद्र और दलित का रक्षक या गोप्ता होता है । विक्रमादित्य सहसांक और सातवाहन इसलिये चक्रवर्ती थे कि उनके चित्त में निःशेष जगत को दुःख और दारिद्र्य से मुक्त करने की स्वतः प्रेरणा होती थी । राज्य का अधीश्वर होना चक्रवर्तित्व नहीं है । धर्म-निर्विशेष मानव मात्र की कल्याण कामना से जो व्यक्ति शस्त्र ग्रहण करता है उसकी भुजायें वज्र कपाट की भाँति आतंक और अत्याचार का अवरोध करती है । मेरी आँखों के सामने क्षुद्र राज्यलिप्सा के कारण बड़े-बड़े राज-राजेश्वर ध्वस्त, अव्यवस्थित और पद-दलित हो गये हैं । सबके मन में राज्य विस्तार करने की कीर्ति प्राप्त करने की और सुख भोगने की क्षुद्र लालसा पिशाचिनी की भाँति विद्यमान थी x x x x x आदमी संकल्प से बड़ा होता है और संकल्प से ही छोटा हो जाता है । " (1)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्रलेख पृष्ठ सं0 317

चारुचन्द्र लेख में विद्याधर भट्ट के अतिरिक्त चन्द्रलेखा, मैना एवं बोधा सभी नैतिक राजनीति का प्रयोग करते हुये देखे जाते हैं ।

"बाण भट्ट की आत्मकथा में डा० द्विवेदी ने हर्षकालीन राजनीतिक दशा का वर्णन किया है । सिंहासनारूढ़ श्री हर्षदेव की सार्व--भौमिकता के विरोध में प्रजा के कई लोग शामिल थे । लोरिक देव ज्वलन्त उदाहरण हैं कई विषमतायें राज्य में व्याप्त थीं । महामाया के भाषण के अनुसार राजनैतिक शक्ति धार्मिकों द्वारा अपव्यय की जाती थी। अन्तःपुर अपहृत कन्याओं से भरा पड़ा था । सामान्त लोग ऐसे ही कुकृत्यों में समय अपव्यय कर रहे थे । राज-सत्ता का विरोध था । म्लेच्छवाहिनी का सामना करना राजपुत्रों के वश की बात नहीं थी । ऐसी ही दुर्गम परिस्थितियों में, उपन्यासकार ने कुछ महत्वपूर्ण पात्रों के माध्यम से राज्य में उच्च नैतिक स्तरीय मूल्यों को प्रतिपादित किया है जैसे बाण-भट्ट द्वारा छोटे राजकुल से भट्टिनी का उद्धार । कृष्णवर्धन द्वारा भट्टिनी को संरक्षण तथा सुरक्षा प्रदान करना, नैतिक मूल्यों की संस्थापना है । तुवरमिलिन्द की कन्या होने के नाते भट्टिनी का इसलिये स्वागत किया जाता है कि म्लेच्छों से उत्तर भारत की रक्षा हो सकेगी और महाराज तुवरमिलिन्द द्वारा सहायता प्राप्त होना सम्भव होगा । इस प्रकार सफल राजनीति के दर्शन होते हैं और भावी राजनीति को दिशा निर्देशन होता है ।

> "मैं इन उपन्यासों § बाण भट्ट की आत्मकथा एवं चारुचन्द्र लेख§ को अत्यन्त आधुनिक मानता हूँ । उपन्यास के सामान्य गुणों के फ्रेम में ठीक से न बैठती हुयी भी ये कृतियाँ महान संकेतों से उद्भासित हैं । नवीन समस्याओं के बीच रास्त ढूँढने वाले नये लोग जिस खण्डित दृष्टि से देश की समस्याओं

का निराकरण कर रहे हैं, उनके परिष्कार और
विस्तार के लिये दोनों ग्रन्थों का फलितार्थ
समझना आवश्यक है । " {1}

"बाण भट्ट की आत्मकथा में सफल राजनीति और सुविचारित कूटनीति के दर्शन होते हैं । अवसर का लाभ उठाकर राजनीति में कैसे सफलता प्राप्त की जाती है जो लोक-हितार्थ भी हो और वर्तमान में तथा भविष्य में उपयोगी सिद्ध हो सके । अन्तिम उच्छ्वास में महाराज हर्षदेव का उद्दयोति भट्ट व बौद्ध पण्डित वसुभूति में शास्त्रार्थ पर उद्दयोति की विजय के उपरान्त ब्राहमण धर्म में आस्था होने की कृष्ण वर्द्धन द्वारा घोषणा सुविचारित कूटनीति का ज्वलन्त उदाहरण है कारण कि आचार्य भुर्वपाद को प्रसन्न करने का यह प्रयास मात्र था जो बाद में सफल सिद्ध हुआ ।

"पुनर्नवा" में भी यही राजनैतिक परिस्थितियाँ थी बौद्ध धर्म की संघर्षात्मक टक्करों को सहन करते हुये पुनः ब्राहमण धर्म प्रतिष्ठित हो चुका था । उपन्यास में वर्णित उत्तर भारत का सारा भू-भाग छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । प्रजा में असन्तोष था । हलद्वीप के राजा रूद्र सेन के अत्याचारों का वर्णन इस प्रकार उल्लिखित है -

"वह लम्पट और दुर्दान्त राजा सिद्ध हुआ ।
उसके औद्धत्य से हलद्वीप की प्रजा त्रस्त हो उठी।"

ऐसी परिस्थितियों में भी सुमेर काका देवरात, समुद्रगुप्त जैसे पात्र राजनैतिक जीवन मूल्यों को उजागर करते हैं । सुमेर काका का विचार है - "राजा धर्मावतार होता है । " {2} भटार्क समुद्र गुप्त के राजनैतिक जीवन दर्शन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

---

{1} शांति निकेतन से शिवालिक सम्पादक शिव प्रसाद सिंह पृष्ठ 25।
{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ 263

"उनकी इच्छा केवल इतनी ही है कि इस पुण्य
भूमि में धर्म सम्मत विधि-व्यवस्था का प्रभुत्व हो।..
...... सम्राट अपने को भी धर्म परतन्त्र मानते हैं
और अपने मित्रों को धर्म की प्रभुता के सन्दर्भ में ही
वे मैत्री को कल्याणप्रद मानते हैं। x x x x x
वे प्रत्येक धर्म परायण राजकुल को उतना ही स्वतन्त्र
मानते हैं जितना अपने को। सभी धर्म के बन्धन में
हैं। पूर्ण अतन्त्र कोई नहीं है। इस नवीन धर्मनीति
का प्रवर्तन करने के कारण ही हम उन्हें अपना नेता
मानते हैं। इसी अर्थ में वे सम्राट हैं।" {1}

एक अच्छे राजा की क्या विशेषता होनी चाहिये भट्टार्क के शब्दों में वर्णित हुयी है। संक्षेप में, यही कहना उचित होगा कि डा० द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में, राजनीति में नैतिक मूल्यों को उद्घाटित किया है।

अध्याय प्रथम में मूल्यों की परिभाषा के सन्दर्भ में बताया था कि मूल्य शब्द की उत्पत्ति अर्थ मूलक ही है। संकुचित और व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता हुआ यह शब्द जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समागमित हो गया है। अर्थ प्रधान युग में तो मूल्यों की और भी आवश्यकता प्रतीत होती है। जीवन को जीने के लिये साधनों की आवश्यकता होती है और वे साधन कैसे प्राप्त किये जाये उनकी प्राप्ति का आधार कैसा हो यह मूल्यों पर निर्भर करता है। कर्म-निष्ठा को वैयक्तिक मूल्यों के अन्तर्गत मानते हैं। कर्म सर्वोपरि है कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है। गीता में कहा है।

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ 273

"नियतं कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायोह्य . कर्मणः
शरीर यात्रापिच तेन प्रसिद्धयेद्कर्मणः । " §1§

शरीर यात्रा को चलाने के लिये कर्म करना आवश्यक है लेकिन त्याग पूर्वक उपयोग करने पर वेदों में बल दिया गया है । हर वस्तु स्वयं के भोग के लिये हो यह नैतिक मूल्यों के विरुद्ध है । अतः वेद व गीता के सिद्धान्तों के अनुसार आर्थिक क्षेत्र में भी त्याग, सत्य और संयम तथा ईमानदारी की आवश्यकता है । डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में आर्थिक स्थितियों में इन मूल्यों को उजागर हुआ देखा जा सकता है ।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" में तत्कालीन समाज अर्थ-सम्पन्न एवं पूर्णतः प्रसन्न तथा समृद्ध है । प्रजा द्वारा मनाये जाने वाले उत्सवों का वर्णन तथा महाराजाधिराज हर्षदेव के भाई कुमार कृष्ण वर्द्धन के पुत्र जन्म तथा नामकरण संस्कार उत्सवों से ज्ञात होता है कि यह समृद्धि का युग था । अर्थ-चिन्ता व्याप्त नहीं थी । निपुणिका के शब्दों में मदनपूजा विषयक टिप्पणी दृष्टव्य है ।

"यह ध्वनि मदनोद्यान से आ रही है सुदक्षिणा
आज चैत्र शुक्ल त्रयोदशी है । आज मदनपूजा का
दिन है. . . . कान्यकुब्ज में यह उत्सव बड़े
आडम्बर से मनाया जाता है । " §2§

यह उत्सव बड़े वर्णित उग्रतारा की मूर्ति का वर्णन तत्कालीन कला-कारीगिरी का ज्वलन्त उदाहरण है । अनामदास का पोथा में गन्धर्व पूजन आदि का वर्णन है लेकिन राजा तत्वज्ञान की खोज में भटकता हुआ प्रजा की परवाह

- -

§1§ श्रीमद्भागवत गीता अध्याय-3, श्लोक - 8
§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं0 37

नहीं करता । परिणाम स्वरूप जनता के कष्ट का उसे बोध नहीं । प्रजा दुर्भिक्ष से पीड़ित है और ऐसी स्थिति में उपन्यास का पात्र मामा बच्चों के लिये लतिकायें आदि लाकर उनकी उदर पूर्ति करता है । जो नैतिकता का परिचायक है । समय की आवश्यकता के कारण ऋषि रैक्व की निवृत्ति मार्ग को छोड़कर प्रवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसारित हो जाते हैं और त्रस्त ग्राम वासियों के लिये साधन जुटाते हुये निर्लिप्त भावना से सेवा करते हुये देखे जाते हैं वे कहते हैं -

> "मैं सोचता हूँ कि उस टूटी गाड़ी को ठीक
> करके स्वयं खींचकर उसे चलाऊँ और जहाँ से
> जो कुछ पा सकूँ • इनके पास पहुँचा दूँ । "§1§

गन्धर्वपूजा तथा कोडलीयों के नृत्य के सन्दर्भ में मंच निर्माण में काम के बदले अन्न नैतिक भावना को पुष्ट करता है । औदुम्बरायण ने जानश्रुति से प्रजा के विषय में कहा कि ग्रामीण प्रजा भिक्षा के अन्न पर आस्था नहीं रखती स्वाभिमान तथा कर्मनिष्ठा का सूचक तो है ही आर्थिक मूल्य प्रतिपादित करता है ।

पुनर्नवा में देवरात की कला तथा कारीगरी की प्रशंसा की गयी है जो आर्थिक उन्नति तथा विकास की परिचायक होते हुए आर्थिक मूल्यों को व्यंजित करती है ।

> "वे संस्कृत और प्राकृत के अच्छे कवि भी थे और
> वीणा वेणु, मुरज और मृदंग जैसे विभिन्न श्रेणी
> के वाद्य यन्त्रों के कुशल वादक भी थे ।
> चित्रकर्म में भी वे कुशल माने जाते थे । यह प्रसिद्ध
> था कि शिप्रेश्वर महादेव के भीतरी भाग में जो
> चित्र बने थे, वे देवरात की ही चमत्कारी लेखनी
> के फल थे । "§2§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं0 376
§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 17

इस प्रकार वर्णनों से सिद्ध होता है कि कला और कारीगरी के विकासार्थी नागरिकों में ललक तो थी पर अर्थलोलुपता नहीं थी अतः सत्य, शिव और सौन्दर्य के साक्षात दर्शन कला कृतियों में किये जा सकते थे। उपन्यासकार ने विभिन्न कलाओं और कारीगरी का वर्णन करते समय पाठकों को विशुद्ध, निष्कलंकित और प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रेरणा देकर देश की समृद्धि और विकास की ओर उन्मुख किया है। जहाँ अभाव ग्रस्त जीवन का वर्णन करते हैं वहाँ निष्प्रयोज्य अनासक्त सेवा के द्वारा मानव मूल्यों से जनमानस को विभूषित करते आये हैं। डा० द्विवेदी जी के कथा-साहित्य में इसी प्रकार राजनैतिक आर्थिक दृष्टिकोण से मानव-मूल्य समझे जा सकते हैं जो समूचे देश के लिये प्रेरणा स्रोत बनकर देश की उन्नति और उद्धार के लिये मानस-पटल को प्रकाशित करते हैं।

निष्कर्षतः डा० द्विवेदी जी गम्भीर चिन्तक तथा विकासोन्मुख प्रतिभा के धनी थे। विविध आयामों में प्रतिभासित मानव-मूल्य उनकी अलौकिक प्रतिभा के परिचायक हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

अध्याय – पाँच

अध्याय - पाँच

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में मानव मूल्यों के स्रोत

=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=

जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व तत्सम्बन्धित परिवेश से प्रभावित होता है उसी प्रकार किसी भी कृति का कृतित्व उसके समकालीन एवं पूर्ववर्ती कृतिकारों के कृतित्व की छाया से किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आच्छादित हो जाता है । मानव मन की सामान्य अवधारणाओं के अनुरूप आचार्य द्विवेदी को भी अपने पूर्ववर्ती मनीषियों से प्रेरणा प्राप्त हुई है । साथ ही साथ वे एक सीमित क्षेत्र में अपने समकालीन विचारों एवं समस्याओं से भी अभिप्रेरित हुए हैं । इस प्रकार वे पुरातन को अंकित करते हुए भी उसका वर्तमान की समस्याओं से सामंजस्य भी सफलता पूर्वक स्थापित करते चले हैं । डा0 लक्ष्मीशंकर पाण्डेय के शब्दों में -

> " यह लेखक का अभिनव कौशल ही है, कि जिन स्थितियों समस्याओं को उसने उठाया है वे अपने काल-सन्दर्भ में तो सहायक हैं ही, उनकी उपयोगिता आधुनिक सन्दर्भों में भी उतनी ही सार्थक है । " ≬1≬

यह उपलब्धि इस धारणा को अत्यधिक परिपुष्ट करती है कि कथा साहित्य की पुरातन भूमि ही बहुत उर्वरा है । आचार्य द्विवेदी ने ग्राम और नगर-चेतना की गहराई को यथार्थ दृष्टि से अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यासों पर बाह्य प्रभाव का आंकलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि जहाँ संस्कृत के काव्यकारों में बाण भट्ट, कालिदास तथा

- -

≬1≬ हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ पृष्ठ 54

शुद्रक आदि से प्रभावित हैं, वहाँ उन पर छान्दोग्य उपनिषद तथा तान्त्रिक व धार्मिक वृत्तों का प्रभाव भी है। कवीन्द्र रवीन्द्र की आध्यात्मिकता, कबीरदास की सामाजिकता तथा प्रेमचन्द की मानवतावादी मूल्यों ने भी उन्हें प्रभावित किया है। इन सबके साथ-साथ आधुनिक समाज एवं साहित्य में मुखरित समस्याओं का प्रभाव भी पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में मानव-मूल्यों के यही श्रोत हैं जिन्हें हम निम्न-लिखित संकेतों में वर्गीकृत कर सकते हैं :-

1- संस्कृत भाषा के गद्य ग्रन्थ, पद्य काव्य उपनिषद तथा धार्मिक व तान्त्रिक ग्रन्थ।

2- कवीन्द्र रवीन्द्र एवं कबीरदास की आध्यात्मिकता।

3- प्रेमचन्द का मानवतावादी दृष्टिकोण।

4- सम सामयिक साहित्य व समाज की मुखर समस्यायें।

इनके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवत, गीता तथा मनुस्मृति जैसे महान ग्रन्थों से भी कथाकार ने मानव-मूल्यों का आश्रय ग्रहण करके उपन्यासों की कथा का विस्तार किया है। आचार्य द्विवेदी लोक जीवन के पक्षधर कथाकार हैं इसलिए उन्होंने लोक प्रचलित कथाओं, कहावतों से भी मानवीय मूल्यवादी दृष्टि जोड़ी है। उनके उपन्यासों में उनकी बहुज्ञता होने के कारण अवान्तर विषय भी वर्णित हुए हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कथा सामग्री में दुनियाँ भर की वे चीजें आ गयीं हैं, जिनसे मानव जीवन का सीधा सम्बन्ध है। उपन्यासों की पात्र सृष्टि में संस्कृत भाषा के काव्य ग्रन्थों और उपनिषदों का आधार ग्रहण किया गया है।

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण द्विवेदी जी का ज्ञान क्षेत्र मानवीय संदर्भों में विशाल था। उन्होंने परम्परित मानव-मूल्यों को संस्कृत साहित्य से ही ग्रहण किया है। संस्कृत के विपुल साहित्य

का अनुशीलन, उनके लेखन को प्रभावित करने का कारण बन जाना स्वाभाविक है ।

बाणभट्ट की आत्मकथा संस्कृत भाषा के अनेक ग्रन्थों के प्रभाव का प्रतिफल है । इस पर हर्षचरित तथा कादम्बरी का प्रभाव तो स्पष्ट है ही रत्नावली, मालविकाग्निमित्रम , कुमार सम्भवम्, मेघ दूतम् तथा रघुवंशम आदि काव्य ग्रन्थों का भी पर्याप्त प्रभाव है । कादम्बरी के प्रभाव के साक्ष्य में तो स्वयं लेखक का ही विचार उद्धरणीय है :-

> "कादम्बरी की शैली के साथ कथा की शैली में भी अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक है- रूप का, रंग का, शोभा का इसमें भी जमकर वर्णन किया गया है । " ॥1॥

लेखक ने कादम्बरी से कथा का वैभिन्य भी स्पष्ट किया है :-

> "कादम्बरी में प्रेम की अभिव्यक्ति में एक प्रकार की तृप्त भावना है, किन्तु इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ और अहत भाव से प्रकट हुई है . .. . . .फिर भी कादम्बरी में प्रेम के जिन शारीरिक विकारों अनुभवों का, अलंकारों का प्राचुर्य है उनके स्थान पर कथा में मानस-विकारों का लज्जा का, अवहित्था का, जड़िमा का, अधिक प्राचुर्य है । " ॥2॥

मानव मूल्य व्यक्ति के जीवन शिल्प पर भी आधृत होते हैं और यही जीवन शिल्प कृतिकार, रचनाकार की भाषिक, शैल्पिक योजना हो

- -

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली ॥बाणभट्ट की आत्मकथा॥पृष्ठ 255

॥2॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली ॥बाणभट्ट की आत्मकथा॥पृष्ठ 255

जाती है । आचार्य द्विवेदी ने संस्कृत के शिल्प को अपने शैल्पिक सृष्टि में उतारा है, अनुगमन किया है । यद्यपि कादम्बरी की भाषा के समान उनके उपन्यासों की भाषा समास बाहुल्य नहीं है फिर भी अनेक प्रकार से वह कादम्बरी के अधिक समीप है । द्विवेदी जिस प्रकार जटिल जीवन के पक्षधर नहीं हैं उसी प्रकार क्लिष्ट भाषा के भी पक्षपाती नहीं थे परन्तु फिर भी जाने या अनजाने उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं प्रयुक्त प्रलम्बवान वाक्यावली भाषा-क्लिष्टता के साक्ष्य में प्रस्तुत की जा सकती है । डा0 अम्बाप्रसाद सुमन के अनुसार द्विवेदी जी द्वारा अपने एक अत्यैव प्रिय शिष्य को भाषा-क्लिष्टता के प्रति व्यक्त व्याज स्तुति परक विचार दृष्टव्य है -

> "रमेश कुन्तल मेघ इतना ऊँचा और अच्छा लिख रहे हैं कि हम तुम उसका पूरा लाभ नहीं उठा पाते । इसलिए रमेश कुन्तल मेघ को मैंने एक सलाह दी है और उनके मित्रों से भी आग्रह किया है कि वे प्रयत्न करके रमेश कुन्तल मेघ को गद्य पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करा दें । उनके मित्र यदि ऐसा करा सकें तो हिन्दी का बहुत बड़ा कल्याण होगा।"§1§

लेखक ने आत्मकथा में कादम्बरी की भाषा के समान प्रलम्बमान वाक्य योजना का अधिकाधिक स्थलों पर आश्रय लिया है । इसलिए कथा के वर्णन भी कादम्बरी के वर्णनों की भाँति इतने दीर्घकाय हो गए हैं कि उनके कारण कथा में व्याघात उपस्थित हो जाता है । यह विशेषता कादम्बरी में तो प्राय: शत-प्रतिशत है परन्तु चित्रोपम वर्णनों की भरमार है तो आत्मकथा भी इस प्रकार के वर्णनों में पीछे नहीं है ।

---

§1§ हिन्दुस्तान दैनिक पत्र दिनांक 19-5-1985 लेख हजारी प्रसाद द्विवेदी §जितने पण्डित उतने ही विनोदी§ लेखक- अम्बाप्रसाद सुमन

"बाण की शैली स्वभावोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति चारुत्व की आकांक्षा रखती है। इस बाणभट्ट शैली का स्पंदन आत्मकथा में है। बाण की वर्णनात्मक शैली में कल्पनाशक्ति का विशुद्ध चित्रण है। उसमें सौंदर्यवादी चित्रण की सूक्ष्म रेखाएँ है, वाग विलास का लालित्य है, विशिष्ट पद रचना का भावपूर्ण संयोजन है। बाण की शैली की ये सारी विशेषताएँ आत्मकथा में साकार हो उठी हैं। कादम्बरी और हर्ष चरित की गद्य काव्यात्मक शैली का स्पन्दन और चारुत्व इस उपन्यास में है। बाण की शैली सर्वत्र प्रतिबिम्बित हो रही है।" (1)

"कादम्बरी" से बाण भट्ट की आत्मकथा की भाषा तथा शैली सादृश्य होना तो सामान्य बात है, किसी-किसी स्थान पर तो "आत्मकथा" की भाषा शब्दशः कादम्बरी की भाषा का अनुवाद ही है। ऐसे स्थानों पर निम्नलिखित को उद्धृत किया जा सकता है :-

कादम्बरी के महाश्वेता वर्णन का भट्टिनी का रूप वर्णन (2) शब्द सादृश अनुवाद है, इसी प्रकार कादम्बरी के जरद द्रविड धार्मिक वर्णन (3) का शब्द-साम्य है। राज्य सभा का वर्णन भी इन दोनों ग्रन्थों में बिल्कुल एक सा ही है। उदाहरण के लिए बाणभट्ट द्वारा भट्टिनी के प्रथम दर्शन के समय भट्टिनी का रूपवर्णन प्रस्तुत है -

---

(1) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य- एक अनुशासन (डा० उमादत्त मिश्र) पृष्ठ 267-268

(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी -बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ-42

(3) हजारी प्रसाद द्विवेदी -बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 48-49

"अत्यन्त धवल प्रभा पुंज से उसका शरीर एक
प्रकार से ढंका हुआ सा ही जान पड़ता था,
मानो वह पर्यटक-गृह में आबद्ध हो या दुग्ध
सलिल में निमग्न हो या विमल चीनांशुक से
समावृत हो, या दर्पण में प्रतिबिम्बित हो,
या शरद कालीन मेघपुंज में अन्तरित चन्द्रकला
हो । . . . . . यहाँ क्या मुनियों की
ध्यान-सम्पत्ति ही पुंजीभूत होकर वर्तमान है,
या रावण के स्पर्शभय से भागी हुयी कैलाश पर्वत
की शोभा ही स्त्री-विग्रह धारण करके विराज
रही है, या बलराम की दीप्ति ही उनकी
मत्तावस्था में उन्हें छोड़कर भाग आयी है।"(1)

बाणभट्ट ने कादम्बरी में प्राय: इन्हीं शब्दों में महाश्वेता का वर्णन
किया है ।

कादम्बरी के अतिरिक्त बाणभट्ट रचित हर्ष चरित को
को भी "बाणभट्ट की आत्मकथा" का उपजीव्य कहा जा सकता है ।
महाराज हर्ष, कुमार कृष्ण, महारानी राज्यश्री तथा स्वयं बाणभट्ट जैसे
प्रमुख पात्रों की सृष्टि का मूलाधार हर्ष चरित ही है । कहीं-कहीं

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (बाणभट्ट की आत्मकथा) पृष्ठ 42
कादम्बरी के महाश्वेता वर्णन में तुलनीय -
"अति धवल प्रभा परिगत देह तया स्फटिक गृह गतामिव, दुग्ध सलिल
मग्नामिव, विमलचीनांशुका चरितामिव, आदर्श तल संक्रान्तामिव,
शारदभ्रपट सलिरस्कृतामिव, ...देहवतीमिव, मुनिजन ध्यान सम्पदम्,
. . . .कैलाश श्रियमिव दशमुखोन्मूलन-क्षोभ निपतिताम. . . . .
मुसलायुधदेह प्रभामिव मधुमद विघूर्णनायास किलिताम्. . .कान्यकादर्श।

कथानक में भी समानता के दर्शन होते हैं । महाराज हर्षवर्धन की राज्यसभा में प्रथमतः बाणभट्ट का पदार्पण कुमार कृष्ण के बुलाने पर ही हुआ था - ऐसा दोनों ही ग्रन्थों में वर्णित है । कुछ प्रसंगों में तो शब्दशः कथोपकथन ही एक स्याकार है । "आत्मकथा" में कुमार कृष्ण से मिलने के लिए जो समय बाण भट्ट की साज सज्जा से न्यूनाधिक रूप में मिलती जुलती है ।

" उस दिन मैंने हट के स्नान किया, शुक्ल
अंगराज धारण किया, शुक्ल पुष्पों की माला
धारण की, आगुरुक शुक्ल धौत उत्तरीय धारण
किया । " {1}

हर्ष चरित का यही वर्णन दृष्टव्य है -

अथान्यस्मिन्नहनि उत्थाय प्रातरेव स्नात्वा धृत-धवल
दुकूलवासाः शुक्लांकुरागः शुक्लमाल्य• • • •प्रतिकूल
न्निस्रावः । {2}

इसी क्रम में एक प्रसंग और भी उद्धरणीय है- प्रथमबार राज्यसभा में पहुँचने पर महाराज हर्षवर्धन ने बाण के परिचय के अनन्तर जो टिप्पणी की वह दोनों ही ग्रन्थों में समान है । "हर्ष चरित" से एतद् सम्बन्धित कुछ वाक्य उद्धृत हैं ।

राजात् तं दृष्ट्वा च तं गिरि गुहागत
सिंह बृंहित गम्भीरेण स्वरेणपूरयन्निव
नभोभागम पृच्छत् - "एष स बाणः इति ।
यथाऽऽज्ञापयति देवः । सोऽयम् इति विज्ञापितो
दौवारिकेण न तावदेनमकृत प्रसादः पश्यामि इति ।

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 26
{2} हर्ष चरित बाण भट्ट द्वितीय पृष्ठ सं0 134 उच्छवास पृष्ठ 40

तिर्यङ्नीलधवलांशुकशालां तिरस्करिणीमिव
भ्रमयन्न-पांक्तीयमान तरलतारकस्यायामिनी
पक्ष्मः प्रभां परिवृत्य पृष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य
मालवराजसूनोरकथयत् महानयं भुजंगः इति । 〔1〕

बाण भट्ट की आत्मकथा में भी इस घटना को प्रस्तुत किया गया है । -

"महाराज से जब मेरा परिचय कराया गया तो
उन्होंने तिरस्कार भरी दृष्टि से मेरी ओर
देखा और पास ही पीछे की ओर बैठे हुए
मालवराज के पुत्र से कहा, यह परम लम्पट
व्यक्ति है । " 〔2〕

आचार्य द्विवेदी ने आत्मकथा में शूद्रक को भी दो बार स्मरण किया है ।
भट्टिनी द्वारा वीणा बजाने से प्रभावित भट्ट कह उठता है -

"सचमुच ही वीणा असमुद्रोत्पन्नरत्न है । मैं शूद्रक
की बात का रहस्य समझ रहा हूँ । " 〔3〕

कालिदास के प्रभाव से तो द्विवेदी जी इतने अभिभूत हैं, कि स्थान-स्थान
पर उन्होंने कालिदास के कुमार-सम्भवम्, मेघदूतम्, मालविकाग्निमित्रम्
तथा रघुवंशम् के कुछ स्थलों को शब्दशः अनूदित करके बाणभट्ट की आत्मकथा
में प्रयुक्त किया है । कालिदास के समान अर्थगर्भित एवं अलंकृत भाषा का
प्रयोग भी प्रस्तुत उपन्यास की विशेषताओं में अन्यतम् है । होली के रस-रंग

- -

〔1〕 हर्ष चरित 〔बाणभट्ट〕 द्वितीय पृष्ठ सं0 134 उच्छ्वास पृष्ठ 40
〔2〕 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 156
〔3〕 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 43

(तीन बार विलासिनियों को समय रंग क्रीड़ा के अनन्तर सुन्दरियों की देहवल्लरी से ग्रस्त अलंकार-प्रसनों से आच्छन्न मार्ग के वर्णन में द्विवेदी जी ने मेघदूत के एक श्लोक को साकार कर दिया है -

"गमन के उत्कम्पवश यहाँ भी सुन्दरियों के वेश से
मन्दार पुष्प झड़े हुए हैं, कान से सुनहरे पुष्प
खिसककर भूलुण्ठित हो रहे हैं, हृदय-देश पर
बार-बार आघात करने वाले हारों से बड़े-बड़े
गंधराज कुसुम टूट कर गिर गए हैं । " (1)

चारुचन्द्र लेख यद्यपि एक ऐतिहासिक उपन्यास है परन्तु इसकी धार्मिकता तथा साहित्यकता ने इसकी ऐतिहासिकता को ढक सा लिया है । लेखक ने विविध धार्मिक, तांत्रिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन करके उन्हीं की प्रभाव-छाया में इस उपन्यास का सृजन किया है ।

"मध्यकालीन धर्म-साधना तथा हिन्दी साहित्य का
आदिकाल इन दोनों ग्रन्थों को इस उपन्यास का
आधार बनाया गया है । . . . सर्व दर्शन संग्रह
गोरख साहित्य साधना माला, मालती माधव,
तारा मुक्ति, वृहदसंहिता शैवसंहिता आदि तांत्रिक
ग्रन्थों की इस उपन्यास में बहुत प्रयोग किया है।" (2)

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (आत्मकथा) पृष्ठ 93-94 मेघदूतम
उत्तरमेघ: श्लोक सं0 68 ।।
गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दार पुष्पै:
पत्रच्छेदै: कनककमलै: कर्ण विभ्रंशिभिश्च ।
मुक्ता जालै: स्तनपरिसरच्छिन्न सूत्रैश्च हारै
नैशो मार्ग: सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम ।।
(2) डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी उपन्यास साहित्य एक अनुशीलन (डा0
उमा मिश्र) पृष्ठ- 149

प्रस्तुत उपन्यास अपनी मूलकथा के समानान्तर धार्मिक साधनाओं तान्त्रिक अभिचारों की कहानी कहता सा लगता है । इस रूप में उस पर तान्त्रिक ग्रन्थों का प्रभाव तो स्पष्ट: सिद्ध है । इसमें धार्मिक सन्तों की चिन्तन-पद्धति का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

चारुचन्द्र पर जिन विचारकों एवं तत्सम्बन्धित ग्रन्थों का प्रभाव है उनमें से कुछ ग्रन्थों के कतिपय श्लोकों को तो भाषान्तर के साथ ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया गया है । गोरख शतक के कतिपय श्लोकों का भावार्थ चारुचन्द्र लेख के एक प्रसंग में दृष्टव्य है -

> "मैं भुजा उठा कर कहता हूं, इस शरीर के छ: चक्रों को समझ लो, पाँच आकारों का अनुभव करलो, मित्रो यह विचित्र घर है, यद्यपि इसमें नौ दरवाजे हैं और पाँच देवताओं से अधिष्ठित है । तो भी यह एक खम्भे पर ही टिका हुआ है । मैं पूछता हूं मित्रो, जो इतनी सी बात को नहीं जानता उसे सिद्धि कहाँ से मिलेगी । " {1}

यही सब भाषान्तर से गोरक्ष शतक में अंकित है । {2}

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्र लेख} पृष्ठ सं0 -3।

{2} गोरक्ष शतक श्लोक सं0 13-14

षट्चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योम पंचकम् ।
स्व देहे येन जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिन: ।।
एक स्तम्भं नव द्वारं गृहं पंचाधिदैवतम् ।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिन: ।।

इसी प्रकार सर्वदर्शन संग्रह के एक श्लोक का भाव भी रस सिद्धि के प्रकरण में ज्यों का त्यों अंकित है -

"देवि पारस को सामान्य धातु मत समझो यह
भगवान त्रिमयन सर्वांश का सारभूत रस है ।
यह भी जगतमाता का सर्वांश का विनिर्गत
सार रस है । " §1§

वेणी संहार नाटक के एक श्लोक को तो चारुचन्द्रलेख के कथोपकथनों में ज्यों का त्यों सम्मिलित कर दिया गया है ।

"यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यत: प्रयातुम् ।
अथमरणमवश्यमेव जन्तो:
किमतिमुधा मलिनं यश: कुरुध्वे" §2§

ज्ञान इच्छा क्रिया के रूप में त्रिधा विभक्त आद्यशक्ति की यह प्रतीक तथा विविध तान्त्रिक व धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ वेणी संहार तथा कुमार सम्भव आदि साहित्यिक कृतियों के माध्यम से कविवर भट्टनारायण तथा कालिदास जैसे महाकवि की भी ऋणी है ।

पुनर्नवा में प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री का पर्याप्त उपयोग द्विवेदी जी ने अधिक किया है । मृच्छकटिक के अतिरिक्त

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §चारुचन्द्र लेख§ पृष्ठ -345

सर्व दर्शन संग्रह पृष्ठ - 274
अभ्रकस्तव बीजं तुमम बीजं तुपारद:
अनयोर्मेलनं देवि मृत्यु दारिद्रनाशनम्

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §चारुचन्द्र लेख§ पृष्ठ - 332

वेणी संहार तृतीय अंक श्लोक सं0 6 §भट्टनारायण§

कालिदास के कुमार सम्भव और मेघदूत की सामग्री का बहुत अधिक उपयोग किया गया है । माढ़व्य-चन्द्रमौलि वार्तालाप में देश के प्रकृति वर्णन, नारी-सौन्दर्य वर्णन, मृणाल का तपोनिरता पार्वती के रूप में उल्लेख, उज्जयिनी की व्याख्या, महाकाल सम्बन्धि भावना आदि में उपरोक्त रचनाओं से सामग्री स्पष्टतः ली गयी है । §1§

शूद्रक एवं कालिदास की रचनाओं के अतिरिक्त भागवद्गीता तथा मनुस्मृति का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है । उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प दोनों ही मानव-मूल्यों की दृष्टियों से भरपूर हैं । पुनर्नवा का आधार मृच्छ कटिक ही है । मृच्छकटिक में आर्यक तथा शार्विलक दोनों पात्रों के चरित्र को विशेष महत्व देकर सहायक पात्रों के रूप में ही चित्रित किया गया है । मृच्छकटिक के इन दोनों उपेक्षित पात्रों के प्रति द्विवेदी जी की सहानुभूति का ही यह प्रतिफल है कि आर्यक और शार्विलक को प्रधान पात्रों के रूप में ग्रहण करके उन्होंने पुनर्नवा उपन्यास का ताना-बाना बुना । इन दोनों के अतिरिक्त चारुदत्त धूता:, रोहसेन, पालक, भानुदत्त तथा बसन्त सेना व मदनिका भी मूलतः मृच्छ कटिक के ही उद्भावित पात्र हैं । उपन्यास का उत्तरार्द्ध का यह कथानक भी अधिकांशतः मृच्छकटिक पर ही आधारित है । कथोपकथनों में भी लेखक ने मृच्छकटिक से पर्याप्त सामग्री ग्रहण की है । कहीं-कहीं तो मृच्छकटिक के श्लोकों के भावानुवाद के द्वारा ही कथोपकथनों का सृजन किया है । वीरक के द्वारा परिचय पूंछने पर जुआरी का उत्तर मृच्छकटिक से मिलता-जुलता ही है ।

"त्रेता ने मार डाला, पापर ने लूट लिया और कट्ठा ने भून लिया । . . . .धर्म भी पाया

---

§1§ डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य एक अनुशीलन §डा0 उमा मिश्रा § पृष्ठ - 170

जुए से, घर और घरनी जुए से, खाया-पिया
जुए से, सब कुछ खोया जुए से । " §1§ §2§

अनामदास का पोथा के कथानक का आधार, छान्दोग्य उपनिषद् है । इस उपन्यास के अनेक स्थल छान्दोग्य उपनिषद् के छाया अनुवाद मात्र है । §3§

आचार्य द्विवेदी का लेखन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों से सदैव ओत-प्रोत रहा है और उपनिषद् भारतीय संस्कृतिक उन्नायक और परिचायक ग्रन्थ है । अत: उनके किसी उपन्यास का भारतीय संस्कृति के गौरव-ग्रन्थों की गरिमा को धारण करने वाले उपनिषद् ग्रन्थ से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है । उनके अनामदास के पोथा की समूद कथा तो छान्दोग्य उपनिषद् पर आधारित है ही, साथ ही साथ उपन्यास के मध्य में आए अनेक उपदेशात्मक एवं सूक्ष्म ज्ञान युक्त प्रसंग भी छान्दोग्य उपनिषद् से ही लिए गए हैं । द्विवेदी जी के लेखन की एक मुख्य विशेषता यह है कि उनके द्वारा ज्ञात लोक कल्याण कारिणी सामग्री उनके उपन्यासों में अवश्य स्थान प्राप्त है । अपने प्राप्त ज्ञान को वे कोई न कोई प्रसंग पैदा करके अपने उपन्यास में अवश्य सम्मिलित कर देते हैं । अपने इसी स्वभाव के अनुरूप उन्होंने ऐसे अनेक प्रसंग अनामदास का पोथा में भी सम्मिलित कर दिए हैं ।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §पुनर्नवा§ पृष्ठ- 92, मृच्छकटिक §अंक-7§
त्रेता धृत सर्वस्व: पावर पतनाच्च शोषित शरीर: ।
नर्दितदर्शित मार्ग: कटेन विनिपातितो यामि ।।

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §पुनर्नवा§ पृष्ठ- 93 मृच्छकटिक §अंक-7§
द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव, दारा मित्रं द्यूतेनैव ।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव, सर्वं नष्ट द्यूतेनैव ।।

§3§ छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय चतुर्थ

उपन्यास के आरम्भ के पृष्ठों में ही हुई ज्ञान चर्चा [1] छान्दोग्य उपनिषद [2] से ही ली गयी है। इसी प्रकार हंसों के द्वारा रैक्व की महिमा का वर्णन [3] प्राचीन शाल एवं सत्यज्ञ आदि पाँच ऋषियों का वैश्वानर आत्मा की खोज के विषय में महाराज अश्वपति के पास ज्ञान प्राप्ति हेतु आना [4] तथा सनत कुमार द्वारा नारद को दिया गया आत्म ज्ञान का उपदेश [5] ही छान्दोग्य उपनिषद के विभिन्न स्थलों[6] के प्राय: अनुवाद ही हैं। ऊपर लिखित तथ्यों के प्रकाश में यह स्वयं सिद्ध है कि अनामदास का पोथा के लेखन पर छान्दोग्य उपनिषद का प्रभाव चरम सीमा क तक प्रभावी है।

आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक एवं अपनी साहित्यिक कृतियों में यत्र-तत्र-सर्वत्र ही उसके प्रचारक के रूप में विख्यात हैं। भारतीय संस्कृति लोक-कल्याण और मानव-मूल्यों के लिए प्रख्यात है। भारतीय संस्कृति पर आध्यात्मिकता का प्रभाव तो दिन के समान स्पष्ट है ही, साथ ही साथ उनके आध्यात्मिकता के प्रेम की धार को तीक्ष्ण करने में कवीन्द्र रवीन्द्र व कबीर का योग भी उल्लेखनीय है। कवीन्द्र का बहुकालीन सान्निध्य जहाँ द्विवेदी जी की आध्यात्मिकता

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 318

(2) छान्दोग्य उपनिषद -प्रथम अध्याय- अष्टम व नवम खण्ड

(3) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली -अनामदास का पोथा पृष्ठ 330

(4) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली -अनामदास का पोथा पृष्ठ 365

(5) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ434

(6) छान्दोग्य उपनिषद - क्रमश: चतुर्थ अध्याय प्रथम खण्ड
पंचम अध्याय 11 से 24 खण्ड
सप्तम अध्याय सम्पूर्ण

को उभार कर उनकी औपन्यासिक कृतियों तक लाने में बहुत हद तक उत्तरदायी रहा है, वहाँ इस विषय में कबीरदास का प्रभाव भी उल्लेखनीय है । कवि-गुरु रवीन्द्र के सानिध्य में रहकर आचार्य द्विवेदी ने यथार्थ परक मानवीय मूल्यों को अभिनव दिशाओं में चिन्तन दिया ।

आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यासों का कथा-विचार करते समय अनेक विषयों का आश्रय ग्रहण किया है, परन्तु अन्य विषयों के साथ-साथ आध्यात्मिकता भी कदम से कदम मिलाकर चलती रही है । उनका अनामदास का पोथा तो आध्यात्मिकता का पूर्णतया परिपोषक है ही, उनके अन्य तीनों उपन्यासों में भी आध्यात्मिकता का गम्भीर पुट विद्यमान है । उनके अधिकांश प्रधान पात्र गम्भीर विचारक की भाँति आध्यात्मिकता के रंग में रंगे से प्रतीत होते हैं । उन्हें जहाँ कहीं भी अवकाश मिलता है, वहीं उनके पात्र आध्यात्मिक हो उठते हैं और बेझिझक अपने भावों को प्रकट करते हैं ।

बाण भट्ट की आत्मकथा के पात्रों के आध्यात्मिक विचारों पर जब दृष्टि पात किया जाता है तो स्पष्ट होता है कि प्राय: सभी पात्र आध्यात्मिकता के गम्भीर तथा गुरुतर भार को उठाए हुए भी सामान्य मानव का जीवन जी रहे हैं । छोटे राजकुल का कंचुकी निपुणिका को आध्यात्मिकता का उपदेश देते हुए अपने विचार प्रकट करता है -

"आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और ग्रहीता दोनों को सार्थक करती है......लौकिक मानदण्ड से आनन्द नामक वस्तु को नहीं मापा जा सकता । दु:ख तो केवल मन का विकल्प है......अपने को नि:शेष भाव से दे देने से ही दु:ख जाता रहता है ।" §1§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §बाणभट्ट की आत्मकथा§ पृष्ठ 217

अघोर भैरव के मुख से जो मेरा सत्य है यदि वह वस्तुत: मेरा सत्य है तो वह सारे जगत का सत्य है । [2] भट्टिनी गहन आध्यात्मिक विचारों का अवगाहन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती है, कि इस नर-लोक से लेकर किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है ।[3] निपुणिका का विचार है कि प्रेम एक और अविभाज्य है । [4]

चारुचन्द्र लेख के पात्र भी आध्यात्मिकता के भार के नीचे दबे हुए हैं । मोट देश के एक बौद्ध मठ के प्रधान भिक्षु के आध्यात्मिक विचार सीदी मौला के मुख से सुने जा सकते हैं । -

> " यह स्थूल शरीर एक आवरण मात्र है । इसके भीतर एक भाव शरीर है जिसमें भाव लहरियाँ प्रत्येक क्षण उद्वेलित हो रही हैं । ....भाव जगत में जो कुछ अनुभूत होता है वह सब स्थूल जगत में प्रत्यक्ष हो सकता है । भाव जगत में यदि तुम रोग मुक्ति सोचो तो स्थूल जगत में भी रोग-मुक्ति हो सकती है, होती है । " {5}

भगवती विष्णु प्रिया के विचार से - यह जो कुछ देख रहे हो, सुन रहे हो, समझ रहे हो, अनुभव कर रहे हो सब तो माया है । [6] उन्हीं के विचार से ज्ञान, इच्छा और क्रिया रूप में यह संसार त्रिधा विभक्त है...

{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {बाणभट्ट की आत्मकथा} पृष्ठ 213
{3} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {बाणभट्ट की आत्मकथा} पृष्ठ 229
{4} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {बाण भट्ट की आत्मकथा}पृष्ठ 249
{5} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्रलेख} पृष्ठ 310
{6} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्रलेख} पृष्ठ 47।

जब क्रिया और इच्छा दोनों ज्ञान की ओर बढ़ने लगती हैं तो नर-नारी के पिण्ड में इस स्थूल काया में चिन्मय शिवत्व की ज्योति जगती है।[1]

सीदी मौला के आध्यात्मिक विचार -

"यह जो अनेक रूप देख रहे हो वह एक ही शक्ति के प्रस्पन्द-विस्पन्द का परिणाम है। . . . . मैं जो कुछ कह रहा हूं महाराज, कि जो इस ब्रह्माण्ड में घटित हो रहा है वह छोटे से छोटे पिण्ड में भी है।[2] केवल इतना ही नहीं कि साधु-सन्यासियों के विचार की आध्यात्मिकता से अनुप्रेरित हो अपितु चारुचन्द्र लेख के नायक राजा सातवाहन के विचारों में भी आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। वह कहता है, कि हमारे भीतर का चिन्मय तत्व समस्त निर्णमय तत्वों से बड़ा है।[3]

पुनर्नवा के कतिपय पात्र आध्यात्मिकता का चित्रण करते हैं। देवरात एक ऐसे पात्र हैं जो कि सांसारिक व्यवहार का यथावत निर्वाह करते हुए भी आध्यात्मिक संसार में निवास करते हैं। अपनी स्वर्गीय पत्नी शर्मिष्ठा के ध्यान में प्राय: आध्यात्मिक दुनियाँ में खो जाते हैं। एक अवसर पर मंजुला को ढाँढ़स बँधाते हुए वे कहते हैं कि कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नहीं करती। यह अन्तर्यामी देवता ही उद्धार कर सकता है।[4] लेखक ने मंजुला की मृत्यु के अनन्तर भी आर्यक, चारुचन्द्र एवं देवरात के विचारों के संसार में प्रत्यक्ष करके आध्यात्मिकता को प्रतिष्ठित करने का ही प्रयत्न किया है। अपने इसी आध्यात्मिक अस्तित्व के समय मंजुला, आर्यक का मार्ग प्रशस्त करती हैं -

---

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्र लेख} पृष्ठ 472

{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्र लेख} पृष्ठ 304

{3} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्र लेख} पृष्ठ 329

{4} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली {चारुचन्द्र लेख} पृष्ठ 28

" नाम रूप तो उपासक के भाव हैं । उपासक के
भाव ही तो उपास्य को नाम और रूप देते हैं । "§1§

अनामदास का पोथा के अधिकांश पात्र तपोनिष्ठ, आत्मदर्शी साधक हैं । उनकी आध्यात्मिकता में संदेह का अवसर नहीं है । सम्पूर्ण उपन्यास पग-पग पर ऋषियों के आध्यात्मिक विचारों से ओत-प्रोत है । प्राचीन शाल एवं सत्यज्ञ आदि पाँच ऋषियों को महाराज अश्वपति द्वारा वैश्वानर आत्मा के विषय में ज्ञान का दान [2] तथा सनत कुमार द्वारा नारद का दिया गया आत्मज्ञान का उपदेश विशिष्ट [3] है ।

भगवती ऋतम्भरा रैक्व को वैश्वानर भगवान का रूप समझाते हुये कहती हैं :-

"सारा चर-अचर जगत उसी परम वैश्वानर का
प्रत्यक्ष विग्रह है जिसका एक अंश तुम्हारे अन्तर
में प्रकाशित हो रहा है । " §4§

जटिल मुनि अपने आध्यात्मिक विचारों को स्पष्ट करते हुए रैक्व को उपदेश देते हैं कि अपने आप को देख लेना ही सबसे बड़ी सिद्धि है । [5] आचार्य द्विवेदी ने इन सिद्ध पुरुषों के माध्यम से मानव-मूल्यों की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है ।

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §चारुचन्द्र लेख§ पृष्ठ 191
§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §क= अनामदास का पोथा§पृष्ठ 365
§3§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §अनामदास का पोथा§ पृष्ठ 334
§4§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §अनामदास का पोथा§ पृष्ठ 421
§5§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली §अनामदास का पोथा§ पृष्ठ 459

आचार्य द्विवेदी मध्यकालीन सन्त कवियों से विशेष प्रभावित रहे हैं। उनमें कबीरदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कबीर पर लिखते समय द्विवेदी ने नाना साधनाओं की चर्चा प्रस्तुत कर दी है। कबीर की भक्ति साधना से आचार्य द्विवेदी प्रभावित हैं। भक्ति का साहित्य प्रेम की अपेक्षा रखता है। कबीर की वाणी में यह सब है।

"भाग बिना नहिं पाइए, प्रेम-प्रीति की भक्त।
बिना प्रेम नहिं भक्ति कछु, भक्ति परयो सब जक्त ।। §1§

आचार्य द्विवेदी ने अपने युगकालीन उपन्यासकारों, विचारकों की अवधारणाओं का अध्ययन किया है। प्रेम चन्द ने जिस प्रकार मानवता के प्रति निष्ठा को व्यक्त करते हुए अपने उपन्यासों में अपने प्रतिनिधि पात्रों का सृजन करके उनके माध्यम से मानवता की प्रतिष्ठा की है।

"ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था - मानव-जाति की एकता.....
उनका मानव प्रेम इस आधार पर अवलम्बित था कि प्राणि-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत का व्यापारिक महत्व के सिवा वह और कोई उपयोग नहीं समझते थे। वह व्यवहारिक महत्व उनके लिए मानव जाति को एक दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृभाव को दृढ़ करना था।" §2§

हिन्दी साहित्यकारों में कबीर और प्रेम चन्द विचारकों की मानवतावादी मूल्य अवधारणा आचार्य द्विवेदी के मानस में घर किए हुए है। बाणभट्ट की

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड 4, पृष्ठ सं0 33।

§2§ गोदान पृष्ठ संख्या 309

आत्मकथा में छोटे राजकुल में पराधीन जीवन में जकड़ी भट्टिनी को निपुणिका एवं बाण भट्ट के द्वारा मुक्त कराना, अपनी मुक्ति के बाद भट्टिनी का आशंकित रहना सहज मानवीय मूल्यों के जीवन्त प्रसंग हैं ।[1]

मानव जाति के भेद-भाव के प्रति क्षोभ व्यक्त करती हुई भट्टिनी के मनोभावों की एक झलक दृष्टव्य है :-

> "आर्यावर्त जैसी विचित्र समाज-व्यवस्था मैंने कहीं नहीं देखी । यहाँ इतना स्तर भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं।[2]..
> ...एक जाति दूसरों को म्लेच्छ समझती है । एक मानव दूसरे को नीच समझता है । इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है ।[3]
> ......लोरिक देव के मुख से जैसे द्विवेदी स्वयं भी बोल उठे हैं -
> "आर्यावर्त के समाज में अनेक स्तर हो गये हैं । यह भगवान का बनाया विधान नहीं है, यह असत्य है।" §4§

चारुचन्द्र लेख यद्यपि राजाओं और सामन्तों की कहानी है परन्तु जहाँ भी लेखक को अवसर प्राप्त हुआ है उसने मानवता का संदेश निष्ठा पूर्वक दिया है । यह उपन्यास सिद्ध सामन्त कालीन सिद्धियों एवं राजनीति के दाव-पेचों की कहानी है । फिर भी मानव-मूल्यों के संदेश के लिए इसमें प्रतिमान छिपे हैं । कथाकार ने सीदी मौला के चरित्र की कल्पना करके मानव - मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । सीदी मौला तत्कालीन

- -

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 227

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 228

§3§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 228

§4§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 211

दिल्ली के बादशाह द्वारा सामान्य जनों पर किए जाने वाले अत्याचार से द्रवित हो उठा है और राजा सातवाहन को इन अत्याचारों की कहानी सुनाते हुए सच्चे मानवतावादी हो उठे हैं।

बादशाह द्वारा निरीह जनों पर किए गए अत्याचार से द्रवीभूत होकर वे कह उठते हैं कि "भोली-भाली स्त्रियों और निरीह बच्चों तक को उसने जलती सलाखियों से बेधा है। मेरा मन भी विचलित हुआ है। हाय, उन गरीबों ने क्या किया था।" (1)

सीदी मौला तत्कालीन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाना चाहता है, वह राजा सातवाहन को प्रजा की दैन्यता को प्रदर्शित कर उनकी सहायता के लिए प्रेरित करता है -

> "उस तीन वर्ष की भोली बच्ची को माँ की गोद में रखकर कैद डालने की क्या आवश्यकता थी। अब भी ये अत्याचार कहाँ समाप्त हुए। सैकड़ों कारागार में पड़े हुए हैं।.....
> इन भोले, निरीह, निरपराध बच्चों ने और भले घर की बहू बेटियों ने क्या अपराध किया था, इन्हें क्यों सता रहे हो।" (2)

सिसकती हुई मानवता के लिए यह संवेदना सच्ची मानव वादिता का युक्ति-युक्त निदर्शन है। समष्टि रूप की कल्याण-कामना को महत्व देने वाले गोरखनाथ की यह वाणी ही मानवता का पावन संदेश देती हुई प्रतीत होती है, कि सारे जगत को भूलकर अपनी मुक्ति की चिन्ता

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख- पृष्ठ सं0 52।
(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख- पृष्ठ सं0 52।

करना सबसे बड़ी माया है । आचार्य द्विवेदी ने सन्तो-महात्माओं से इन्हीं मूल्यों की परिचर्या करवायी है ।

पुनर्नवा उपन्यास के देवरात के सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय के लिए किए गए अन्य क्रिया-कलापों के साथ-साथ महामारी की शिकार मंजुला की अनाथ पुत्री का लालन-पालन करना मानव वादिता का जीवन्त उदाहरण है । सुमेर काका के शब्दों में हलद्वीप का तत्कालीन राजा प्रजा पर अनाचार कर रहा है । ऐसे राजा के विरुद्ध आर्यक द्वारा आवाज उठाना ¹ मानववादिता के राजमार्ग का अन्तिम न सही - आरम्भिक आयाम तो अवश्य ही है ।

उज्जयिनी की पीड़ित जनता के उद्धार के लिए राजा के दण्डधरों से महामल्ल शार्विलक का द्वन्द युद्ध लेखक की मानववादिता का सहज प्रमाण माना जा सकता है । मानवता की सच्ची सेवा न कर पाने के दुख से दुखी देवरात ने चन्द्रमौलि से कहा था -

> "तुम बता सकते हो आयुष्मान कि जो स्नेह
> पाता रहा वह अपने आपको मिटाकर प्रकाश
> क्यों नहीं दे सका । " ¦2¦

अनामदास का पोथा यद्यपि दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि पर आधारित कथानक को लेकर लिखा गया है परन्तु उसमें भी लेखक यथा अवसर मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठित कर पाने में पूर्ण सफल हुआ है । रैक्व द्वारा मृत गाड़ीवान तथा बाद में उसकी पत्नी ऋतुका के दुख से दुखी होना ³, औदुम्बरायण की सहायता से राजा द्वारा पीड़ित प्रजा को

¦1¦ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा पृष्ठ सं0 48

¦2¦ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- पुनर्नवा पृष्ठ सं0 129

¦3¦ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - अनामदास का पोथा पृष्ठ 380

कार्य कराने के बदले में अन्न की व्यवस्था करना [1] तथा अकाल पीड़ित जनता के दु:ख से व्याकुल रैक्व के द्वारा गाड़ी के नीचे तप करने की अपेक्षा गाड़ी चलाकर दुखी मानवों की सहायता के लिए गाड़ी चलाने का व्रत लेना, मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं । मानवता के पीड़ित स्वरूप से अकसन्न रैक्व का जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत संकल्प द्रष्टव्य है -

> "मैं जो गाड़ी के नीचे बैठकर तप कर रहा था,
> वह झूठा तप था, सही तपस्या गाड़ी चलाकर
> की जा सकती है । " §2§

अनामदास का पोथा में लेखक ने मामा के चरित्र की अवधारणा करके तो मानो मानवता के रूप की प्राण-प्रतिष्ठा करने का ही सफल प्रयत्न किया है ।

आचार्य द्विवेदी हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्येता होने के कारण इसकी प्रत्येक कमी को परखने की दृष्टि रखते हैं । इसी कारण वे उपन्यास को मात्र मनोरंजन की वस्तु न समझ कर उसके द्वारा सच्चे मानवीय मूल्यों के चित्रण का उपाय मानते हैं । दीपिका बनर्जी ने लिखा है -

> "आचार्य द्विवेदी एक सजग, जागरूक एवं गहन
> अध्ययन शील रचनाकार हैं । अत: अपने उपन्यासों
> में भारत के अतीत का चित्रण करना ही उनका
> एक मात्र लक्ष्य नहीं था । अपने उपन्यासों में

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 418

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- अनामदास का पोथा पृष्ठ 376

उन्होंने मानवतावादी जीवन-दृष्टि का भी
परिचय देकर अपनी गहन मानसिकता का
परिचय दिया है । " §1§

यद्यपि द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिकता को अधिक महत्व प्रदान किया परन्तु इतने पर भी सम सामयिक समाज की समस्याओं से पूर्णतया प्रभावित हुए हैं और इस प्रभाव ने उनके उपन्यास में मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । उस काल का परिवेश चाहे जो भी रहा हो लेखक ने समकालीन समस्याओं का मूल्यों की दृष्टि से निराकरण करने का प्रयास किया है । इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर द्विवेदी जी ने भी अपने चारों उपन्यासों में हर वर्ग की समस्या को लेकर तर्क संगत चर्चाएँ की हैं ।

बाण भट्ट की आत्मकथा उपन्यास नारी को समाज में सम्मान पूर्ण स्थान दिलाने की दिशा में आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रयत्न-शील रहा है । यह समस्या उस काल में जितनी संगत थी, वर्तमान में भी वह उतनी ही संगत है । बाण भट्ट का यह कथन कि "मैं स्त्री शरीर को देव मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ । [2] जितना सामाजिक स्वास्थ्य के लिए उस काल में उपयोगी था उससे भी अधिक आज के काल में है । साम्प्रदायिकता व धर्मान्धता की समस्या को लेखक ने बड़े कौशल के साथ उस काल के साथ जोड़ दिया है । इसका परिचय भट्टिनी के निम्न लिखित वाक्य से मिलता है ।

---

§1§ राष्ट्रभाषा संदेश पत्रिका - सम्पादक प्रभाशास्त्री अंक- 17
दिनांक 15-03-85 लेख डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व उपन्यासकार के रूप में ।

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - बाण भट्ट की आत्म कथा पृष्ठ 28

"यहीं देखो तुम यदि किसी यवन कन्या से
विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर
सामाजिक विद्रोह माना जायगा । परन्तु
यह क्या सत्य नहीं है, कि यवन-कन्या भी
मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है ।
महामाया जिन्हें म्लेच्छ कह रही है वे भी
मनुष्य हैं । " ॥1॥

इस देश के सामाजिक स्तर भेद की विषमता के कारण आज का प्रबुद्ध वर्ग जितना विक्षुब्ध है प्राय: वही भाव लेखक ने भट्टिनी के मुख से व्यक्त कराए हैं । यहाँ इतना स्तर भेद है, कि मुझे आश्चर्य होता है, कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं । [2]

चारुचन्द्र लेख भारत पर हुए चीनी आक्रमण के समय लिखा गया था । अत: उसका प्रभाव भी लेखक, उपन्यास के काल की कथा से जोड़ दिया है । रानी चन्द्रलेखा द्वारा राज्य की सम्पूर्ण जनता को जाग्रत करने का प्रयास जितना उस काल में सच था उतना ही सन् 1962 में भी ।

स्त्री एवं पुरुषों द्वारा अपने कर्तव्यों को ठीक प्रकार से न पहचानने के कारण परिवारों के विघटन की आधुनिक समस्या को लेखक ने तत्कालीन परिवेश में जोड़ दिया है । तत्कालीन तापस-बाला के विचार आधुनिका गृहणियों के लिये भी मार्ग दर्शक हैं ।

"हाय, अगर उन्होंने मुझे इतनी स्वतन्त्रता दी
होती तो मेरी दुनियाँ कुछ और ही होती ।"॥3॥

॥1॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 228
॥2॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 228
॥3॥ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 369

पुनर्नवा में भी अनेक समस्याओं के साथ आधुनिक समस्या की एक अत्यन्त मुखर समस्या को उठाकर उसका युक्ति-युक्त समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। न्याय एवं विधि-व्यवस्था में समाज की आवश्यकता के अनुरूप परिष्करण एवं परिमार्जन की आवश्यकता को युक्ति-युक्त तर्कों से पुष्ट करके आधुनिक विधि-व्यवस्था के एक अत्यन्त संवेदनशील पक्ष को स्पर्श किया गया है। तत्कालीन आचार्य पुरुषोत्तिम का निम्न लिखित वाक्य आज की विधि-व्यवस्था के लिए भी मार्ग दर्शक सिद्धान्त माना जा सकता है -

> "यदि निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन ये व्यवस्थाएं तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।" {1}

अनामदास का पोथा में भी कुछ आधुनिक समस्याओं को तत्कालीन समाज पर आरोपित करके दर्शाया गया है। राजा जानश्रुति द्वारा अभावग्रस्त पौर जनपदों को अन्न देकर रंग मंच का निर्माण कराना।[2] आज के समय काम के बदले अन्न परियोजना से नाम और रूप दोनों ही बातों में साम्य है। इसके अतिरिक्त लेखक ब्राह्मण कुमार रैक्व का विवाह शूद्र कन्या जाबाला से सम्पन्न कराके आधुनिक कट्टर वर्ण व्यवस्था पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है।

मानव-मन की सामान्य अवधारणाओं के अनुरूप आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी अपने पूर्ववर्ती-परवर्ती कवियों और लेखकों से प्रभावित हुए हैं। अपने काल की सामाजिक-साहित्यिक समस्याओं से अभिप्रेरित होकर भी उन्हें उपन्यास सृजन को दिशा मिली है। इसीलिए

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 167

{2} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली अनामदास का पोथा पृष्ठ सं0 381

उन्होंने पुरातन कथानकों को अंकित करते हुए वर्तमान से उनका सामंजस्य स्थापित करके मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है ।

बाण भट्ट की आत्मकथा पर कादम्बरी, हर्ष चरित, मालविकाग्निमित्र, कुमार सम्भव तथा मेघदूत आदि ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है । किसी-किसी स्थान पर तो आत्मकथा की भाषा कादम्बरी के किन्हीं स्थलों का अनुवाद मात्र है । आत्मकथा के चण्डी मन्दिर के पुजारी का वर्णन तथा भट्टिनी के प्रथम साक्षात्कार के समय बाण द्वारा भट्टिनी के रूप का वर्णन तो क्रमश: कादम्बरी के धार्मिक वर्णन तथा महाश्वेता वर्णन से शब्दश: मिलता है । हर्ष चरित को आत्मकथा का उपजीव्य कहा जा सकता है ।

चारुचन्द्र लेख पर भी संस्कृत भाषा के विविध तांत्रिक ग्रन्थों का उल्लेखनीय प्रभाव है । गोरक्ष शतक तथा सर्व दर्शन संग्रह के कुछ श्लोकों का भाषान्तर करके ज्यों का त्यों ही चारुचन्द्र लेख के कथोपकथनों में सम्मिलित कर दिया गया है । भट्ट नायक रचित वेणी संहार नाटक का एक श्लोक भी भाषान्तर के साथ ज्यों का त्यों प्रयुक्त है ।

पुनर्नवा में भी मृच्छकटिक, कुमार सम्भव व मेघदूत की सामग्री का पर्याप्त प्रयोग किया गया है । प्राय: कथा की दृष्टि से पुनर्नवा का आधार मृच्छकटिक ही है । इसके अधिकांश पात्र भी मृच्छकटिक से ही लिए गए हैं ।

अनामदास का पोथा का उपजीव्य छान्दोग्य उपनिषद है । छान्दोग्य उपनिषद के चतुर्थ अध्याय की कथा के आधार पर भी इसके कथानक का सृजन किया गया है । अनेक आध्यात्मिक और धार्मिक प्रसंग भी छान्दोग्य उपनिषद से शब्दश: ग्रहण किए गए हैं ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मानवीय मूल्यों के स्रोत संस्कृत के वांगमय से ही प्राप्त किए हैं । उनके उपन्यासों में जन-समस्याओं को उठाया गया है । वे उस काल में तो सत्य थीं ही उनका महत्व आज के काल में भी वैसा ही है ।

बाण भट्ट की आत्मकथा में छोटे राजपुर से भट्टिनी की मुक्ति चारुचन्द्र लेख में दिल्ली के सुल्तान द्वारा दिल्ली के निरपराध व्यक्तियों को सताने पर सीदी मौला का आक्रोश, पुनर्नवा में देवरात द्वारा मंजुला की अनाथ पुत्री का लालन-पालन तथा उज्जयिनी की पीड़ित जनता के उद्धार के लिए महामल्ल शार्विलक का राजा के दण्ड धरों से द्वन्द युद्ध एवं अनामदास का पोथा में रैक्व द्वारा दीन-दुखियों में लीन होना मानवीय मूल्यों का दिग्दर्शन है ।

उदात्त जीवन-साहित्य की गरिमा का अधिष्ठान है । एतदर्थ कहा जा सकता है, कि आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में मानवीय मूल्यों के सह-सम्बन्ध की बहु आयामी दिशा-सूत्रों के उत्स से प्रतिबद्ध करके देखा गया है । आचार्य द्विवेदी ने परम्परा की नींव पर वर्तमान की इमारत खड़ी करके शास्त्रीय और आज के लिए भी प्रासंगिक मानव-मूल्यों की संरचना की है ।

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथा-साहित्य का अनुशीलन करने से विदित होता है कि न केवल संस्कृत साहित्य से ही उनके उपन्यास प्रभावित हैं प्रत्युत महान दार्शनिकों के विचारों से भी वे प्रभावित हैं । नीति-परक मूल्यों का स्रोत होता है और विशेषता से आध्यात्मिकता से नैतिक मूल्यों को पाया जाता है । मनीषियों और आध्यात्म विचारवानों ने आध्यात्मिक आधार लेकर नैतिक मूल्यों का उद्घाटन किया है । जिसका प्रभाव डा0 द्विवेदी के साहित्य में देखा जा सकता है । कुटज जैसे निबन्धों

में जीवन-दर्शन की झलक मिलती है । कवीन्द्र रवीन्द्र एवं कबीरदास जी की आध्यात्मिकता का प्रभाव भी इनके उपन्यासों में देखा जाता है । कवीन्द्र रवीन्द्र के विचारानुकूल आनन्द की सत्ता भौतिक या लौकिक परिधि में नहीं प्राप्त हो सकती । कबीर दास जी भी चिरन्तन सुख को आत्मान्तर्गत ही देखते हैं । बाण भट्ट की आत्मकथा में छोटे राजकुल में कंचुकी व भाग्य निपुणिका को उपदेश देते हैं -

> "आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और ग्रहीता दोनों को सार्थक करती है ।......... लौकिक मानदण्ड से आनन्द नामक वस्तु को नहीं मापा जा सकता है । दुःख तो केवल मन का विकार है। .....अपने को निःशेष भाव से देने से ही दुःख जाता रहता है । " §1§

डा0 द्विवेदी जी के निबन्धों में से कुटज निबन्ध में भी उल्लिखित है -

> "दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं । सुखी वह है जिसका मन वश में है, दुखी वह है जिसका मन परवश है........ जिसका मन अपने वश में नहीं है वही दूसरे के मन का छन्दावर्त्तन करता है, अपने को छिपाने के लिये मिथ्या आडम्बर रचता है दूसरों को फँसाने के लिये जाल बिछाता है । कुटज इन सब मिथ्याचारों से मुक्त है । वह वशी है । वह वैरागी है । राजा जनक की तरह संसार में रहकर सम्पूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त है । §2§

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 247

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली कुटज पृष्ठ सं0 34

डा0 द्विवेदी जी कवीन्द्र रवीन्द्र के विचारों से प्रभावित ही नहीं हुये प्रत्युत श्रीमद्भगवत गीता के श्लोकों की पूर्णतय: झलक उनके उपन्यासों में उपलब्ध होती है ।

"ब्राह्मण्याधायकर्माणि सङ्ग व्यक्त्वाकरोतिय:
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्र मिवाम्भसा ।। §1§

स्वतन्त्र भाव से निर्लिप्त रहकर राजा जनक की तरह अनासक्तभाव से कार्य करने से सुख-दुख नहीं भासते । ये मन के विकल्प हैं । इस प्रकार कार्य करने वाले व्यक्ति कमल के पत्र-सदृश पापेन लिप्त नहीं होते ।

कबीर दास जी ने आत्मा को ईश्वरीय-सत्ता के रूप में स्वीकार कर किसी बाह्य शक्ति को नहीं मानते ।

" ज्यों तिलमाहीतेलहै, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुझ में, जाग सकै तो जाग । §2§

पुनर्नवा में मंजुला को ढाँढस बँधाते हुये देवरात कहते हैं ।

"कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नहीं करती ।
अन्तर्यामी देवता ही उद्धारकर सकता है । " §3§

टैगोर की मानवतावादी दृष्टि अत्यन्त व्यापक है । वे ईश्वर के परम रूप को पूरी तरह स्वीकारते हुये भी मानव को विशिष्टता व गरिमा प्रदान करते हैं । मानव ही सृष्टि का सिरमौर है -

"यह विचार मानवता दर्शन में सर्वत्र थोड़ा-बहुत अन्तर के साथ दृष्टिगत होता रहता है । "मानव

---

§1§ श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 5 - श्लोक सं0 10

§2§ कबीर की वाणी

§3§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 191

अपने आराध्य से एकाकार होने की अपेक्षा
प्रतिक्षण उसके आनन्द की अनुभूति करना श्रेयस्कर
समझता है - "इस विचार को सभी वैष्णव
कवियों ने व्यक्त किया है । किन्तु परम सत
ईश्वर ससीम मानव का सखा, बन्धु, सहचर है,
और अपनी पूर्णता के लिये ससीम मानव पर
अवलम्बित है - इस विचार को अपनी विशिष्ट
शैली में व्यक्त करने का साहस रवीन्द्रनाथ टैगोर
ने किया है । " §1§

उक्त भावों को रवीन्द्र नाथ टैगोर गीतांजलि में प्रकट करते हैं -

"इसीलिए तुम्हारा आनन्द है मेरे ऊपर
इसीलिये तुम नीचे आये हो,
हे त्रिभुवनेश्वर, अगर मैं न होता -
तो तुम्हारा प्रेम मिथ्या §हो गया§ होता ।
मुझ ही लेकर यह मेला है,
मेरे हृदय में रस का खेल चल रहा है
मेरे जीवन में विचित्र रूप धारण करके
तुम्हारी लीला तरंगित हो रही है । " §2§

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में पुनर्नवा के अन्तर्गत विष्णु प्रिया के
वक्तव्य है से उक्त भाव उद्भासित होता है । -

"ज्ञान इच्छा और क्रिया रूप में यह संसार
त्रिधाभिव्यक्त है । . . . . जब क्रिया और

---

§1§ रवीन्द्रनाथ टैगोर के दर्शन में मानवतावाद- कामना सिंह पृष्ठ सं0 48

§2§ गीताञ्जलि

इच्छा दोनों ज्ञान की ओर बढ़ने लगती है तो
नर-नारी के पिण्ड में इन स्थूलकाया में चिन्मय
शिवतत्व की ज्योति जगती है । (1)

सीदी मौला भी समस्त विश्व का ईश्वर का परिणाम मानते हैं -

"यह जो अनेक रूप-भेद देख रहे हो, वह एक ही
शक्ति के प्रस्पन्द-विस्पन्द का परिणाम है. . .
. . . . . मैं जो कह रहा हूँ महाराज, कि
विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ घटित हो रहा है
वह छोटे से छोटे पिण्ड पिण्ड में भी है । (2)

भारतीय अध्यात्मवादी मानते हैं कि ईश्वर के उतने ही नाम और रूप हैं जितने प्रकार की उपासक की भावनायें । रवीन्द्र नाथ टैगोर का भी यह मन्तव्य है । वे गीतांजलि में उक्त तथ्य को उद्घाटित करते हुये सभी मानवों में एक ही ईश्वर का निवास मानते हैं । इसीलिये तो वे मातृ-अभिषेक के लिये समस्त जाति-धर्म-सम्प्रदाय के मानवों को एक समान ही आमन्त्रित करते हैं -

"हे आर्य, हे अनार्य आओ, आओ हिन्दू मुसलमान
आज आओ, तुम अंग्रेज क्रिश्टान आओ
मन को पवित्र कर आओ ब्राह्मण, सबके हाथ पकड़ो
हे पतित आओ, अपमान का सब भार उतार दो ।
माँ के अभिषेक के लिये शीघ्र आओ
सबके स्पर्श से पवित्र हुये तीर्थ जल से

---

(1) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 472
(2) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारुचन्द्र लेख पृष्ठ सं0 304

मंगल-घट तो अभी भरा ही नहीं गया है-
इस भारत के महामानव के सागर-तट पर । "|1|

पुनर्नवा में मंजुला |जो लिंग शरीरधारी है| आर्यक को मार्ग प्रशस्त करते हुये बतलाती है कि उपास्य की आराधना उपासक के भावों पर निर्भर करती है । उसके भावों के आधार पर उपास्य का नाम निर्धारित होता है ।

"नाम-रूप तो उपासक के भाव हैं । उपासक के भाव
ही तो उपास्य को नाम और रूप देते हैं । " |2|

बाण भट्ट की आत्मकथा में भट्टिनी का कथन समस्त भारत को एक सूत्र में बाँध देने का परिचायक है उसकी अवमानना है कि आपसी भेद-भाव भुलाकर ही व्यक्ति एक दूसरे के प्रेम में बँधकर "वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को चरितार्थ कर सकता है ।

"इस नर लोक से लेकर किन्नर लोक तक एक ही
रागात्मक हृदय व्याप्त है । " |3|

भट्टिनी के विचार से हिन्दू-मुस्लिम में कोई भेद नहीं । भेद ही ऐसी दीवार है जो हमें मानवता की संज्ञा से विलग कर कर्तव्य-निष्ठा की ओर जाने से पथ-भ्रष्ट कर देते हैं । उसके विचार से -

"यही देखो, तुम यदि किसी यवन कन्या से
विवाह करो तो इस देश में एक भयंकर सामाजिक

|1| गीतांजलि कविता संख्या 106

|2| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली पुनर्नवा पृष्ठ सं0 191

|3| हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं0 229

> विद्रोह माना जायेगा । परन्तु यह क्या सत्य
> नहीं है कि यवन-कन्या भी मनुष्य है और
> ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है । महामाया जिन्हें
> म्लेच्छ कह रही है वे भी मनुष्य हैं. . . . .
> एक जाति दूसरे को म्लेच्छ समझती है एक मनुष्य
> दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशान्ति
> का कारण और क्या हो सकता है । " {1}

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रवीन्द्र नाथ टैगोर की आध्यात्मिक प्रवृत्ति से पूर्णतया प्रभावित हैं अत: स्थान-स्थान पर आध्यात्म जन्य मानव-मूल्यों का प्रतिपादन, रवीन्द्र के विचारों पर भी आधारित है। कबीरदास जी की आध्यात्म-परक साखियों में बार-बार हिन्दू - मुसलमानों को एकाकार करने का उपदेश दृष्टव्य है । कबीरदास जी भी साम्प्रदायिकता के विरोध में थे । अत: उनकी आध्यात्मिकता का प्रभाव भी द्विवेदी जी के कथा-साहित्य में देखा जाता है ।

रवीन्द्र-दर्शन में प्रकृति और मानव-सम्बन्ध के अन्तर्गत मानव-मूल्य प्रतिपादित होते हैं । चूंकि एक ही चेतन सत्ता प्रकृति और मानव दोनों में व्याप्त है अत: वे एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं ।

> "यह मेरे शरीर की शिरा-शिरा में जिस प्राण
> की तरंग माला दिन-रात उड़ती है
> वही प्राण विश्व विजय के लिये निकला है,
> वही अनोखे छंद, ताल, लय में विश्व
> में नाचता है । " {2}

एक बौद्ध मठ के भिक्षु के विचार सीदी मौला के मुख से उक्त भावों को

{1} हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाण भट्ट की आत्मकथा पृष्ठ 228

{2} नैवेद्य रवीन्द्र नाथ टैगोर के दर्शन में मानवतावाद पृष्ठ सं0 64 के अन्तर्गत {नैवेद्य से}

प्रकट करते हैं । वे कहते हैं -

> "यह स्थूल शरीर एक आवरण-मात्र है ।
> इसके भीतर एक भाव शरीर है जिसमें भाव-
> लहरियाँ प्रत्येक क्षण उद्वेलित हो रही है....
> भाव-जगत में जो कुछ अनुभूत होता है, वह
> सब स्थूल जगत में प्रत्यक्ष हो सकता है ।
> भाव-जगत में यदि तुम रोग-मुक्ति सोचो
> तो स्थूल जगत में भी, रोग-मुक्ति तो
> हो सकती है, होती है । " §1§

चारुचन्द्र लेख में सीदी मौला स्वयं उक्त भावों को व्यंजित करते हैं -

> "विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ घटित हो रहा
> है वह छोटे से छोटे पिण्ड में भी है । " §2§

प्रकृति, असीम सत्ता से बिल्कुल पृथक नहीं है इसीलिये जब चेतना का संचार होता है तो प्रकृति स्पन्दित होती है । मानव-जीवन अपने को प्राकृतिक गुणों से पृथक नहीं कर सकता इसीलिये आध्यात्म ज्ञान से पूरित होकर वह गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते " के सिद्धान्तानुकूल कार्य करता हुआ जब वह करणीय कर्म में प्रवृत्त होता है तो प्राकृतिक विकृतियों की परवाह नहीं करता और अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है । यह एक उदात्त मानव-मूल्य है । ऐसा मनुष्य निःस्पृह भावना से कार्य करता है तभी परोपकार समाज उद्धार तथा मानव-जाति की उन्नति कर सकता है । आचार्य द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से मानव-मूल्यों को दर्शाया है वे सुदृढ समय के लिये मानव-मूल्यों की अपेक्षा करते हैं । सत्य-अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं उनका मन्तव्य है कि सत्य

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्रलेख पृष्ठ सं0 310

§2§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली चारुचन्द्रलेख पृष्ठ सं0 304

हमेशा सर्व-व्यापी है । सत्य को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं । जो सत्य है, वह सारे ब्रह्माण्ड का सत्य है । अघोर भैरव बाण भट्ट की आत्मकथा के अन्तर्गत कही है -

"जो मेरा सत्य है, यदि वह वस्तुत: सत्य है
तो वह सारे जगत का सत्य है । " §1§

"टैगोर का कहना है कि दैनंदिन कर्मों को एक
चिरस्थाई स्वर में बाँधना ही सत्य की साधना है,
धर्म की साधना है । समस्त कर्मों के द्वारा आत्मा
अपने आपको ब्रह्म के समक्ष प्रकट करती है । "§2§

जीवन भर मनुष्यता का संदेश देते हुये टैगोर ने कहा था -

" मैं ऐसा विश्वास करना अपराध ही मानता हूँ
कि मनुष्यत्व का अन्तहीन और प्रतिकारहीन
पराभव ही परम सत्य है । " §3§

रवीन्द्रनाथ के मानवतावादी विचारों के मूल में उनकी समष्टि मानव में विश्वास की भावना है जिसका प्रभाव हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथा--साहित्य में दृष्टव्य है ।

निष्कर्षत: डा0 द्विवेदी जी के कथा-साहित्य में प्रतिपादित मानव मूल्य रवीन्द्रनाथ टैगोर, सन्त कबीर आदि महापुरुषों के विचारों में भी समाहित हैं । स्थल-स्थल पर यह आध्यात्मिकता अनामदास का पोथा नामक उपन्यास में भी परिलक्षित होती है जो ज्ञान व सत्यज्ञ आदि

---

§1§ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली बाणभट्ट की आत्मकथा पृष्ठ सं0 213
§2§ रवीन्द्र नाथ टैगोर के दर्शन में मानवतावाद "कामना सिंह" पृ0सं0 85
§3§ मृत्युंजय रवीन्द्र डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ सं0 46

पाँच ऋषियों को अश्वपति द्वारा वैश्वानर आत्मा का ज्ञान देना। सनत कुमार द्वारा नारद को आत्मज्ञान का उपदेश देना आदि में पौराणिक प्रभाव देखा जा सकता है। उपनिषद, पुराण, श्रीमद् भागवत गीता आदि का प्रभाव भी डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथा-साहित्य में परिलक्षित होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव – मूल्य

उपसंहार

उपसंहार

§ मानव-मूल्यों के प्रतिफलन की दृष्टि से
आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मूल्यांकन §

मानव-मूल्यों के प्रतिफल की दृष्टि से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का मूल्यांकन अपने महत्त्व का प्रतिपादन करता है। कथाकार ने मानवीय मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए मध्यकालीन भारत के समाज का जीवन -चित्रण प्रस्तुत किया है। इन प्रवृत्तियों पर आश्रित प्राणी, जिजीविषा से सम्प्रेरित होकर मूल्यों के प्रति समर्पित हो जाता है। सिर्फ अपने लिए अथवा अभिवासनाओं की तृप्ति के लिए जिया जाने वाला जीवन भोग तथा वासनाओं की अतिशयता से समाज के लिए अनुपादेय हो जाता है। सारा विश्व मिल बाँट कर नैतिकता के साथ जिये, तो निश्चित ही उसमें जीवन का परिष्कार होता है। ऐसी मानसिकता ही मूल्यवादी समाज की प्रस्थान-बिन्दु है। इसका ही विकसित रूप है, कि हम चाहे न भी जियें बल्कि हमारे जीवन को लेकर वे जियें। मूल्यों की अवधारणा करते समय व्यक्ति ने त्याग-तपस्या, सत्य-अहिंसा, प्रेम-ईश्वर, योग-साधना, सेवा-विनम्रता आदि गुणों को समाहित करना आवश्यक समझा। बाण भट्ट की आत्मकथा में बाण भट्ट अपने यायावर जीवन के लिए बंड कम लम्पट भी कहा गया है। वस्तुत: बाण ने स्वकेन्द्रित होकर निपुणिका और भट्टिनी के जीवन के पड़ावों को मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखा है। उसे निजी कहानी दुर्भाग्य का चिट्ठा लगती है। वह स्त्री-शरीर को किसी अज्ञात देवता के मन्दिर की भाँति मान्यता देता है। निपुणिका ने भी वैयक्तिक त्याग-तपस्या का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है।

तत्क्ष: निपुणिका पाप के भीतर देवता या पशु न देखकर जनता की तलाश करती है। वैसे यह सच है, कि जीवनऔर जीवन-मूल्यों में से किसी एक के चयन का प्रश्न हो तो जीवन के ऊपर मूल्य को वरीयता देने वाले विरले ही होते हैं। अधिकांश लोग जीवन को मात्र जीवित रहने के लिए ही चुनते हैं। ऐसे लोग अपनी भाषा में दुनियादार और समझदार कहकर सम्मान का आदर्श पात्र मानते हैं परन्तु यथार्थ में वे अवसरवादी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। दुनियाँ के रंग में रंगे और साँचे में ढले ये लोग लीक-लीक चलने को ही चरित्र और व्यक्तित्व का मूलक रूप मानते हैं।

चारुचन्द्र लेख का सीदी मौला लोक-कल्याण में ही जीवन रत मूल्यों की चर्चा करता है। वस्तुत: मोह-त्याग की सीमाओं के साँचे से विरले ही लोग ही निकल पाते हैं और वे ही साहसी होते हैं। साहस में सिद्धि बसती है। यदि व्यक्ति साहसी है तो वह कुछ भी कर सकता है। व्यक्ति जब दीन-दुखियों की सेवा में तत्पर होने लगता है तो वह परमार्थिक भाव से दूसरों के प्रति समर्पित हो जाता है। देवरात के शील-सौजन्य, कला-प्रेम और विद्वता ने हलद्वीप की जनता को मोह लिया है। उपन्यासकार ने देवरात तथा श्री मंजुला के मध्य आत्मोत्सर्ग भाव का वर्णन इसी आधार पर किया है। देवरात जीवन-मूल्यों के धनी हैं, वह मंजुला में भी देवता का निवास देखते हैं। उनका कहना सच है, कि मंजुला जिस पाप जीवन की बात कह रही है वह मनुष्य की बनायी हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है। देवकृत का विश्वास है, कि उसके भीतर बैठा देवता अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नहीं कर सकती वह अन्तरंगी देवता

ही है जो उद्धार कर सकता है । देवरात इस बात को भली-भाँति जानता है, कि देवता न बड़ा होता है और न छोटा । न शक्तिशाली होता है, न कमजोर । वह उतना ही बड़ा होता है जितना बड़ा उपासक उसे बना सके । मंजुला को समझाते हुए देवरात यह कहते हैं, कि तुम्हारा देवता भी तुम्हारे मन की विशालता और उज्जवलता के अनुपात में बहुत विशाल और बहुत उज्जवल है ।

मानव आत्मसत्ता को नकार कर इधर-उधर के मूर्त स्वरूपों को आश्रय बनाना चाहता है, जबकि उसके भीतर शक्ति और साहस विद्यमान है । मान्यताएँ, सिद्धान्त व गुण जो हमारे भीतर हैं उनकी क्षमता के कारण ही मनुष्य-मनुष्य बनता है । मानव-मूल्य व्यक्ति-निष्ठ होते हैं । लेकिन वह इन्हीं मूल्यों को समाजोन्मुखी बना लेता है । मानव के आधारभूत वांछनीय गुणों को शुभ कहा गया है । जैसे- सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्तेय, अपरिग्रह । यम और नियम में मौलिक सूक्ष्म अन्तर यह है , कि व्यक्ति अपना जीवन भीतर से कैसे जिए इससे नियम का ज्यादा सम्बन्ध है और व्यक्ति सामाजिक जीवन कैसे जिए इससे यम का ज्यादा सम्बन्ध है । उपन्यासकार द्विवेदी ने निपुणिका और भट्टिनी को बल्कि दो दिशाओं को इन्हीं मूल्यों के आधार पर एक कर दिया है ।

बाण भट्ट समेतर भाव से भट्टिनी के उद्धार का उपाय सोचता है । वह भट्टिनी को राजनीति का खिलौना नहीं बनने देना चाहता । भट्ट संकल्प करता है, कि वह प्राणोत्सर्ग करके भी भट्टिनी का उद्धार करेगा । उसकी यह सोच कि भट्टिनी उसकी सिद्धि है वह उनकी सेवा के लिए प्राण- उत्सर्ग करने को तैयार है, ऐसीदशा में कभी-कभी घटना चक्र

सिद्धि को साधन और साधन को सिद्धि बना देता है । कच्चे चित्त की यही कच्ची कल्पना है । वस्तुत: इसे रूप ग्रहण करने देना प्रमाद होता है और इसी कारण से व्यक्ति दिग्भ्रमित हो जाता है ।

मूल्य मानव की बहुत बड़ी धरोहर है । बाण अनुभव करता है, कि उसके हृदय में मूल्यों का कोई देवता बैठा है जो मौन होकर स्तब्धता की मौन पूजा स्वीकार करता है । भट्टिनी तथा निपुणिका भ्रमात्मक प्रेमोत्सर्ग का संधान करती हैं । उपन्यासकार ने निपुणिका और भट्टिनी को समर्पिता नारी के रूप में वर्णित किया है । मानव और मानव-समाज की गुणात्मकता जिस बिन्दु पर टिकती है वह बिन्दु स्त्री-पुरुष का अन्त:-बाह्य आचरण होता है । इसी आचरण की नींव पर सारे मानव-समाज का मूल्य-निर्माण होता है ।

जीवन मूल्यों के अर्थ प्रवाह में देवरात आत्मरमणीय कल्पना में निमग्न हो जाता है । देवरात को विधाता की बनायी शर्मिष्ठा विस्मृत होने लगती है और उसके हृदय में उसके द्वारा संजोयी हुई कमनीय शर्मिष्ठा स्मरण हो आती है । देवरात ने अनुभव किया कि उसके द्वारा निर्मित हृदय मूर्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है । चन्द्रमौलि विधि-विधान में हस्तक्षेप कर मूल्यों की परिवर्तित सीमा बाँध रहा है । देवरात विचार-मन्थन करते जा रहे हैं कि सीमा की भी अपनी महिमा है । सीमा के कारण ही शर्मिष्ठा उनके मानस में ज्यों के त्यों विराजमान है, नव विकसित प्रफुल्ल वर्ण कमल के समान वे उसे दिख रहे हैं । दुनियाँ बदल रही है, देवरात बदल रहे हैं पर शर्मिष्ठा स्थिर है, शाश्वत है । देवरात संकुचित भाव से कहता है, कि हाय प्रिये । तुम्हें दासी समझना आत्मवंचना थी - विशुद्ध आत्म वंचना तुम नित्य प्रफुल्ल, नित्य मनोहर, नित्य नवीन होकर सदा इस मन-मानस में विद्यमान हो ।

मानवीय परिकल्पना इतनी अधिक विराट होती है, कि सामान्य व्यक्ति उस बोध तक पहुँच ही नहीं पाता । पारस्परिक सद्भाव ममेतर मूल्यों को आस्थावान बनाते हैं । इसीलिए दिशा-दिशान्तर में एक ही स्वर गूँजता है, कि बाण भट्ट का जीवन व्यर्थ नहीं था । वह मानवीय जीवन में प्रेम और उत्सर्ग की विशेष स्थापना करता है । इस प्रकरण में निपुणिका का समर्पित चरित्र मूल्यों का अनूठा उदाहरण है । मानवीय मूल्यों का उदात्त स्वरूप भट्टिनी और निपुणिका के समर्पित प्रेम में मिलता है ।

पुनर्नवा उपन्यास में देवरात की शर्मिष्ठा मानसिक छवि बनी हुई है । देवरात शर्मिष्ठा के अपूर्व सौन्दर्य को मानसिक पटल पर उतार लेते हैं । वह बदले हुए जीवन-परिवेश में अपने भाव को अन्तर्निहित ही रखते हैं । देवरात ऐसा चरित्र है जो मूल्यों के लिए प्रतिदान नहीं चाहता । वह दे देना अपने जीवन की उपादेयता मानता है । समाज पर अच्छाई का असर होता है और बुराई भी असर हो जाती है । सामाजिक मान्यता व्यक्ति के सद्गुणों पर निर्भर होती है । देवरात के शील-सौम्य ने हलद्वीप की जनता का मन मोह लिया है । देवरात चिन्ता के बीच सम्मान की प्रतिमूर्ति बन गए हैं । यह एक सामाजिक प्रतिष्ठा और मूल्यवत्ता का ही परिणाम है । व्यक्ति का सात्विक भाव व्यक्ति को ऊँचा उठाता है । इसी कारण देवरात के प्रति अहंकारी मंजुला भी नत मस्तक हो गयी है ।

अनामदास का पोथा का नायक रैक्व लोक जीवन के सामाजिक मूल्यों से परिचित नहीं है किन्तु राजपुत्री जाबाला सामाजिक मूल्यों से भली-भाँति परिचित है इसीलिए वह रैक्व से सामान्य आदर्शों की बात

करती है । समाज में स्त्री-पुरुष के सह-सम्बन्धों के लिए कुछ आदर्श स्थापित किए गए हैं और इन्हीं आदर्शों के अनुसरण के लिए समाज व्यक्ति से अपेक्षा करता है । जावाला ने ऋषि कुमार को बोध कराया कि तुम पुल्लिंग हो, मैं स्त्रीलिंग। सामाजिक अलगाव के कारण कहने लगता है कि मैं नहीं जानता, इतना अवश्य जानता हूँ कि स्त्रीलिंग शब्द भाषा में व्यवहृत होता है । पद का मुझे ज्ञान है - पदार्थ का मुझे ठीक ज्ञान नहीं है । मैं जानता हूँ कि कन्या शब्द स्त्रीलिंग है इसलिए मैं आपको कन्या शब्द से सम्बोधित कर सकता हूँ ।

सामाजिक प्रतिमान सामाजिक व्यवस्था के लिए बहुत आवश्यक होते हैं । रैक्व पद और पदार्थ के भेद को व्याकरण की दृष्टि से समझते हुए ही जागतिक दृष्टि से समझ नहीं पाते । जाबाला ऋषि कुमार के भोलेपन से परिचित है । वह जानती है कि रैक्व को लोक आचरण मालूम नहीं ।

चारुचन्द्र लेख में सिद्ध सामन्त की व्यवस्था का चलन था इसलिए राजा सातवाहन सीदी मौला की तलाश में और रानी चन्द्रलेखा तरुण तापस की तलाश में निकल पड़ते हैं । मानव-आचरण इस युग में धर्म-दर्शन के बिन्दु पर केन्द्रित हो गया था । ऐसा प्रतीत होता है कि क्रमशः सिद्ध सामन्त युग में देश का परिस्थितियों के अनुरूप मूल्यों को परिमार्जित किया गया है । भारत वर्ष में धर्म व्यवस्था के कारण जहाँ एक ओर मानवीय मूल्यों का जोर बढ़ा है वहाँ दूसरी ओर इस व्यवस्था ने पाखण्डियों को जन्म देकर जनता को बहुत ठगा है । लगने लगता है कि इस धर्म व्यवस्था में बहुत छिद्र हैं । उपन्यासकार का तापस कहता है, कि अपने ही रक्त, माँस और चर्म से जितना ठग सको-ठगो ।अपनी अंतड़ियों के तागे से जितना सीं सको-सिओ । चाहो बज्र की तरह दृढ़ बनकर इतिहास विधाता के क्रूर प्रहारों को रोक सको ।

वस्तुत: धर्म मानव मूल्य की आत्मदान-वादी कसौटी है जहाँ धार्मिक ब्रह्माण्ड के रहस्य का अध्यात्मक के सोपान पर चढ़कर ज्ञान हो जाता है । हम देवता के लिए उपासना करते हैं, जप करते हैं, तपस्या करते हैं । वह अन्त:करण में स्थित उस शक्ति का उद्बोधन मात्र है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि भौतिक है । जिससे मानव जीवन की कल्याणकारी इच्छाएँ तृप्त हो रही हैं । निष्कर्षत: धार्मिक मूल्य दार्शनिक तर्क और धारणाओं से इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता ।

पारिवारिक दृष्टि और रागात्मक विदृष्टि दोनों में ही आत्मोत्सर्ग की भावना निहित रहती है । बाण भट्ट भट्टिनी तथा निपुणिका के बीच अकथनीय रागात्मक स्वरों को उद्वेलित कर देना चाहता है । जब रत्नावली नाटिका का मंचन किया जाता है तब भट्टिनी और निपुणिका ने अभिनय में अपना योगदान करके विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है । कथाकार ने कहा है कि आज भट्टिनी का आनन्द बाँध तोड़ देना चाहता था । सहज गम्भीर भट्टिनी आज नन्हीं बालिका बनी हुई थी ।

मानवीय जीवन में प्रेम और उत्सर्ग विशेष भाव की स्थापना करते हैं । वस्तुत: प्रेम अविभाज्य है परन्तु वह मूल्य तब विभाजित हो जाता है जब उसमें ईर्ष्या और असूया का भाव पैदा हो जाता है । नाटक के अन्तिम दृश्य में जब निपुणिका भट्टिनी का हाथ बाण को देने लगी तो वह विचलित हो गयी । वह सिर से पैर तक सिहर गयी । उसके शरीर की एक एक सिरा शिथिल हो गयी । भरत वाक्य समाप्त होते-होते वह धरती पर लोट गयी । नागर जन जब साधु-साधु की आनन्द ध्वनि से

दिगन्तर कँपा रहे थे उस समय यवनिका के अन्तराल में निपुणिका के प्राण निकल रहे थे। भट्टिनी ने दौड़कर उसका सिर अपनी गोद में ले लिया और कुररी की भाँति कातर चीत्कार कर चिल्ला उठी। हाय भट्ट। अभागिनी का अभिनय आज समाप्त हो गया। उसने प्रेम की दो दिशाओं को एक सूत्र कर दिया।

इस प्रकरण में निपुणिका का समर्पित चरित्र मूल्यों का अनूठा स्रष्टा है, उसने स्त्री जाति का गौरव बढ़ाया है। वह स्त्री जाति की भण्डार थी, सतीत्व की मर्यादा थी और जीवन की मानवीय मूल्यवत्ता थी। जैसा कि पुनर्नवा का देवरात मानवीय मूल्यवत्ता के लिए आत्मीयता का इतना अधिक प्रकाशन करता है कि आत्मोत्सर्ग हो जाता है।

मानव-आचरण धर्म नैतिकता के बिन्दु पर केन्द्रित होता है। आचरण में सत्य और लोक-मंगल को उतारना नैतिक बनता है। मौलिक दृष्टि से समझ कर जिसका मनुष्य अनुसरण करना चाहता है। जीवन मूल्य सर्व धर्म समभाव का पाठ पढ़ाना है चाहे वह हिन्दू धर्म हो या अन्य कोई। सभी के सभी लोक हित को चरम बिन्दु मानते हैं। मानव मूल्य साध्य और साधन दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। मानव जिसे प्राप्त करना चाहता है। वह उसका साध्य होता है। जिसके द्वारा प्राप्त करना चाहता है वह उसका साधन रूप धर्म होता है। पुरुषार्थ में धर्म, अर्थ और काम को साधन-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति साध्य तक ले जाने वाला सुविचारित पक्ष है।

देश-काल-परिस्थितियों में मूल्यों का परिमार्जन होता आया है। मानव की मूल प्रवृत्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है -

जैविक, सामाजिक और आध्यात्मिक । जैविक के अन्तर्गत क्षुधा, काम प्रवृत्ति, संग्रह प्रवृत्ति, शारीरिक श्रम और खेल जैसी प्रवृत्तियाँ आती है, जिसमें क्षुधा और काम प्रवृत्ति की तृप्ति शारीरिक मूल्यों से जुड़ी हुई है । सामाजिक के अन्तर्गत सामरूपता की प्रवृत्ति, सहानुभूति की प्रवृत्ति और लोकहित की प्रवृत्ति प्रमुख है । आध्यात्मिक के अन्तर्गत व्यक्ति के धर्माचरण का विशेष महत्व है । श्रद्धा-भाव धार्मिक मूल्यों का अवतरण करते हैं और धर्म मूल्य ही आगे चलकर दार्शनिक मूल्य माने जाते हैं ।

मानव मूल्य के सन्दर्भ में धर्म और नैतिकता अति आवश्यक है । धर्म के अभाव में जीवन का सुव्यवस्थित चित्रण नहीं हो सकता । युग पर युग बीतते जा रहे हैं किन्तु व्यवस्था के लिए धर्म की प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती । तप, स्वाध्याय, परहित, संस्कारशील, विचारशील होना ही सच्ची मानवीय प्रेम की कसौटी है ।

आज परिवर्तनशील समाज में मूल्यों में भी परिशोधन होता जा रहा है । धार्मिक सदाशयता जीवन-मूल्य की आधार-शिला बन गया है । वर्तमान युग में यह बोध जाग्रत हुआ है, कि दया किसी व्यक्ति पर तब होती है जब हम बड़े हों या उसकी तुलना में हमारी स्थिति अच्छी हो, उच्च हो । प्रेम अथवा सहानुभूति समानता का लक्षण माना जाता है । इसी प्रकार हम सेवा को लें - इसका स्वरूप भी अनादि और अन्त है । सेवा के बिना समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती । सच बात तो यह है, कि सामाजिक व्यवस्थाओं में सेवा एक प्रमुख कारक है । किसान अन्न उपजाकर समाज की सेवा करता है जबकि सैनिक विदेशी आक्रमण से देशवासियों को सुरक्षित रखकर उनकी सेवा करता है । इसी प्रकार अध्यापक ज्ञान के प्रचार-प्रसार से सेवा

कार्य करता है । सबके अपने-अपने धर्म कर्म हैं किन्तु सेवक और सेव्य के वर्गीकरण का आधारभूत सामन्तवादी मानसिकता से जुड़ा सेवा शब्द वर्तमान युग का मूल्य नहीं हो सकता । सामन्तवादी दृष्टिकोण में सेवक के लिए सेवा की बाध्यता है जो शोषण के भाव को ध्वनित करती है । इस युग में सेवा कर्तव्य क तो हो सकती है किन्तु यह बाध्यता नहीं हो सकती ।

भारत में धार्मिक, आध्यात्मिक, साधना-बल पर मोक्ष सदा से सर्वोच्च मूल्य रहा है । प्राचीन एवं मध्य युगीन विचारकों की दृष्टि में मुक्ति परलोक केन्द्रित थी । वह जहाँ तक परलोक केन्द्रित है वहाँ तक मध्य युग है और जहाँ से मुक्ति सीधे मानव मुक्ति या स्वा--धीनता से जुड़ी होती है वहीं से आधुनिक समाज का जन्म होता है । धर्मावलम्बियों की परिशोधित दृष्टि से मुक्ति निश्चय ही मानव-मुक्ति से सम्बन्धित है । धर्म परायण समाज अपने-अपने धर्मों पर चलकर जीवन-जगत और मोक्ष के विभिन्न आयामों को उद्भासित करता है । व्यक्ति निज धर्म और निज देश के गौरव को आत्मसात् कर लेना चाहता है ।

बाण भट्ट की आत्मकथा के प्रमुख पात्र भट्टिनी व निपुणिका और बाण भट्ट, पुनर्नवा के प्रमुख पात्र देवरात, श्यामरूप, आर्यक, मृणाल मंजरी, अनामदास का पोथा के प्रमुख पात्र रैक्व, जाबाला, जानश्रुति, चारुचन्द्र लेख के प्रमुख पात्र राजा सातवाहन, रानी चन्द्रलेखा, सीदी मौला सभी मानवीय मूल्यों के सुविचारित पक्षधर हैं । कथाकार ने लोक कल्याण के लिए सामाजिक एवं राजनैतिक कुचक्रों को अवरुद्ध करने की मनसा प्रकट की है । कर्मकाण्ड प्रधान समाज ने धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा लोक कल्याण के निमित्त कुछ उर भावनाओं को उजागर किया है।

फलत: सद्प्रवृत्ति ने व्यक्ति को असद प्रवृत्ति पर विजय दिलाई। वस्तुत: हम देवता के लिए उपासना करते हैं, जप करते हैं, तपस्या करते हैं। वह अन्त:करण में स्थित उस शक्ति का उद्बोधन मात्र है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक है जिससे मानव जीवन की कल्याणकारी इच्छाएँ तृप्त होती हैं और मानव सद्मार्गी बन जाता है।

अनामदास का पोथा उपन्यास तो विशुद्ध जप-तप और अनुष्ठान का आलेखन है। तरुण-तापस रैक्व बाह्य जगत से विमुख होकर जप-तप-धर्म में लीन रहने वाला ऋषि कुमार था। वह मनुष्य लोक को ही अन्तिम सत्य नहीं मानता, वह आकाश की पुराणवत्ता पर विश्वास करता है।

निष्कर्षत: जीवन-संस्कृति विविध आयामी है। विकासात्मक उपागम के आधार पर व्यवस्थित व्यक्ति की महत्वपूर्ण स्थितियाँ बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था हैं जिनमें व्यक्ति सांस्कृतिक विरासत को आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ता है। बच्चे के मानसिक संस्कार माता-पिता से बनते हैं और अध्यापक उन्हें विचारशील बनाता है। कहना होगा कि आचार्य द्विवेदी ने मानव-मूल्यों के विविध आयामों को विविधवत प्रकार से अपने उपन्यासों में परिलक्षित किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में

मानव - मूल्य

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(क) उपजीव्य और उपस्कारक ग्रन्थों की सूची-

सहायक पुस्तकों की सूची

उपजीव्य ग्रन्थ -

1- हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (बाणभट्ट की आत्मकथा)

2- हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (चारुचन्द्र लेख)

3- हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (पुनर्नवा)

4- हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (अनामदास का पोथा)

हिन्दी की पुस्तकें -

1- कुछ विचार (प्रेम चन्द्र)

2- साहित्य लोचन (श्याम सुन्दर दास)

3- हिन्दी उपन्यास साहित्य (ब्रजरत्न दास)

4- काव्य के रूप (गुलाब राय)

5- हिन्दी साहित्य कोश

6- हिन्दी विश्व कोश

7- अग्नि पुराण का काव्य शास्त्रीय भाग

8- हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)

9- श्रीनिवास ग्रन्थावली (सम्पादक- श्री कृष्ण लाल)

10- हिन्दी साहित्य (हजारी प्रसाद द्विवेदी)

11- आधुनिक हिन्दी साहित्य §लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय§

12- आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास §डा० पेयन§

13- प्रेम चन्द्र पूर्व हिन्दी उपन्यास §डा० कैलाश प्रकाश§

14- हिन्दी गद्य साहित्य §डा० शिवदास सिंह चौहान§

15- हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा §डा० रामदास मिश्र§

16- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन §डा० गणेशन§

17- आधुनिक समीक्षा § डा० देवराज §

18- हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ §डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय§

19- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास :
इतिहास के दो ललित अध्याय § बाबू लाल अ §

20- शान्ति निकेतन से शिवालिक तक §सम्पादक शिव प्रसाद सिंह§

21- हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना §प्रताप नारायण टण्डन§

22- हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन §डा० वासुदेव शरण अग्रवाल§

23- साहित्य का श्रेय और प्रेय §जैनेन्द्र कुमार§

24- साहित्य का साथी §डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी§

25- हिन्दी उपन्यास में कथा शास्त्र का विकास §डा० प्रताप न
नारायण टण्डन§

26- साहित्य सहचर §डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी §

27- चिन्तामणि §राम चन्द्र शुक्ल§

28- प्रबन्ध सागर §यज्ञदत्त शर्मा§

29- काव्य बिम्ब §डा0 नगेन्द्र§

30- साहित्यिक निबन्ध §राजनाथ शर्मा§

31- स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास §डा0 राधेश्याम कौशिक §

32- हिन्दी उपन्यास §डा0 शिव नारायण श्रीवास्तव §

33- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास §डा0 श्रीकृष्ण लाल§

34- ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार §डा0 गोपीनाथ तिवारी§

35- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र §राजनाथ शर्मा§

36- डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन §डा0 उमा मिश्र§

37- ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार §डा0 गोपीनाथ तिवारी§

38- पुनर्नवा चेतना और शिल्प §राजनारायण§

39- गोदान §मुंशी प्रेमचन्द§

40- हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ §डा0 शशि भूषण सिंहल§

41- हिन्दी उपन्यास: आधुनिक विचारधारायें §डा0 सुमित्रा त्यागी§

42- भारतीय दर्शन §उमेश मिश्र§

43- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद §त्रिभुवन सिंह§

44- हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन §डा0 महावीरमल लोढ़ा§

45- ऐतिहासिक उपन्यास §डा0 सत्यपाल बुध§

संस्कृत की पुस्तकें :-

1- रघुवंश {कालिदास}

2- याज्ञवल्क्य स्मृति

3- स्वप्न वासवदत्तम {महाकवि भास}

4- अमर कोष

5- नाट्य शास्त्रम {भरत}

6- दशरूप

7- अभिज्ञान शाकुन्तलम् {कालिदास}

8- किरातार्जुनीयम {भारवि}

9- साहित्य दर्पण {विश्वनाथ}

10- काव्यानुशासनम् {हेम चन्द्र}

11- काव्यालंकार {भामह}

12- काव्यादर्श {दंडी}

13- संस्कृत साहित्य का इतिहास {वाचस्पति गैरोला}

14- कादम्बरी {बाण भट्ट}

15- रत्नावली

16- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति {वामन}

17- ध्वन्यालोक {आनन्द वर्धन}

18- लघु सिद्धान्त कौमुदी {वरदराज}

19- हर्षचरित §बाण भट्ट§

20- मृच्छकटिकम §शूद्रक§

21- मेघदूतम §कालिदास§

22- कुमार सम्भव §कालिदास§

23- गोरक्षशतकम §गोरखनाथ§

24- सर्वदर्शन संग्रह

25- वेणी संहार §भट्ट नारायण§

26- छान्दोग्य उपनिषद

27- तर्क संग्रह §अनन्त भट्ट§

28- मीमांसादर्शन

बंगला भाषा की पुस्तकें -

1- सरल बंगला अभिधान

2- नूतन बंगला अभिधान

3- बंग साहित्येउपन्यासेर धारा §श्रीकुमार बंधोपाध्याय§

अंग्रेजी की पुस्तकें -

1. The Shorter Oxford English Dictionary

2. The New Pictured Encyclopaedia

3. The Novel and the People (Ralf Fox)

4. Encyclopaedia Britannica

5. The Grouth of the English Novel (Rechard Church)

6. The English Novel (Walter Ellon)

§ख§ <u>पत्र-पत्रिकाओं की सूची</u> -

1- आलोचना §मासिक पत्रिका§

2- राष्ट्र भाषा सन्देश §पाक्षिक पत्रिका§ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

3- हिन्दुस्तान §दैनिक पत्र§